CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

कृष्णदास संस्कृत सीरीज २०

8.3

महाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

औचित्यविचारचर्चा

'रमा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्यालङ्कृता

व्याख्याकारः
डॉ॰ रमाशंकर त्रिपाठी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदास संस्कृत सीरीज़
२०
****

महाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

औचित्यविचारचर्चा

'रमा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्यालङ्कृता

व्याख्यांकार
डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी
एम. ए., पी-एच. डी.
व्याकरणाचार्यः, पुराणेतिहासाचार्यः (लब्धस्वर्णपदकः), सांख्ययोगाचार्यश्च
प्रवक्ता—
प्राच्यविद्याधर्मविज्ञानसंकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि० सं० २०६७, सन् २०१०
मूल्य : रु. ७०.००

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
20
***

AUCITYAVICĀRACARCĀ

OF

MAHĀKAVI KṢEMENDRA

Edited With

'RAMĀ' SANSKRIT & HINDI COMMENTARIES

By

Dr. Rama Shankar Tripathi

M. A., Ph. D.

Acarya in Vyakaran-Puranetihas-Sankhyayoga,

Lecturer

BANARAS HINDU RNIVERSITY

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY

VARANASI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

© CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2333458 P.P. & 2335020

Also can be had from :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पणम्

गुणग्राही, सहृदय, विवेचक, वैदुष्यैकपक्षपाती,

धार्मिक तथा उदारचेता

पण्डित राधेश्याम शर्मा 'दाधीच'

'व्यवस्थापक'

मारवाड़ी सेवा-संघ, भदैनी,

वाराणसी

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

—रमाशङ्कर त्रिपाठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राक्कथन

'औचित्यविचारचर्चा' का यह नवीन संस्करण सरस्वती के सेवकों की सेवा में प्रस्तुत होने जा रहा है। 'छात्रों को अधिक-से-अधिक सहायता पहुँचाई जा सके' इस बात को ध्यान में रखते हुए यह संस्करण तैयार किया गया है। कोई भी व्यक्ति इस संस्करण के माध्यम से, बिना किसी की सहायता लिये हुए भी, कविता-कामिनी के क्षेम महाकवि क्षेमेन्द्र के गम्भीर भावों की तलहटी तक अनायास पहुँच सकता है। अध्यापकों, आलोचकों तथा नई एवं पुरानी विचार धाराओं के विद्वानों के लिये भी इस संस्करण का उतना ही महत्त्व हो जितना कि छात्रों के लिये—एतदर्थं भी प्रयास किया गया है। प्रारम्भ में अनुसन्धानात्मक प्रस्तावना के साथ इस संस्करण को यथास्थान अन्वय, शब्दार्थ, अर्थ, संस्कृत टीका तथा टिप्पणी आदि से सज्जित करने का भरपूर प्रयास किया गया है। उद्देश्य में कहाँ तक सफलता मिली है, इसका मूल्याङ्कन सहृदय मर्मज्ञों के ऊपर है। संक्षेप में यह प्रयास किया गया है कि यह संस्करण ग्रंथ के अर्थ एवं भाव को स्वच्छ दर्पण की भाँति-प्रतिबिम्बित कर पाठकों की नम्र अपेक्षित सेवा कर सके।

किसी आचार्य या महाकवि के भावों को सरल शब्दों में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में जो कठिनाइयाँ होती हैं, उन्हें कोई अनुभवी विद्वान् ही जान सकता है। इस प्रकार के कार्य के लिए सारस्वत साधना के साथ ही बाह्य सुविधाओं का होना भी नितान्त अपेक्षित है। अन्यथा, व्यक्ति को महती कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मेरे लिए तो ये कठिनाइयाँ और बढ़ जाती हैं। यतः मैं विश्वविद्यालय का वेतन-भोगी सेवक हूँ, अपने परिवार का अभिभावक हूँ, बालक बालकृष्ण, आनन्दकृष्ण, श्रीकृष्ण एवं राधा कृष्ण का सम्मानित शिक्षक हूँ, अपनी आयु के प्रायः पाँच वर्ष व्यतीत करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालक गोपालकृष्ण का धातृकर्मसहायक एवं क्रीडा-सहचर हूं, घर का सार्वकालिक अवैतनिक सेवक हूं, कहाँ तक कहूं ? बस यही समझ लिया जाय कि मैं एक गृहस्थ हूँ, अतः इस तरह के व्यक्ति को वैचारिक मन्थन में कितनी कठिनाइयाँ होती हैं, इसे तो कोई गृहस्थ लेखक या विचारक ही समझ सकता है। फिर भी मैंने इस कार्य को पूर्ण किया है। एतदर्थ ईश्वरानुग्रह एवं गुरुचरणों के आशीष का विशेष आभार मानता हूँ।

'औचित्यविचारचर्चा' के इस संस्करण को वर्तमान रूप देने में अब तक के प्रकाशित जिन उपलब्ध संस्करणों से सहायता ली गई है, उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ।

इस संस्करण को पूर्णरूप देने के लिये सर्वदा प्रेरणादात्री सुश्री शान्ति त्रिपाठी को हार्दिक साधुवाद तथा शिष्यकल्प डॉ० श्यामकिशोर द्विवेदी को उनकी सहायताओं के लिये आशीष प्रदान करते हुए मुझे सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के सुयोग्य सञ्चालक तथा 'कृष्णदास अकादमी' के संस्थापक बन्धुद्वय श्री विट्ठलदास जी गुप्त तथा श्री व्रजमोहनदास जी गुप्त भी अपने सहयोगात्मक कृत्यों के लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

रामनवमी
वि० सं० २०३९ —रमाशङ्कर त्रिपाठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

१. महाकवि क्षेमेन्द्र का काल

कृतियों के साक्ष्य से यह बात प्रमाणित होती है कि देवी शारदा के इस वरद पुत्र ने शारदा-देश-कश्मीर-में, ९९० ई० के बाद वाले सन्निहित काल में, अपने जन्म से वहाँ की वसुन्धरा को अलंकृत एवं १०६५ ई० के अनन्तर वैकुण्ठ-गमन से वियुक्त किया था। वे अपनी 'भारतमञ्जरी' में कहते हैं कि उन्होंने आचार्यों के मुकुटमणि, ज्ञानसागर 'अभिनवगुप्त' से साहित्य शास्त्र का अध्ययन किया था—

आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः।
श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः॥

—भारतमञ्जरी

'अभिनवगुप्त' ने प्रत्यभिज्ञादर्शन पर अपनी विशाल व्याख्या १०१४ ई० में लिखी थी। गुरु एवं शिष्य के बीच काल का अन्तर प्रायः २५ वर्ष होना चाहिये। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि 'क्षेमेन्द्र' उनके समय से प्रायः २५ वर्ष बाद—९९० ई० के सन्निहित काल में पैदा हुए होंगे। उनकी मृत्यु संभवतः १०६९ ई० के अनन्तर हुई थी। अपने जीवन के उत्तरकाल में वे संन्यासी होकर ''त्रिपुरेश' पर्वत पर मृत्युपर्यन्त रहे और वहीं उन्होंने १०६५ ई० में 'दशावतारचरित' लिखा। यह 'कलश' का शासन काल था। 'कवि-कण्ठाभरण', 'औचित्यविचारचर्चा', 'सुवृत्ततिलक' और 'समयमातृका' की परिसमाप्ति पर उन्होंने 'अनन्त' की प्रशस्ति की है और अपने प्रबन्ध की पूर्णता उनके राज्योदय काल में बतलाई है। इन्हीं पिता-पुत्र 'अनन्त' (१०२८-१०६३ ई०) तथा 'कलश' (१०६३-१०८९ ई०) के राज्यकाल में 'क्षेमेन्द्र' की जीवन-लीला व्यतीत हुई। अतः उनका काल एकादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध और कुछ उत्तरार्द्ध मानना न्याय-सङ्गत होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. क्षेमेन्द्र की वंश परम्परा

'क्षेमेन्द्र' 'सिन्धु' के पौत्र तथा 'प्रकाशेन्द्र' के पुत्र थे। ये लोग तात्कालिक राजा के अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। 'भारतमञ्जरी' में 'क्षेमेन्द्र' ने अपने पिता की लम्बी प्रशस्ति लिखी है, जिससे उनकी प्रचुर सम्पत्ति तथा उदाराशयता से मण्डित दानशीलता का परिचय प्राप्त होता है। 'क्षेमेन्द्र' सम्पन्न परिवार के सुखी कवि थे। इनका पुत्र 'सोमेन्द्र' योग्य पिता का योग्य पुत्र था।

३. क्षेमेन्द्र का प्रारम्भिक जीवन

'क्षेमेन्द्र' ने अपने प्रारम्भिक जीवन को सार्थक रूप से व्यतीत करते हुए भावी कवि-जीवन की सुपुष्ट आधार शिला के रूप में उसे निर्मित किया। 'कविकण्ठाभरण' में उनके द्वारा कवित्वशक्ति आंशिकरूप से स्वाभाविक बतलाई गई है और आंशिकरूप से अर्जित। अर्जित कवित्वशक्ति सरस्वती की उपासना—मन्त्र-अभ्यास के साथ ही मानव के शत-शत अभ्यास से अर्जित की जाती है। 'क्षेमेन्द्र' की कवित्वशक्ति स्वाभाविक की अपेक्षा अर्जित अधिक है। इसका निर्देश स्वयं उन्होंने भी किया है :—

कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिराम्।
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्॥

—कवि० ४।३

उनके जीवन का अधिकांश समय सभ्य व्यक्तियों के मध्य ही बीता था। उन्होंने नीरस तार्किक और वैयाकरणों का अधिक सहवास नहीं किया था। इन लोगों को उन्होंने कविता के विकास का विघ्न कहा है—

न तार्किकं केवलशाब्दिकं वा कुर्याद् गुरुं सूक्तिविलासविघ्नम्।

—कवि० १।१५

यस्तु प्रकृत्यश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः॥

—वही १।२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्षेत् पुनस्तार्किकगन्धमुग्रम् ॥ —वही १।१९

कालिदास के साहित्यामृत का उन्होंने भूरि-भूरि पान किया था—

पठेत् समस्तान् किलकालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी ।

—वही १।१९

कोश, गीत, गाथा तथा देशी भाषाओं के काव्यों का उन्होंने भली-भाँति अध्ययन किया था—

गीतेषु गाथास्वथ देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्णम् ।

—वही १।१७

उनकी मित्रमण्डली उज्ज्वल चरित्र की थी और स्वयं वे भी बोलने तथा परिधान में भव्य थे। उनका अवशिष्ट समय सामयिक नाटक, अभिनय देखने एवं सङ्गीत-श्रवण में व्यतीत होता था। अच्छे कवियों और लेखकों के अपने यहाँ आ जाने पर अथवा कहीं भी मिल जाने पर वे उनका आदर सम्मान तथा आर्थिक सहायता करते थे—

नाटकाभिनयप्रेक्षा शृङ्गारालिङ्गिता मतिः ।
कवीनां सम्भवे दानं गीतेनात्माधिवासनम् ॥

—वही २।५

लोकाचार का उन्हें अच्छा ज्ञान था। एकान्त में कथाओं और कहानियों को सुनने के वे अभ्यासी थे। चित्रकला की आलोचना के लिये भी उनके पास सूक्ष्म दृष्टि थी। देश-देशान्तर में भ्रमण कर वहाँ की प्रथाओं, विशिष्टताओं एवं मानव भावनाओं का अध्ययन उनकी अपनी विशिष्टता थी। भारत का विशाल मानचित्र उनकी दृष्टि में रहता था। 'समयमातृका' में वेश्या 'कङ्काली' के जीवन-वर्णन के समय अपने इस वैशिष्ट्य का पर्याप्त प्रमाण उन्होंने प्रदर्शित किया है।

४. क्षेमेन्द्र का धर्म

शैव-दर्शन एवं धर्म की केन्द्रस्थली कश्मीर की पावन भूमि में रहने के कारण क्षेमेन्द्र के पिता शैव-धर्म के कट्टर अनुयायी थे। भगवान् शङ्कर की पूजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में वे केवलानन्द की अनुभूति करते थे। हाथों से भगवान् शङ्कर के लिङ्ग अथवा प्रतिमा का गाढालिङ्गन करते हुए उन्होंने अपने प्राणों का परित्याग कियां था—

पूजयित्वा स्वयं शर्वं प्रसरद्वाष्पनिर्झरः।
गाढं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत॥

—भारतमञ्जरी

शैव पिता के संरक्षण में रहने के कारण 'क्षेमेन्द्र' अपने जन्म से शैव थे। पिता के संरक्षण से क्षेमेन्द्र में शैवमत का जो वीज अङ्कुरित हुआ था, निश्चय ही वह शैव आचार्य 'अभिनव गुप्त' की शिक्षा एवं सहवास से द्विपत्रित तथा पल्लवित हुआ होगा। किन्तु कालान्तर में वे परम भागवत आचार्य 'सोमपाद' के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट हुए और संभवतः वैष्णव धर्म को ही अङ्गीकार कर लिये—

श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः।
धन्यतां यः परां प्राप्तो नारायणपरायणः॥

—भारतमञ्जरी

"बृहत्कथामञ्जरी" में भी उन्होंने ऐसा ही भाव व्यक्त किया है (बृहत्कथामञ्जरी १९।३७)।

क्षेमेन्द्र परम भागवत आचार्य "सोमपाद" को आचार्य "अभिनव गुप्त" की अपेक्षा अधिक आदर-सम्मान प्रदान करते थे। भागवत धर्म को स्वीकार करने के अनन्तर वे आजीवन इसी के अनुयायी बने रहे। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने संन्यस्त जीवन काल में "दशावतारचरित" की रचना की।

भागवत धर्म को स्वीकार करने पर भी क्षेमेन्द्र उसके कट्टर अथवा अन्ध अनुयायी नहीं थे। वे अन्य मतों का भी अध्ययन तथा समादर करते थे। उनकी दृष्टि में सभी देवों को समान स्थान प्राप्त था—"साम्यं सर्वसुरस्तुतौ"। (कवि० २।१९)। समन्वय की उनकी प्रवृत्ति विलक्षण थी। वे उदार आशय के एक सहृदय कवि थे। अपने इन्हीं सद्गुणों के कारण प्रौढावस्था में बौद्धमत का भी उन्होंने अनुशीलन किया था। इन सबका उनकी लेखनी पर भी व्यापक प्रभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा। उनकी "बोधिसत्त्वावदानकल्पलता" में भगवान् बुद्ध के प्राचीन जन्मों से सम्वद्ध पारमितासूचक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है। 'हीनयान' में जो स्थान जातकों का है, वही 'महायान' में अवदानों का है। अवदान का अर्थ है—शुभ्रचरित।

अपनी रचना के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही इसका तिब्बती भाषा में गौरवपूर्ण अनुवाद हुआ। एक वैष्णव कवि की कृति होने पर भी बौद्ध समाज में इतना आदर पाना 'क्षेमेन्द्र' की प्रौढ़ काव्यशैली एवं उक्त गुणों का पर्याप्त द्योतक है।

५. क्षेमेन्द्र की शिक्षा

जैसा ऊपर निर्देश किया गया है, "अभिनव गुप्त" इनके साहित्यिक गुरु थे। "अभिनव गुप्त" एवं "सोमपाद" से इन्होंने आध्यात्मिक विद्या का परिशीलन किया था। यद्यपि क्षेमेन्द्र अपने गुरु के रूप में इन्हीं दो आचार्यों का निर्देश करते हैं, तथापि इनके अतिरिक्त और भी इनके गुरु होंगे, जिनसे उन्होंने अन्य मतों एवं दर्शनों का अध्ययन किया होगा। वे प्रत्येक व्यक्ति को सर्वविध विद्वत्ता-प्राप्ति के लिए सबके शिष्यत्व-स्वीकृति की सम्मति देते हैं:—

"व्युत्पत्त्यै सर्वशिष्यता॥" (कवि० २।१४)। कवि "गङ्गक" को उन्होंने अपने उपाध्याय के रूप में स्मरण किया है।

६. क्षेमेन्द्र का साहित्यिक जीवन

अपने साहित्यिक जीवन के प्रभात में क्षेमेन्द्र एक अनुवादक मात्र प्रतीत होते हैं। कवित्वशक्ति तो उन्हें शत-शत अभ्यास के अनन्तर ही प्राप्त हुई थी। अधिक यथार्थ और किञ्चित् कटु बात तो यह है कि क्षेमेन्द्र कवि बने थे। उनमें नैसर्गिक भावोत्पन्न कवित्वशक्ति एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का पहले-पहल अभाव था। किन्तु 'क्षेमेन्द्र' की बलवती इच्छा थी एक सार्वभौम कवि बनने की। परिणामस्वरूप उन्होंने पैशाची भाषा में लिखित "गुणाढ्य" की "बृहत्कथा" का "बृहत्कथामञ्जरी" के नाम से संस्कृत में पद्यानुवाद किया। जैसा वे कहते हैं—इस ग्रन्थ के वे प्रथम अनुवाद कर्ता थे। इस अनुवाद के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्तर अवश्य ही उनकी लेखनी को कविता–क्षेत्र में विचरण करने के लिये शक्ति प्राप्त हुई होगी।

बाद में उन्होंने "रामायणमञ्जरी" "भारतमञ्जरी" एवं "वात्स्यायन-सूत्रसार" लिखा। उनके इन ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा काम-सूत्र का संक्षेप प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही वे अन्य विषयों का भी ज्ञानार्जन करते रहे। उनके ग्रन्थों से प्रकट है कि गणित, ज्योतिष, औषधि-शास्त्र, शल्यचिकित्सा, राजनीति, कामशास्त्र, शैव, वैष्णव तथा बौद्धदर्शन एवं धर्म तथा मन्त्रशास्त्र भी उन्हें भली-भाँति परिज्ञात थे। "भारतमञ्जरी" के लिखने के अनन्तर ही संभवतः वे 'व्यासदास' के विरुद से विभूषित हुए होंगे।

७. क्षेमेन्द्र का शब्द-भण्डार

क्षेमेन्द्र का शब्द-भण्डार विशाल है। उनकी शब्द-सङ्कलन-शक्ति को देखने से परिज्ञात होता है कि अपने समय तक के उपलब्ध समस्त कोश ग्रन्थों का उन्होंने सम्यक् गाढानुशीलन किया था। अप्रसिद्ध से भी अप्रसिद्ध शब्द उनकी दृष्टि में भ्रमण करते रहते थे और अवसर मिलते ही यथास्थान निविष्ट कर दिये जाते थे। किसी भी दृश्य अथवा भाव को अपने शब्द-भण्डार की सहायता से वे बड़ी ही सुगमता से चित्रित कर सकते थे। वस्तुतः वे शब्दकवि थे। उनकी रचनावली के कतिपय शब्द दुर्बोध्य हैं और संस्कृत वाङ्मय में उनका क्वाचित्क प्रयोग ही उपलब्ध होता है। शब्द काठिन्य के दुरधिगम्य विन्ध्यारण्य में बहुशः उपलब्ध, मनोहारिणी उपमा-पद्मस्थली क्षेमेन्द्र के साहित्य को अनुपम ढंग से सुरभित कर शाश्वतिकता का आकर्षक आवरण प्रदान करती है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया-कलाप अथ च दैनन्दिन जीवन के दृश्यों से ये उपमाएँ संगृहीत की गई हैं। उपमा के राज्य में 'क्षेमेन्द्र' को उच्चतर आसन दिया जा सकता है।

८. क्षेमेन्द्र के समय का वातावरण

क्षेमेन्द्र के समय कश्मीर का वातावरण कविता जैसी कोमल कला के अनु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शीलन के सर्वथा अनुपयुक्त था। कश्मीर के इतिहास में वह युग असन्तोष, षड्यन्त्र, नैराश्य तथा रक्तपात का काल था। तत्कालीन राजा 'अनन्त' जिसका निर्देश 'औचित्यविचारचर्चा' एवं 'समयमातृका' आदि ग्रन्थों की परिसमाप्ति पर किया गया है, स्वयं मानसिक दुर्बलता तथा बौद्धिक शिथिलता का पात्र था। तभी तो उसने १०६३ ई० में अपने ज्येष्ठ पुत्र 'कलश' को राज्य देकर भी थोड़े ही वर्षों के अनन्तर पुनः उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद वह १०७७ ई० में राज्यकार्य से अवश्य ही विरत हुआ और कुछ ही वर्षों के अनन्तर १०८१ ई० में आत्महत्या कर ली। उसकी महारानी "सूर्यवती" भी अपने पति की चिता पर सती हो गई।

कवि क्षेमेन्द्र अपने युग के अशान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट तथा मर्माहत थे कि उन्होंने उसे सुधारने में तथा पवित्र और विशुद्ध बनाने के लिए एवं दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की भावना को दृढ़ करने के निमित्त अपनी द्रुतगामिनी लेखनी को काव्य के नाना अङ्गों की रचना में लगाया। उन्होंने सुख-दुःख का विवेचन कर जीवन के साथ उसके सम्बन्धों को बड़ी ही समुचित रीति से घटित किया। जीवन की अभ्युन्नति को दृष्टि में रखकर सुमार्ग एवं कुमार्ग की बुराई भलाई का परीक्षण किया। सीधी चोट करनेवाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में दैन्य, कार्पण्य, शोषण, असमानता आदि सामाजिक प्रवृत्तियों पर समर्थ प्रहार किया। उनके नीति-विषयक उपदेशात्मक अथवा व्यङ्ग्यात्मक काव्यों का एकमात्र उद्देश्य था लोगों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाना। बस समाज के इसी उपकार के लिये उनका जीवन सर्वदा संघर्षरत रहा—

हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः॥

—देशोपदेश, १।४

उनकी कृतियों में भाग्य की अवश्यम्भाविता की स्वीकृति होने पर भी पुरुषार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इस प्रकार के इनके ग्रन्थों में अद्भुत मनोविज्ञान को देखकर आश्चर्य होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. क्षेमेन्द्र की कृतियाँ

'क्षेमेन्द्र' की कृतियों को कालक्रमानुसार इस प्रकार रखा जाता है :— (क) बृहत्कथामञ्जरी, भारतमञ्जरी, रामायणमञ्जरी, (ख) पवनपञ्चाशिका और सुवृत्ततिलक, (ग) विनयवल्ली, लावण्यवती, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवदानकल्पलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला, मुक्तावलिकाव्यम्, वात्स्यायनसूत्रसार और औचित्यविचारचर्चा, (घ) पद्यकादम्बरी, शशिवंशकाव्यम्, देशोपदेश, नर्ममाला, चित्रभारत, कनकजानकी, अमृततरंग, चतुर्वर्गसंग्रह और कविकण्ठाभरण, (ङ) दर्पदलन, कलाविलास, समयमातृका, सेव्यसेवकोपदेश, (च) दशावतारचरित और चारुचर्या।

कुछ लोग 'लोकप्रकाश' को भी उन्हीं की कृति बतलाते हैं। किन्तु यह मुगलकालीन किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिखित प्रतीत होता है। इसमें अनेक परसियन शब्द और मुसलमानी नाम जैसे—सलाम बन्दगी, ख्वाजा, मीर आदि उल्लिखित हैं। इनके अतिरिक्त कविकर्णिका, क्षेमेन्द्रप्रकाश, दानपारिजात, नीतिकल्पतरु, राजावली, लोकप्रकाश, व्यासाष्टक आदि ग्रन्थ भी उनके द्वारा विरचित बतलाये गये हैं। 'कविकर्णिका' का उल्लेख स्वयं उन्होंने ही 'औचित्यविचारचर्चा' में किया है—

कृत्वापि काव्यालंकारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम्। १।२

(क) बृहत्कथामञ्जरी :—

"बृहत्कथामञ्जरी" 'गुणाढ्य' की बृहत्कथा का सार है। इसमें १८ लम्बक और ७५०० पद्य हैं। कवित्व की दृष्टि से यह संस्करण बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण है। किन्तु इसकी भाषा में दुर्बोधता और वर्णनो में बहुत ही संक्षिप्तता कर दी गई है। इन न्यूनताओं के रहते हुए भी जहाँ-जहाँ नारीसौन्दर्य और राजकुमारों के शौर्य-बलप्रदर्शन के प्रसंग आये हैं वहाँ-वहाँ 'क्षेमेन्द्र' ने बड़ा ही मर्मग्राही एवं सरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

(ख) कविकण्ठाभरण :—

'कविकण्ठाभरण' में क्षेमेन्द्र ने कवित्वप्राप्ति, शिक्षा, चमत्कृति, गुण-दोष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोध तथा परिचयप्राप्ति का वर्णन किया है। इसमें पाँच सन्धियाँ हैं। एक-एक सन्धि में एक-एक विषय का विश्लेषण किया गया है। इस एक ग्रन्थ से ही क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एव उनकी कृतियों के विषय में एक साथ पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

(ग) सुवृत्ततिलक :—

इस ग्रन्थ में छन्दविषयक विश्लेषण किया गया है। इसमें तीन विन्यास (अध्याय) हैं। इस एक पुस्तक के अभ्यास से ही कोई भी व्यक्ति छन्दः-- शास्त्र का मर्मज्ञ हो सकता है।

(घ) समयमातृका :—

'समयमातृका' आठ समयों में विभक्त छः सौ पैंतीस श्लोकों का एक प्रवन्ध काव्य है। क्षेमेन्द्र ने इसके निर्माण का एकमात्र उद्देश्य वेश्याओं, कुट्टिनियों तथा विटों से श्रीमानों—धनिकों की सम्पत्ति-रक्षा ही वतलाया है :----"श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः।"[1] जैसा ऊपर निर्देश किया गया है क्षेमेन्द्र की लेखनी का एकमात्र उद्देश्य सहृदय व्यक्तियों का मनोरञ्जन ही न होकर समाज में फैली कुप्रवृत्तियों, अनाचारों, व्यभिचारों तथा वञ्चकता का उन्मूलन कर स्वस्थ वातावरण का निर्माण भी था। उन्होंने ग्राम में पटवारी से लेकर जज के कार्यों तक की एक समान आलोचना की है----

उत्कोचारब्धसंघट्टैः कूटरथादिभिः।
सादिंष्टाभीष्टसंपत्तिर्जग्राह जयपट्टकम् ॥ २४२ ॥

हास्य :—

क्षेमेन्द्र हास्य कथा के अधीश्वर हैं, आलोचक इनके वर्णन और चरित्र-चित्रण पर मुग्ध हो जाता है। हास्य-कथा के लेखक के रूप में यह अप्रतिम हैं। क्षेमेन्द्र की सिद्ध लेखनी पाठकों पर चोट करना जानती है। हास्य का आघात

---

१. संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः ॥ समयमातृका
यहाँ पर स्थानीय संवत्सर का निर्देश किया गया है, जिसके अनुसार १०५० ख्रिस्ताब्द समयमातृका का काल है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़ा सधा हुआ होता है, परन्तु इतनी सुन्दरता से होता है कि समाज का नग्न चित्र हमारे सामने खुलकर खड़ा हो जाता है। यह हास्य विध्वंसक न होकर समाज के पुनर्निर्माण की भावना से अनुप्राणित होता है। इनका प्रधान गुण व्यंग एवं आलोचना करने में है। इनका 'दर्पदलन' संस्कृत के हास्य साहित्य की एक विशिष्ट रचना है। 'समयमातृका' में भी क्षेमेन्द्र ने बीच-बीच में हास्य का पुट भर दिया है। दुष्ट व्यक्तियों और वैद्यों की हँसी उन्होंने बड़ी ही उपयुक्त भाषा में की है। समाज में फैले नीम-हकीम एवं आतुर व्यक्तियों से भी मोल-चाल करके धन लेने वाले वैद्य उनकी लेखनी की तीक्ष्णता से बचे न थे, देखिये—

सा मखे करभग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थितिः।
व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे ॥
योऽसाववद्यविद्याविद्वैद्यः सद्यः क्षयोद्यतः।
दर्पादातुरवित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १।२७-२८

ततस्तदपचारेण शिशौ जातज्वरे व्यधात्।
वैद्यदत्तोपवासा सा मत्स्यसूपपरिक्षयम् ॥
पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्य वार्तैव का।
द्वित्राण्येव दिनानि धात्रिदयया धात्रीरसः पीयताम् ॥
जीवत्वेष शिशुर्भजस्व विविधैरस्योत्सवैः संपदम्।
वैद्येनेति निवेद्यमानमकरोत् सा सर्वमेवाश्रुतम् ॥
समयकातृका २।२७१-७२

किन्तु उपहाससम्राट् क्षेमेन्द्र कभी-कभी ऐसा भी उपहास करते हैं, जो सर्वथा मर्यादा के विपरीत एवं उत्तेजक होता है। 'कङ्काली' अपने गत दिनों का वर्णन करती हुइ कलावती से कहती है कि—"एक बार मैंने 'घङ्करवाहन' नामक एक कामुक की प्रसन्नता के लिए बनावटी रूप से कहा----'आपके आलिङ्गन से मेरी शरीर पीड़ा न जाने कहाँ चली गई।'' मेरे इस कथन को सुन कर वह यह कह कर रोता हुआ चला गया कि "मुझे अपने अङ्गों का यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चमत्कार ज्ञात नहीं था, अन्यथा शूल--शरीरपीडा--से मेरी माता मरने न पाती----

विदितोऽयं प्रकारश्चेदभविष्यदसंशयः।
तज्जनन्या वियोगो मे नाभाविष्यद्विचेतसः॥ ४।६४

इसी एक स्थल को छोड़कर 'समयमातृका' में उल्लिखित हास्य-व्यंग उपयुक्त एवं प्रभावकारी हुआ है।

(ङ) औचित्यविचारचर्चा :—

जिस औचित्य की मान्यता को लेकर महाकवि क्षेमेन्द्र आलंकारिकों की पंक्ति में सम्मानित स्थान प्राप्त कर सके उसके विषय में उनका कहना है कि 'औचित्य ही रस का जीवनभूत है—प्राण है--वह काव्यास्वाद में चमत्काराधायक है--

औचित्यस्य चमत्कारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥

जो जिसके सदृश हो, जिससे मेल मिले उसे उचित कहते हैं और उचित का भाव ही औचित्य है :--

औचित्य० ३, पृ० ३

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते॥

—वही ७, पृ० १२

यद्यपि 'औचित्य' की सर्वातिशायिनी महत्ता का प्रतिपादन क्षेमेन्द्र ने ही किया है। इन्होंने ही 'औचित्यविचारचर्चा' लिख कर औचित्य रूप काव्य तत्त्व का व्यापक रूप स्पष्ट किया है। औचित्य को रस-सिद्ध काव्य का जीवित कहा है :----

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥

औचित्य० ५, पृ० ६

तथापि औचित्य के सर्वथा नवीन उद्भावक के रूप में क्षेमेन्द्र को नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माना जा सकता। औचित्य की चर्चा नाट्याचार्य 'भरत' एवं 'आनन्दवर्धन' आदि आचार्यों ने भी की है और 'अनौचित्य' को रसभङ्ग का कारण माना है।[1] निश्चय ही क्षेमेन्द्र ने पूर्वाचार्यों के औचित्य विषयक अभिप्राय को देखा होगा। इतना होने पर भी वे अपने को "औचित्य" के नवीन उद्भावक के रूप में ही इङ्गित करते हैं :----

क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ॥

—औचित्य०

ठीक है औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देने में क्षेमेन्द्र अवश्य ही नवीन हैं।

(च) औचित्य का इतिहास :---

अलंकार साहित्य के लम्बे इतिहास में औचित्य की मान्यता को ढूँढने के लिये हमें काल को दो भागों में बाँटना पड़ेगा---(१) पूर्व ध्वनि काल, एवं (२) उत्तर ध्वनिकाल। पूर्वध्वनिकाल में जिन आलंकारिकों का नाम आता है, उनमें प्रमुख हैं—आचार्य भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन और रुद्रट। उत्तर ध्वनिकाल को ध्वनिकाल से ही प्रारम्भ मानना पड़ेगा। इस काल के प्रमुख आचार्य हैं—आनन्दवर्धन और इनके अनुयायी अभिनव गुप्त, मम्मट, भोजराज, विश्वनाथ, हेमचन्द्र, केशवमिश्र, अप्पय दीक्षित और पण्डितराज जगन्नाथ। इनके अतिरिक्त कुछ और प्रमुख आचार्य भी इसी काल में आते हैं, जो ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं। इनमें कुन्तक, महिमभट्ट और क्षेमेन्द्र का नाम प्रधान रूप से लिया जा सकता है।

यद्यपि आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में औचित्य का महत्त्व मुक्तकण्ठ से नहीं स्वीकार किया गया है, फिर भी इसके महत्त्व को अप्रत्यक्षरूप से नाट्य-

---

१. अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ॥ नाट्यशास्त्र २३।६९
अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥ आन०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र में भो देखा जा सकता है। आचार्य ने प्रकृति प्रवृत्ति एवं रस प्रयोग के सन्दर्भ में बहुधा इस बात की ओर संकेत किया है कि इसके प्रयोग के लिए जो भी नियम बनाए जाँय वे सहृदयों (जनता) की स्वाभाविक प्रकृति के अनुकूल होने चाहिए। नाट्यशास्त्र (६।२४) में जहाँ नाट्य प्रयोग के सम्बन्ध में लोक-धर्मी तथा नाट्यधर्मी का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, वहाँ औचित्य के महत्त्व को देखा जा सकता है। रूपक के वर्णन के प्रसङ्ग में आचार्य भरत औचित्य के महत्त्व को स्पष्टतः स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं—

लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
तस्मान्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ॥ नाट्य० १६।११४

इस कथन में भरत नाट्य-तत्त्वों के निर्धारण में सामाजिकों की अभिरुचि को निर्णायक रूप में स्वीकार करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। क्षेमेन्द्र की ही भाँति भरत भी स्पष्ट एवं समान शब्दों के औचित्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि—

अदेशजो हि वस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ॥ नाट्य० १३।६९

तुलना कीजिये—

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः ।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः ॥
कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नुपूरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यता-
मौचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणाः ॥
औचित्य० ६, पृ० ९-१० ॥

भामह भी प्राचीन आलङ्कारिकों में एक हैं। इनके अलङ्कार ग्रन्थ का नाम है—काव्यालङ्कार। इन्होंने भी औचित्य के महत्त्व को कतिपय स्थलों पर उद्धृत किया है। महाकाव्यों की रचना के सम्बन्ध में भामह का कहना है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके निर्माण काल में कवि को लोक-स्वभाव का ध्यान सर्वदा रखना चाहिए।[१] औचित्य और अनौचित्य की निर्णयस्थली है—लोक-प्रकृति या प्रवृत्ति। काव्य-रीति के विषय में आचार्य भामह की विचारधारा अत्यन्त स्पष्ट है। उनका कहना है कि चाहे वैदर्भी रीति हो अथवा गौड़ी उसे सहृदय प्रेक्षकों या पाठकों की रुचि को आकृष्ट करना चाहिए। ऐसी स्थिति कभी नहीं आने देनी चाहिए जिससे उनके मन में अरुचि या घृणा उत्पन्न हो।[२] यह आलङ्कारिक उस समय बहुत स्पष्ट ढंग से औचित्य का समर्थन करता है जब कि वह कहता है कि—उचित स्थान पर विन्यस्त दोष भी गुण बन जाते हैं। सन्निवेश विवेश के कारण दुष्ट युक्ति भी उसी प्रकार शोभा कारक हो उठती है जिस प्रकार माला के मध्य में गुम्फित नीलकमल की पंखुड़ियाँ[३]। असाधु वस्तु भी आश्रय के सौन्दर्य के कारण सुन्दर हो जाती है, जैसे स्वभावतः काला कज्जल भी सुन्दरी की सलोनी आँखों में पड़ कर शोभाधायक बन जाता है।[४]

स्पष्टतः उक्त स्थलों तथा उदाहरणों में आचार्य भामह औचित्य की महिमा का प्रतिपादन करते हुए देखे जा सकते हैं। बहुत स्पष्ट नहीं तो प्रकारान्तर से उन्होंने औचित्य का महत्त्व स्वीकार ही किया है।

आचार्य दण्डी भी अपने काव्यादर्श में औचित्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। दण्डी के अनुसार जो लोकरञ्जन करने में समर्थ हो वही उत्तम काव्य है। उनके अनुसार अलङ्कारों को ऐसा होना चाहिए

---

१. युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥ १।२१

२. काव्यालङ्कार--१।३५

३. सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव॥
किञ्चिदाश्रयसौन्दर्याद् धत्ते शोभामसाध्वपि।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम्॥
काव्यालङ्कार १/४५--५५

४. काव्यादर्श १।१९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिससे सहृदयों के मन में किसी प्रकार की अरुचि न उत्पन्न हो।[१] वस्तुतः उनका कान्त गुण लौकिक मर्यादा का अतिक्रमण न करने वाली सर्व मनोहारी उपयुक्तता या औचित्य ही है।[२] दण्डी के अनुसार देश, काल, कला, लोक, न्याय तथा आगम से यदि विरोध हो तो उसे काव्य दोष कहा गया है। किन्तु कवि कौशल के कारण उस तरह का दोष भी कहीं-कहीं गुण हो जाता है। कहने का भाव यह है कि जब तक कोई वस्तु सहृदयों के मन में उद्वेग न पैदा करे तब तक उसे दोष नहीं कहा जा सकता।[3]

उक्त स्थलों के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आचार्य दण्डी भी औचित्य के विषय में पर्याप्त जागरूक थे। उनके कथनों का पूर्ण भाव है कि--अनुचित स्थान पर सन्निवेश के कारण ही दोष की दोषता है और उचित स्थान पर निवेश के कारण दोषों का दोषत्व-परिहार हो जाता है।

आचार्य वामन ने भी गुण एवं रीति के विवेचन के अतिरिक्त औचित्य के महत्त्व की ओर भी निर्देश किया है। इसके उदाहरण के लिए दोष के प्रकरण तथा कवि शिक्षा के प्रकरण को देखा जा सकता है।[४]

आचार्य रुद्रट आचार्य श्रृंखला के अन्तिम तथा औचित्य तत्त्व का नामोल्लेख पूर्वक निर्देश करने वाले प्रथम आचार्य हैं। इनके अनुसार काव्य में वे ही अलङ्कार ग्राह्य हैं जो प्रकृत रस का पोषण करते हों। काव्यालङ्कार के द्वितीय अध्याय में अनुप्रास अलङ्कार की पाँच जातियों का विवरण देने के बाद काव्य में उनके प्रयोग का वर्णन रुद्रट ने किया है। इस प्रसंग में इन्होंने औचित्य को ही प्रधान रूप से निकष माना है। रुद्रट के अनुसार अनुप्रास तथा यमक के प्रयोग में औचित्य की निर्णायक भूमिका रहती है[५]---

१. वही १।६२

२. कान्तं सर्वजगत्कान्तं लौकिकार्थानतिक्रमात्। वही—१।८५

३. यत्रोद्वेगो न धीमताम्। काव्यादर्श २/५१

४. काव्यालङ्कारसूत्र---२।२।१।१

५. काव्यालङ्कार ३।५९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवाः प्रयत्नादधिगम्य सम्यगौचित्यमालोच्य तथार्थसंस्थाम् ।
मिश्राः कवीन्द्रै रचनाल्पदीर्घाः कार्या मुहुश्चैव गृहीतमुक्ताः ॥

काव्यालङ्कार २।३२

इसी प्रकार काव्य में ग्राम्यत्व दोष के प्रसङ्ग में उनका कहना है कि अनुचित स्थान में प्रयुक्त पद ही ग्राम्यत्व दोष के जनक हैं। उनकी दृष्टि में अनौचित्य ही ग्राम्यत्व दोष का प्रधान कारण है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक लम्बी परम्परा से कुछ अस्पष्ट रीति से प्रवाहित होता चला आ रहा औचित्य प्रवाह रुद्रट के काव्यालङ्कार में प्रकट हो जाता है। यहाँ औचित्य की एक अभ्रान्त धारणा उभर कर सामने आ जाती है।

ध्वनिकाल तथा उत्तर ध्वनिकाल :—

आनन्दवर्धन युगान्तरकारी आलङ्कारिक हैं। चली आती हुई परम्परा के विपरीत इन्होंने अपने विश्व-विश्रुत ध्वन्यालोक में रस को ही काव्य का प्राणभूत तत्त्व माना है। उनके अनुसार रस कथमपि वाच्य नहीं होगा। रस की अभिव्यक्ति ध्वनि के द्वारा ही हो सकती है। इस रस के लिए सबसे आवश्यक वस्तु औचित्य ही है। वस्तु, अलङ्कार आदि तो रस के वाह्य परिधान मात्र माने जा सकते हैं।

रुद्रट के वाद औचित्य सिद्धान्त के विकास में प्रमुख तथा अत्यन्त स्पष्ट योगदान है—आनन्दवर्धन का। आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने युगान्तकारी ग्रन्थ ध्वन्यालोक में औचित्य तत्त्व का सर्वांगीण विवेचन किया है। उन्होंने कहीं-कहीं औचित्य शब्द का प्रयोग करके और कहीं-कहीं संकेत के द्वारा इस तत्त्व का पुष्कल विवेचन प्रस्तुत किया है। आनन्दवर्धन से पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों ने अपने ग्रन्थों के कुछ प्रकीर्ण अंगों के विषय में ही औचित्य तत्त्व की अवधारणा प्रस्तुत की थी। किन्तु आनन्दवर्धन ने अलङ्कार शास्त्रीय सभी अंगों के साथ औचित्य का अनिवार्य सम्बन्ध प्रदर्शित कर इसे (औचित्य को) काव्य के व्यापक तत्त्व के रूप में ले आकार प्रतिष्ठित कर दिया।

१- यदनुचितं यत्र पदं तत्तत्रैवोपजायते ग्राम्यम् ॥ काव्यालङ्कार ६।१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षेमेन्द्र के विख्यात ग्रन्थ "औचित्यविचारचर्चा" का मूल स्रोत है—आचार्य आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक। ध्वन्यालोक से ही स्फूर्ति तथा वैचारिक स्पन्दन ग्रहण कर क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया है। वस्तुतः काव्यतत्त्व के रूप में औचित्य की सर्वप्रथम स्पष्ट अवतारणा करने का श्रेय आनन्दवर्धन को ही दिया जाना चाहिए।

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में प्रकृति के औचित्य एवं अनौचित्य के विवेक की निर्धारणा बड़ी ही स्पष्टता के साथ प्रदर्शित की है। इसी प्रसंग में उन्होंने औचित्य के महत्त्व को बड़ी ही कमनीयता के साथ प्रदर्शित करते हुए लिखा है—

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

इसका अभिप्राय यही है कि रसभङ्ग का एक मात्र कारण अनौचित्य ही है, क्योंकि रस की उत्कृष्टता एवं समुज्ज्वलता का रहस्य है औचित्य का उपनिबन्धन।

औचित्य को काव्य-तत्त्व के रूप में स्वीकार करने का प्रवल मन्त्र यही है। क्षेमेन्द्र के औचित्य-सिद्धान्त की सुदृढ़ भित्ति की यही है आधारशिला। परवर्ती आचार्यों ने औचित्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में जितनी भी वाग्विभूति प्रदर्शित की है वह सब इसी मूल सूत्र का व्याख्यान मात्र है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य—औचित्य तत्त्वों के पहले से वहते चले आ रहे प्रवाह को गतिशीलता प्रदान करने में अभिनवगुप्तपादाचार्य का भी योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। औचित्य की इस गतिशीलता में अभिनवगुप्त पाद के योगदान का महनीय औचित्य भी है। क्योंकि अभिनव गुप्त औचित्य सिद्धान्त के व्यवस्थापक आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोक के प्रशस्त भाष्यकार हैं और इसके साथ ही औचित्य को काव्यजीवित मानने वाले क्षेमेन्द्र के साहित्यिक गुरु भी। शिष्य की कुशलता में गुरु की प्रेरणा को खोजना असंगत न होगा। ध्वन्यालोक में सुव्यवस्थित रूप से प्रतिपादित औचित्य-समर्थक तथ्यों एवं रहस्यों को जानने के लिए अभिनवगुप्त विरचित 'लोचन' टीका का अध्ययन दुर्निवार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्दवर्धन के अलंकारौचित्य का विशदीकरण करते हुए अभिनवगुप्त का कथन है कि काव्य में ऐसी दो अवस्थाएं हैं जिनमें अलङ्कारों का उपयोग नहीं किया जा सकता—(१) जब कि अलङ्कार्य की सत्ता न हो और (२) अलंकार्य की विद्यमानता रहने पर भी अलंकार का औचित्य न हो।

शरीर में यदि आत्मा है; शरीर सजीव है, तभी अलंकार उसकी शोभा के सम्पादक हो सकते हैं। यदि शरीर निर्जीव है, मृत है तब तो अलंकार निरर्थक हैं। उनका मृत शरीर के लिए कोई उपयोग नहीं है।

इसी प्रकार संसार से विरक्त व्यक्ति के शरीर को भी आभूषणों से अलंकृत करना शोभाधायक नहीं शोभापर्षक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिनव गुप्त के विचार से काव्य के प्राणभूत तत्त्व रस आदि के अभाव में अलंकारों का प्रयोजन कथमपि सिद्ध नहीं होता तथा रस आदि की सत्ता होने पर भी अनुचित अलंकार अलंकारक न होकर दूषक ही होते हैं—

तथा ह्यचेतनं शवशरीरं कटककुण्डलाद्युपेतमपि न भाति, अलङ्कार्यस्याभावात्। यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति, अलंकार्यस्यानौचित्यात्॥" (ध्वन्यालोकलोचन)

काश्मीरी आलंकारिकों के मध्य वक्रोक्ति के समान औचित्य को भी काव्य तत्त्व के रूप में बहुत पहले ही मान्यता मिल चुकी थी। जिस प्रकार अलंकार के आलोचन से वक्रोक्ति की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार रस ध्वनि के अध्ययन से औचित्य का आविर्भाव हुआ। ध्वन्यालोककार के बाद कतिपय आचार्यों की दृष्टि औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में देखने के लिए उत्सुक-सी प्रतीत होने लगी। ऐसे लोग रस आदि के स्थान पर औचित्य को ही काव्यात्मा मानने लगे थे। आचार्य अभिनव गुप्त ने इन इन आचार्यों के अभिमत का खण्डन इन शब्दों में किया है :—

"औचित्यवती (अतिशयोक्तिः) जीवितमिति चेद् औचित्यनिबन्धनं रसभावादि मुक्त्वा नान्यत् किञ्चिदस्तीति। तदेवान्तर्भाति मुख्यं जीवितं न तु सा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोजराज की कीर्ति के दो प्रमुख स्तम्भ हैं—(१) सरस्वती-कण्ठाभरण और (२) अलङ्कार-प्रकाश। भोज के रचित ग्रन्थों में इन दो ग्रन्थों का सर्वोच्च स्थान है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों में कहीं भी औचित्य को स्वतन्त्र काव्य-तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। तथापि 'अपद' दोष, 'विरुद्ध' दोष तथा 'भाविक' शब्दगुण आदि के आधार रूप में औचित्य को अप्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। औचित्य तत्त्व की आधारशिला पर प्रतिष्ठित अनेक अलङ्कारों का भी वर्णन भोजराज ने अलङ्कार-प्रकाश में किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजराज ने औचित्य को भले ही काव्यात्मा के रूप में न माना हो पर उसकी सत्ता को तो अवश्य स्वीकार किया है।

इनके अतिरिक्त कुन्तक, महिमभट्ट तथा क्षेमेन्द्र आदि कुछ ऐसे आचार्य हैं जो उत्तर ध्वनिकाल के होते हुए भी ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं। यहाँ संक्षेप में इन आचार्यों के ग्रन्थों का भी सर्वेक्षण कर लेना चाहेंगे।

कुन्तक--कुन्तक का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है "वक्रोक्तिजीवित"। यह ग्रन्थ अपनी मौलिकता तथा विचार की प्रौढता के कारण अलङ्कार वाङ्मय में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। वक्रोक्ति को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व मानने के कारण ही इस ग्रन्थ का नाम 'वक्रोक्तिजीवित' पड़ा है। इसके अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य की आत्मा है।

आचार्य कुन्तक जिस वक्रता को काव्य का जीवन मानते हैं उसका मूलाधार औचित्य ही है। उनका स्वयं अपना कथन है कि—'वक्रता का रहस्य है पद का औचित्य। उचित (अनुरूप) कथन ही (वक्रता का) जीवन है। यदि वक्तव्य के एक अंश में भी औचित्य का अभाव हो जाय तो काव्यरसिकों को आह्लादित करना सम्भव नहीं है।"[1] कुन्तक ने काव्य का जो लक्षण किया

१—तत्र पदस्य तावदौचित्यं वक्रतायाः परं रहस्यमुचिताभिधानजीवितत्वात्। वाच्यस्याप्येकदेशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लादकारित्वहानिः ॥
(१ उन्मेष ५७ कारिका की वृत्ति) ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है,[१] उसका भी यदि सूक्ष्म विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि 'साहित्य' का वहाँ अर्थ है शब्द और अर्थ का उचित सहावस्थान अथवा सम्बन्ध।

कुन्तक के अनुसार मार्ग (रीति) के तीन भेद हैं—(१) सुकुमार, (२) विचित्र तथा (३) मध्यम। उनके अनुसार इन तीनों मार्गों में दो सामान्य गुण रहते हैं। इनके नाम हैं--औचित्य और सौभाग्य। औचित्य किसे कहते हैं ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा है—"जिस सरल वर्णन-प्रकार के द्वारा स्वभाव के महत्त्व का पोषण होता है वही औचित्य गुण है और इसका प्राण है उचित आख्यान अर्थात् यथानुरूप वर्णन"—

आञ्जस्येन स्वभावस्य महत्त्वं येन पोष्यते।

अब तक के निदर्शनों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आचार्य कुन्तक औचित्य को सर्वाधिक व्यापक काव्यतत्त्व स्वीकार करते हैं। जहाँ उन्होंने वक्रोक्ति के अवान्तर भेदों को दर्शाया है वहाँ भी वे औचित्य को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। अलङ्कारों के प्रसङ्ग में भी कुन्तक औचित्य को पर्याप्त महत्व देते हैं। दीपकालङ्कार के प्रसंग में उनका कथन है कि–"औचित्यपूर्ण, सुन्दर तथा काव्य के मर्मज्ञों को आह्लादित करनेवाला, (प्रस्तुत एवम् अप्रस्तुत) पदार्थों के प्रतीयमान धर्म का प्रकाशक अलङ्कार दीपक है।"[२] इसके अतिरिक्त कतिपय अवसरों पर भी कुन्तक औचित्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं।

महिमभट्ट का प्रसिद्ध ग्रन्थ है---व्यक्तिविवेक। इसमें आनन्दवर्धन के द्वारा स्थापित ध्वनि का खण्डन कर रस आदि व्यंग्य अर्थों को अनुमेय

---

१. शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥
प्रकारेण तदौचित्यमुचिताख्यानजीवितम्।
(वक्रोक्तिजीवित १।५३)॥

२. औचित्यावहमम्लानं तद्विदाह्लादकारणम्।
अशक्तं धर्ममर्थानां दीपयद् वस्तु दीपकम्॥ (३।१७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अनुमान के द्वारा सिद्ध) बतलाने का प्रयास किया गया है। महिमभट्ट ने एक स्थान पर लिखा है कि—"औचित्य एक ऐसा काव्य-तत्त्व है जो काव्य-स्वरूप के निरूपण की महिमा से स्वतः सिद्ध है, अतः उसकी अलग से चर्चा करना व्यर्थ है। विभाव आदि का वर्णन करना मात्र कवि का कर्तव्य है, दूसरा नहीं। ये विभाव आदि ही शास्त्रानुसार कवि के द्वारा उपनिबद्ध होने पर रस की अभिव्यक्ति के हेतु होते हैं, अन्यथा नहीं। काव्य रसात्मक होता है अर्थात् काव्य की आत्मा है रस फिर उसमें अनौचित्य के स्पर्श की संभावना भी कैसे की जा सकती है? जब काव्य में अनौचित्य की संभावना ही नहीं है तो फिर उसे हटाने के लिए अपने को विचक्षण माननेवाले लोग जो भिन्न-भिन्न काव्य-लक्षणों की सृष्टि करते हैं, वह व्यर्थ है।[1]

उपर्युक्त अंश पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि व्यक्तिविवेककार औचित्य के समर्थक थे। एक अन्य स्थान पर भी उन्होंने अनौचित्य का लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि—"विवक्षित रस आदि की प्रतीति में विघ्नकारी होना ही अनौचित्य है :—

एतस्य (अनौचित्यस्य) विवक्षितरसादिप्रतीतिविघ्नविधायित्वं नाम सामान्यलक्षणम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आनन्दवर्धन जैसा ही महिमभट्ट भी रस तथा औचित्य के विषय में अपना अभिमत व्यक्त करते हैं। आनन्दवर्धन की भाँति व्यक्तिविवेककार ने भी अनौचित्य को प्रधान दोष स्वीकार किया है। इनके मत से भी औचित्य काव्य का प्रमुख उपादान है।

क्षेमेन्द्र—महिमभट्ट के बाद आचार्य क्षेमेन्द्र का काल आता है। यद्यपि काव्य-तत्त्व के रूप में औचित्य के महत्त्व को स्वीकार करने का एक लम्बा

---

१. तस्य (अनौचित्यस्येत्यर्थः) काव्यस्वरूपनिरूपणसामर्थ्यसिद्धस्य पृथगुपादानवैयर्थ्यात्। विभावाद्युपनिबन्ध एव हि कविव्यापारो नापरः। ते च यथाशास्त्रमुपनिबध्यमाना रसाभिव्यक्तेर्निबन्धनभावं भजन्ते, नान्यथा। रसात्मकं च काव्यमिति कुतस्तत्रानौचित्यस्पर्शः संभाव्यते, यन्निरासार्थमित्थं काव्यलक्षणमाचक्षीरन् विचक्षणम्मन्याः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतिहास है तथापि औचित्य का सर्वाङ्गीण विवेचन प्रस्तुत करते हुए इसे काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित कर औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय पूर्णतः क्षेमेन्द्र को ही दिया जाता है और यही समीचीन भी है। औचित्यविचारचर्चा ही औचित्यसम्प्रदाय का आकरभूत मूल ग्रन्थ-रत्न है। यही सब कारण हैं कि विज्ञ वर्ग क्षेमेन्द्र को औचित्य सम्प्रदाय का प्रवर्तक आचार्य मानता है। प्रभूत संस्कृत-वाङ्मय के रचयिता क्षेमेन्द्र का संस्कृत-समाज चिर ऋणी रहेगा।

१०. क्षेमेन्द्र के द्वारा उल्लिखित कवि

'क्षेमेन्द्र' ने अपनी कृतियों में, विशेषकर 'कविकण्ठाभरण', 'औचित्य-विचारचर्चा' एवं 'सुवृत्ततिलक में, निम्नलिखित कवियों का नामोल्लेख एवं उदहरण प्रस्तुत किया है :—

व्यास, उत्पलराज, तुंजीर, कलश, कालिदास, भास, हर्ष, रत्नाकर, परिमल, वल्लट, गौडीनक, राजशेखर, इन्दुराज, वीरदेव, साहिल, भट्टनारायण, दीपक, मुक्ताकण, श्यामल, भवभूति, लाटडिण्डीर, रिस्सो, यशोवर्मा, चक्र, वाग्भट्ट, भर्तृमेण्ठ, अभिनन्द, माघ, परिव्राजक, गङ्गक (क्षेमेन्द्र ने इन्हें अपने उपाध्याय के नाम से लिखा है), भारवि, भर्तृहरि, चन्द्रक, शिवस्वामी, इन्द्रभानु, मयूर, मुक्तिकलश, दामोदर गुप्त, भट्ट वाचस्पति, भट्ट मल्लट, विद्यानन्द, मातृगुप्त, बाण, मालवरुद्र, कार्पटिक, प्रवरसेन, राजपुत्र मुक्तापीड, अमरुक (अमरक भी), आनन्दवर्धन, भट्टप्रभाकर, धर्मकीर्ति, भट्ट लट्टन, कुमारदास, मालवकुवलय, वाराहमिहिर, गन्दिनक, भट्ट उदयसिंह और राजपुत्र लक्ष्मणादित्य[१]। 'क्षेमेन्द्र' ने इन कवियों में से सर्वाधिक सम्मान व्यास के प्रति तदनु कालिदास एवं राजशेखर के प्रति अभिव्यक्त किया है।

'क्षेमेन्द्र' संस्कृत-साहित्य के सर्वदा प्रकाशमान नित्य नवीन हीरक हैं। न केवल संस्कृत-विद्वन्मण्डली ही 'क्षेमेन्द्र' की कृतियों से उपकृत है, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज उनका चिरऋणी होकर श्रद्धावनत है।

१. 'उदयसिंह और 'लक्ष्मणादित्य' क्षेमेन्द्र के शिष्य थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

विषयाः	पृष्ठांकाः
मङ्गलाचरणम्	१
रसजीवितभूतौचित्यविचारः	३–११
काव्यशरीर-प्राणभूतौचित्यविचारः	१२–१३
पदौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१४–१६
पदाऽनौचित्यम्	१७–१६
पदौचित्यस्य द्वितीयमुदाहरणम्	२०–२१
वाक्यगतौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२१–२५
पदानौचित्यस्योदाहरणम्	२६–२७
प्रबन्धार्थौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२७–३३
प्रबन्धार्थानौचित्यस्योदाहरणम्	३३–३६
गुणौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	३७–४०
गुणानौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	४१–४३
अलङ्कारौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	४४–४६
अलङ्कारानौचित्यस्योदाहरणम्	४७–५३
रसौचित्यानौचित्तयोः लक्षणोदाहरणानि	५४–६५
रससङ्करौचित्यस्य लक्षणोदाहरणानि	६५–१०७
रससङ्करानौचित्यस्योदाहरणनि	१०८–१३
क्रियापदौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	११३–१६
क्रियापदानौचित्यस्योदाहरणम्	११७–१८
कारकौचित्यानौचित्तयोः लक्षणोदाहरणानि	११६–४४
लिङ्गौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१४५–४८
लिङ्गानौचत्यस्योदाहरणम्	१४८–४६
वचनौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१४६–५२
वचनानौचित्यस्योदाहरणम्	१५३–५४
विशेषणौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१५५–५८
विशेषणानौचित्यस्योदाहरणम्	१५८–६०
उपसर्गौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१६०–६३
उपसर्गानौचित्यस्योदाहरणम्	१६४–६५
निपातौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१६५–६८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयाः	पृष्ठांकाः
निपातानौचित्यस्योदाहरणम्	१६८–७०
कालौचित्यस्य लक्षणोदाहरणानि	१७०–७७
कालानौचित्यदाहरणम्	१७८
देशौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१७६–८२
देशानौचित्यस्योदाहरणम्	१८२–८४
कुलौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१८४–८६
कुलानौचित्यस्योदाहरणम्	१८७–८८
व्रतौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१८६–६१
व्रतानौचित्यस्योदाहरणम्	१६१–६२
तत्त्वौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१६३–६५
तत्त्वानौचित्यस्योदाहरणम्	१६५–६७
सत्त्वौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	१६७–६६
सत्त्वानौचित्यस्योदाहरणम्	२००–१
अभिप्रायौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२०२–४
अभिप्रायानौचित्यस्योदाहरणम्	२०५–६
स्वभावौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२०७–१०
स्वभावानौचित्यस्य उदाहरणम्	२११–१२
सारसंग्रहौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२१२–१५
सारसंग्रहानौचित्यस्योदाहरणम्	२१६
प्रतिभौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२१७–१६
प्रतिभानौचित्यस्योदाहरणम्	२२०–२२
अवस्थौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२२३–२५
अवस्थानौचित्यस्योदाहरणम्	२२६–२७
विचारौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२२८–३१
विचारानौचित्यस्योदाहरणम्	२३२–३३
नामौचित्यस्य लक्षणोदाहरणम्	२३४–३८
नामानौचित्यस्योदाहरणम्	२३८–४०
आशीर्वचनौचित्यस्य लक्षणोदाहरण	२४१–४४
आशीर्वचनानौचित्यस्योदाहरणम्	२४५–४६
ग्रन्थकर्तृ परिचयः	२४७–४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकविक्षेमेन्द्रविरचिता

औचित्यविचारचर्चा

'रमा' संस्कृतहिन्दीव्याख्यालङ्कृता

कृतारिवञ्चने दृष्टिर्येनाञ्जनमलीमसा।
अच्युताय नमस्तस्मै परमौचित्यकारिणे ॥ १ ॥

अन्वयः—येन, (विष्णुना), अरिवञ्चने, दृष्टिः, अञ्जनमलीमसा, कृता-परमौचित्यकारिणे, तस्मै, अच्युताय, नमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ :—येन=जिस, (विष्णुना=विष्णु के द्वारा), अरिवञ्चने= शत्रुओं को छलने के लिये, दृष्टिः=(अपनी) आँख, अञ्जनमलीमसा = काजल से काली, काजल से कजरारी, कृता = बनाई गई थी; परमौचित्यकारिणे=औ; चित्य के निर्वाह में अनुपम, तस्मै=उन (जगद्विदित), अच्युताय=अच्युत को, भगवान् विष्णु को, नमः=नमस्कार हैं ॥ १ ॥

अर्थ :—जिस विष्णु के द्वारा (सागर-मन्थन से निकले हुए अमृत-वितरण के समय) शत्रुओं को छलने के लिये (अपनी) आँख काजल से कजरारी बनाई गई थी; औचित्य के निर्वाह में अनुपम उन (जगद्विदित) अच्युत को नमस्कार है ॥ १ ॥

टीका—"समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्" अनेन शिष्टाचारानुमितश्रुतिप्रमाणेन "मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते" इति महाभाष्य-रूपस्मृतिप्रमाणेन च ग्रन्थादौ मङ्गलमवश्यमाचरितव्यमिति धिया निर्विघ्नं प्रारीप्सितसिद्धिमनुरुध्य महाकविःक्षेमेन्द्रः स्वेष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलमुपस्था-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पयन् ग्रन्थप्रतिपाद्यमौचित्यं वस्तु ध्वनयति—कृतारिवञ्चन इति । येन=येन विष्णुनेत्यर्थः, अरिवञ्चने—अरीणाम्=शत्रूणां वञ्चने=छलने, प्रतारणविषय इत्यर्थः । विषयसप्तम्यत्र । सागरमन्थनोद्भूतामृतवितरणसमय इति शेषः । दृष्टिः=नेत्रम्, अञ्जनमलीमसा-अञ्जनेन=कज्जलेन मलीमसा=मलिना, अञ्जनाञ्चितेति यावत्, कृता=सम्पादिता । परमौचित्यकारिणे – परमम्=उत्कृष्टं यदौचित्यम् उचितस्य भावः कर्म वा, ष्यञि वृद्धौ "यस्येति च" इत्यलोपे च औचित्यम्=औचिती ("औचित्यमौचिती" इत्यमरः) तत्करोतीति=सम्पादयतीति तस्मै, औचित्यनिर्वाहेऽवधिभूतायेत्यर्थः, तस्मै=औचित्यसम्पादने जगद्विदितायेत्यर्थः, अतः शास्त्रेषु स्थितिविधायिने, अच्युताय—नास्ति च्युतम्=स्खलनमौचित्याद्यस्य नाच्योष्ट इति वाच्युतस्तस्मै विष्णवे इत्यर्थः, ("पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः" इत्यमरः), नमः=प्रणताञ्जलिरस्तीति क्रियाशेषः । काश्मीरिकः क्षेमेन्द्रो महाकविर्वैष्णव आसीदतोऽत्र विष्णवे नमो विदधातीति ज्ञेयम् । कीदृशाय विष्णवे नम इति जिज्ञासायां निर्दिशति—अच्युताय । कस्मादच्युतायौचित्यनिर्वाहादत औचित्यकारित्वमत्र विशेषणपदम् । किमत्रौचित्यकारित्वमत्र विष्णुनाच्युतेन निर्वाहितमिति प्रश्न उच्यते—येन दृष्टिरञ्जनमलीमसा कृता । अमृतवितरणकाले मोहिनीरूपधारणे नेत्रयोरञ्जनेन रञ्जनमेवौचित्यमावहतीति ध्येयम् । अनेन कविना ग्रन्थप्रतिपाद्यस्यौचित्यस्यापि ध्वननं कृतमिति ॥ १ ॥

टिप्पणी—औचित्यम्—सुसंस्कृत चित्तवाले सहृदय अपने दैनन्दिन आचरण में औचित्य=मर्यादा का सर्वदा ध्यान रखते हैं । औचित्य आचार-व्यवहार का प्राण है । औचित्य से च्युत शब्दावली अथवा आचरण सुसंस्कृत सहृदय व्यक्ति को तुरन्त खटकता है । औचित्य के निर्वाह में शिथिल शब्दावली सुनते ही कर्णकटु लगती है । साहित्य समाज का दर्पण होता है । अतः औचित्य का निर्वाह साहित्य में आवश्यक ही नहीं दुर्निवार है । सर्वविध अलङ्कृत सुसज्जित वाक्य यदि औचित्य के निर्वाह में असमर्थ हैं तो उन्हें निष्प्राण ही समझना चाहिए । औचित्य के इसी महत्त्व-प्रदर्शन के लिए नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा के धनी कवि क्षेमेन्द्र ने प्रस्तुत ग्रन्थरत्न "औचित्यविचारचर्चा" की रचना की है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अञ्जनमलीमसा—देव-दैत्य सागर के मन्थन में संलग्न थे। मन्थन के फलस्वरूप चित्तविक्षेपकरी मदिरा तथा जीवनदायिनी शक्ति अमृत का आविर्भाव हुआ। अमृत के लिये देव-दैत्य लड़ पड़े। आपस में छीना-झपटी होने लगी दैत्य दानवों से प्रबल थे। भगवान् भक्त-भयहारी हैं। बिगड़ती स्थिति के परिणाम को उन्होंने तुरत भाप लिया। फलतः त्रिभुवन मोहिनी सुन्दरी का रूप उन्होंने धारण किया। मोहिनी रूप धारण करने में उन्होंने औचित्य-निर्वाह का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा। अपने कमल-नेत्रों को अञ्जन से अलङ्कृत करना वे न भूले। आखिर नेत्रों की इसी कमनीयता से तो उन्हें दैत्यों को काम-बाण से आहत कर बेसुधबुध करना था। उनके स्त्री-वेष-विन्यास में कहीं भी औचित्य का अभाव न था। यही कारण है कि कवि ने उन्हें "परमौचित्यकारिणे" तथा "अच्युताय" कहा है॥ १॥

युग्मकम्—

कृत्वापि काव्यालङ्कारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम्।
तत्कलङ्कं विवेकञ्च विधाय विबुधप्रियम्॥ २॥
औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥ ३॥

अन्वयः—क्षेमेन्द्रः, काव्यालङ्काराम्, कविकर्णिकाम्, कृत्वा, अपि च, तत्कलङ्कम्, विवेकम्, विधाय, अधुना, चमत्कारकारिणः चारुचर्वणे, रसजीवितभूतस्य, औचित्यस्य, विबुधप्रियम्, विचारम् कुरुते॥ २–३॥

शब्दार्थ :—क्षेमेन्द्रः=क्षेमेन्द्र, काव्यालङ्काराम्=काव्यों के अलङ्कारों—उपमा, रूपक आदि—का विवेचन प्रस्तुत करनेवाली, कविकर्णिकाम्='कविकर्णिका' नामक ग्रन्थ को, कृत्वा=रचकर, बनाकर, अपि च=और, तत्कलङ्कम्="काव्यकलङ्क", विवेकम्="काव्यविवेक" को, विधाय=बनाकर, अधुना सम्प्रति, चमत्कारकारिणः= काव्य में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले, चारुचर्वणे=रमणीय रसास्वाद की अवस्था में, रसजीवितभूतस्य=रस के जीवनभूत, औचित्यस्य=औचित्य का, विबुधप्रियम्=विद्वन्मनोग्राही, विचारम्=विचार को, कुरुते=प्रस्तुत कर रहे हैं॥ २–३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थः—क्षेमेन्द्र काव्यों के अलङ्कारों—उपमा, रूपक आदि—का विवेचन-प्रस्तुत करनेवाले 'कविकर्णिका' नामक ग्रन्थ को रचकर और 'काव्यकलङ्क' एवं 'काव्यविवेक' को बनाकर सम्प्रति काव्य में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले, रमणीय रसास्वाद की अवस्था में रस के जीवनभूत (प्राणाधायक तत्त्व) औचित्य का विद्वन्मनोग्राही विचार प्रस्तुत कर रहे हैं ॥ २–३ ॥

टीका—महाकविः क्षेमेन्द्रः सम्प्रति प्रस्तुतविवेच्यं वस्तु निर्दिशति—कृत्वापीति। क्षेमेन्द्रः=ग्रन्थकर्ता कविः, काव्यालङ्काराम्—काव्यस्य अलङ्काराः=उपमारूपकादयो यस्यां सा तादृशीम्, अत्र व्यधिकरणो बहुव्रीहिः, अन्यथाऽलङ्कारशब्दस्य नित्यपुंलिङ्गत्वात् स्त्रीलिङ्गत्वमनुपपन्नं स्यात्, काव्यगतालङ्कारविवेचनपरामिति यावत्, कविकर्णिकाम्=कविकर्णिकानामकं ग्रन्थविशेषम्, कृत्वा=विधाय, अपि च=तथा, तत्कलङ्कम्-तस्य=काव्यस्येति यावत् कलङ्काः=दोषाः यस्मिन् तत् तादृशम्, काव्यकलङ्कं निबन्धविशेषमिति यावत्, विवेकम्=काव्यविवेकमित्यर्थः, विधाय=रचयित्वा, अधुना=सम्प्रति, चमत्कारकारिणः=विच्छित्तिविशेषप्रयोजकस्य, सहृदयहृदयाह्लादकारिण इति यावत्, चारुचर्वणे=रमणीयास्वादे, रसास्वाददशायामिति यावत्, रसजीवितभूतस्य=रसस्यापि प्राणाधायकतत्त्वस्य, तदभावे रसनीयताविरहेण रसत्वस्यैवासम्भवादिति भावः। एतेन रसादपि औचित्यस्यैव प्राधान्यं ध्वनितम्। औचित्यस्य=वक्ष्यमाणलक्षणस्य काव्यजीवितभूतस्य, विबुधप्रियम्=विद्वज्जनाभिनन्दितम्, एतेन साधारणजनाभिनन्दनाभावेऽपि नास्यकिञ्चिदपकृतं भवतीति ध्वनिः, विचारम्=विवेचनम्, कुरुते=विधत्ते। ग्रन्थरचनया यशोलाभरूपस्य क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वेनात्मनेपदं ज्ञेयम् ॥ २–३ ॥

टिप्पणी—तत्कलङ्कं विवेकञ्च। यहाँ 'औचित्यविचार-चर्चा' के अतिरिक्त क्षेमेन्द्र रचित तीन ग्रन्थों का निर्देश किया गया है। ये ग्रन्थ हैं—१. काव्यकलङ्क २. काव्यविवेक तथा ३. कविकर्णिका। ये तीनों ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं हैं। इतिहासकारों ने केवल 'कविकर्णिका' का ही उल्लेख किया है, 'काव्यकलङ्क' और 'काव्यविवेक' का नहीं। यदि क्षेमेन्द्र के द्वारा रचित 'काव्यकलङ्क' और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'काव्यविवेक' की सत्ता मानने में किसी को आपत्ति हो तो उक्त पंक्ति की संगति किसी प्रकार इस तरह की जा सकती है—क्षेमेन्द्र ने पहले 'कविकर्णिका' का प्रणयन किया। पुनः उसके कलङ्क=दोष का परिमार्जन करने के लिये विवेकपूर्ण मन्थन करके औचित्य का विचार। फलतः 'औचित्यविचारचर्चा' की रचना हुई। इससे 'कविकर्णिका' में जो कुछ भी त्रुटि रह गई थी उसका परिमार्जन हो गया ॥ २-३ ॥

काव्यस्यालमलङ्कारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः—यस्य, (काव्यस्य), जीवितम्, औचित्यम्, विचिन्त्य, अपि, न, दृश्यते; (तस्य), काव्यस्य, अलङ्कारैः, अलम्, मिथ्यागणितैः, गुणैः, किम् ? ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—यस्य = जिस, (काव्यस्य=काव्य का), जीवितम् = जीवनभूत, औचित्यम्=औचित्य, विचिन्त्य = विचारने पर, खोजने पर, अपि = भी, न = नहीं, दृश्यते=दिखलाई पड़ता है; (तस्य=उस), काव्यस्य = काव्य के, अलङ्कारैः=अलङ्कार, अलम्=व्यर्थ हैं, मिथ्यागणितैः=निरर्थक प्रसिद्ध, गुणैः =गुणों से, किम् = क्या प्रयोजन ? ॥ ४ ॥

अर्थः—जिस काव्य में उस (काव्य) का जीवनभूत औचित्य तत्त्व अन्वेषण करने पर भी दिखलाई नहीं पड़ता उस काव्य के अलङ्कार व्यर्थ हैं तथा उसके व्यर्थ ही गिने जाने वाले गुण भी निष्प्रयोजन हैं ॥ ४ ॥

टीका—अलङ्कारेभ्यो गुणेभ्यश्चौचित्यस्यातिशयं दर्शयितुमुपक्रमते—काव्यस्येति। यस्य काव्यस्य, यस्मिन् काव्य इति यावत्, जीवितम्=प्राणाधायकं तत्त्वम्, औचित्यम्=अनुरूपविधानरूपम्, विचिन्त्य=विचार्यापि, अन्विष्यापीत्यर्थः, न दृश्यते=नावलोक्यते; तस्य काव्यस्य, अलङ्कारैः=उपमारूपकादिभिरलङ्करणैः, अलम्=निरर्थकम्। असति जीवने भूषणमिव निष्प्रयोजनमिति तात्पर्यम्। मिथ्यागणितैः=मृषाख्यातैः, गुणैः=ओजः प्रसादादिरूपैर्गुणैः, किम् = किं प्रयोजनम् ? न किमपीति भावः। यस्मिन् काव्ये प्राणाधायकं तत्त्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौचित्यं कृतेऽप्यन्वेषणे न प्राप्नोति तत्र गुणालङ्कारादिसंयोजनश्रमस्तु निरर्थक एवेति तात्पर्यम् ॥ ४ ॥

अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणाः सदा।
औचित्यं रस-सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अलङ्काराः, तु, अलङ्काराः, एव, गुणाः, सदा, गुणाः, एव; (किन्तु), रससिद्धस्य, काव्यस्य, जीवितम्, औचित्यम्, स्थिरम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—अलङ्काराः=उपमारूपक आदि अलङ्कार, तु=तो, अलङ्काराः=बाह्यशोभाधायक तत्त्व, एव=ही हैं, गुणाः=प्रसाद, माधुर्य आदि, सदा=सर्वदा, गुणाः=उदारता सत्यशीलता आदि के समान गुण, एव=ही हैं; (किन्तु=परन्तु), रससिद्धस्य=रस से सम्पृक्त, रस से संवलित, काव्यस्य=काव्य का, जीवितम् प्राण, औचित्यम्=औचित्य, स्थिरम = निश्चित होता है ॥ ५ ॥

अर्थः—उपमा रूपक आदि अलङ्कार तो आभूषणों के समान बाह्य शोभाधायक मात्र हैं तथा प्रसाद, माधुर्य आदि गुण उदारता, सत्यशीलता आदि आंतरिक गुणों की भाँति गुण ही हैं। अर्थात् ये दोनों हो काव्य के प्राणभूत तत्त्व नहीं हो सकते। (परन्तु) रस से संवलित काव्य का प्राण तो औचित्य ही निश्चित होता है ॥ ५ ॥

टीका—अलङ्कारगुणरसादिभ्य औचित्यस्यातिशयं वक्ति—अलङ्कारा इति। अलङ्काराः=अनुप्रासरूपकोपमादयः, तुशब्दस्त्वलङ्कारादीनां महत्त्वातिशयमपाकर्तुं प्रयुक्तः, अलङ्कारा एव=बाह्यशोभाधायकानि भूषणान्येव, एतान्यलङ्करणान्येव न तु अलङ्कार्यपदमाञ्जि। गुणाः=प्रसादमाधुर्यादयः, सदा=सर्वदा, गुणा एव=सत्यश्रुतशीलादिवद् गुणा एव। किन्तु रससिद्धस्य-रसेन=शृङ्गारादिना, सिद्धस्य=प्रथितस्य, सम्पृक्तस्येति यावत्, काव्यस्य=कविकर्मणः, जीवितम्=जीवनम्, औचित्यम्=वक्ष्यमाणलक्षणमनुरूपविधानानुरूपम्, स्थिरम्=विनिश्चितम्, औचित्यं विना न कविकर्म काव्यपदवीमधिरोहतीति तात्पर्यम् ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परस्परोपकारकरुचिरशब्दार्थरूपस्य काव्यस्योपमोत्प्रेक्षादयो ये प्रचुरालङ्कारास्ते कटककुण्डलकेयूरहारादिवदलङ्कारा एव, बाह्यशोभाहेतुत्वात्। येऽपि काव्यगुणाः केचन तल्लक्षणविचक्षणैः समाम्नातास्तेऽपि श्रुतसत्यशीलादिवद् गुणा एव, आहार्यत्वात्। औचित्यं त्वग्रे वक्ष्यमाणलक्षणं स्थिरमविनश्वरं जीवितं काव्यस्य, तेन विनास्य गुणालङ्कारयुक्तस्यापि निर्जीवत्वात्। रसेन शृङ्गारादिना सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्य धातुवादरससिद्धस्येव तज्जीवितं स्थिरमित्यर्थः।

अर्थः—परस्पर एक दूसरे के उपकारक शब्द एवं अर्थरूप काव्य के उपमा, उत्प्रेक्षा आदि जो विशिष्ट शास्त्रीय अलङ्कार हैं वे यथास्थान विन्यस्त कटक, कुण्डल, केयूर तथा हार आदि लौकिक अलङ्कारों की ही भाँति हैं। क्योंकि ये अलंकार शरीर की वाह्य शोभा को ही बढ़ाने वाले हैं। अर्थात् जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि शरीर की बाह्य शोभा के कारण होते हैं उसी प्रकार अनुप्रास, रूपक आदि शब्दार्थं रूप काव्य की बाह्य शोभा को बढ़ाने में हेतु होते हैं। इसी प्रकार काव्य गुणों के विज्ञ जनों के द्वारा, प्रसाद, माधुर्य आदि जो काव्य के गुण कहे गये हैं वे भी श्रुत, सत्य, शील आदि की भाँति गुण ही हैं गुणी अर्थात् काव्यात्मा नहीं। इसका कारण यह है कि ये गुण भी आहार्य हैं—बाद में आरोपित होते हैं। अर्थात् काव्य गुणों के अभाव में भी. अपनी सत्ता कायम रख सकते हैं। ऐसी स्थिति में गुणों को आत्मा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि, आत्मा तो वह पदार्थ है जिसके अभाव में किसी की सत्ता ही नहीं रह सकती। औचित्य का लक्षण आगे किया जायगा। यह औचित्य ही काव्य का स्थिर, अविनश्वर आत्मा है। औचित्य रूप आत्मा के बिना गुणों तथा अलंकारों से युक्त भी काव्य निर्जीव है। अतः धातु शब्द से कहे जाने वाले रसों से व्यक्ति का शरीर नश्वर होकर भी संसार में प्रसिद्धि तो पाता है, किन्तु आत्मा तो शरीर से भिन्न अविनश्वर पदार्थ ही माना जाता है। ठीक इसी प्रकार काव्य रस से संसार में प्रसिद्धि प्राप्त करता है, पर आत्मा तो उसका स्थिर तत्त्व औचित्य ही है। इसका भाव यह है कि जैसे प्राणियों के शरीर में सबसे स्थूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्व हैं पञ्चमहाभूत और धातु उनसे सूक्ष्म हैं। किन्तु आत्मा उनसे भी सूक्ष्म तत्त्व है। इसी प्रकार काव्य में शब्द, अर्थ और इनके धर्म अलङ्कार सबसे स्थूल तत्त्व हैं। रस तथा रस के धर्म गुण उनकी अपेक्षा सूक्ष्म तत्त्व अवश्य हैं। किन्तु आत्मा का स्थान तो उनसे भी सूक्ष्म तत्त्व औचित्य को ही प्रदान किया जा सकता है।

टीका—उक्तार्थमेव स्फुटमभिधत्ते—परस्परेति। परस्परोपकारकरुचिर-शब्दार्थरूपस्य—परस्परम्=अन्योन्यमुपकारकौ=शोभाजनकौ रुचिरौ=मनो-हरौ यौ शब्दार्थौ तद्रूपस्य काव्यस्य=कविकर्मणः, उपमोत्प्रेक्षादयो ये प्रचुरा-लङ्कारास्तन्नामकप्रभूतालङ्कारविशेषास्ते कटककुण्डलकेयूरहारादिवत्=लोक-प्रसिद्धविविधाभूषणवदित्यर्थः, अलङ्कारा एव=बाह्यशोभाकराण्याभूषणान्येवेति भावः। कथं बाह्यशोभाहेतुत्वात्=शब्दार्थरूपस्य काव्यशरीरस्य सौन्दर्याधायक-त्वात्। यथा कटकादीन्याभूषणानि शरीरस्य बाह्यशोभाजनकानि तथैव काव्या-लङ्कारा अपि काव्यशरीरस्येत्यर्थः। एतेनालङ्काराणामलङ्कारकत्वमेव नालङ्का-र्यत्वमिति भावः। येऽपि काव्यगुणाः=ओजःप्रसादमाधुर्यादयः, केचन=कति-पये, आन्तरिकधर्मरूपा गुणाः, तल्लक्षणविचक्षणैः—तेषाम्=गुणानामित्यर्थो लक्षणानि तेषां विचक्षणैः=विज्ञैर्विद्वद्भिः, समाम्नाताः=कथितास्तेऽपि श्रुत-सत्यशीलादिवद् गुणा एव, अर्थात् गुणगुणिनोर्भेदस्य सकलजगत्प्रसिद्धत्वेन तेषा-मप्यात्मस्थानीयत्वाभाव इत्यर्थः। तत्र हेतुमाह—आहार्यत्वादिति। आहार्य-त्वात्=आरोपविषयत्वात्। अग्रे तद्धितलक्षणमौचित्यम्=उचितसंविधानादि-रूपम्, काव्यस्य=कविकृतेः, अविनश्वरम्=शाश्वतिकम्, जीवितम्=जीवनम्, स्थिरम्=निर्धारितं काव्यमर्मज्ञैरिति शेषः। तेन विना=औचित्येन विना, औचित्यविरह इत्यर्थः, गुणालङ्कारयुक्तस्यापि=गुणालङ्कारसज्जितस्यापि, अस्य काव्यस्य निर्जीवत्वात्=निष्प्राणत्वात्। धातुवादेति—धातुवादैः=धातु-पदवाच्यैः रसैः=शुक्रादिभिः सिद्धस्य=स्थितस्य प्रसिद्धस्य वा शरीरस्य जीवनं तद्भिन्नं स्थिरं तथैव रसेन शृङ्गारादिना प्रसिद्धस्य काव्यस्य औचित्यमेव तज्जी-वितं निश्चितमित्यभिप्रायः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टिप्पणी—औचित्यं काव्यस्य जीवितम्—जिस प्रकार आभूषण शरीर की बाह्यशोभा के कारण हैं और उदारता, सत्यशीलता आदि आत्मा के गुण हैं उसी प्रकार शब्दार्थ रूप काव्य के बाह्य शोभा के जनक हैं—उपमा, रूपक आदि अलङ्कार तथा ओज, प्रसाद एवं माधुर्य आदि गुण उसके आन्तरिक सौन्दर्य के कारण हैं। गुण एवं गुणी कभी एक नहीं हुआ करते। अतः काव्य का आत्मा न तो अलङ्कार है और न गुण ही। इस प्रकार औचित्य को ही काव्य का आत्मतत्त्व मानना समीचीन है।

उक्तार्थस्यैव विशेषमाह—

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः ।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः ॥ ६ ॥

अन्वय :—अलङ्कृतिः, (यथा), उचितस्थानविन्यासात्, अलङ्कृतिः, (तथैव), गुणाः, औचित्यात्, अच्युताः, एव गुणाः, भवन्ति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—अलङ्कृतिः=आभूषण एवं अलङ्कार (यथा=जैसे), उचितस्थानविन्यासात्=ठीक स्थान पर प्रयोग करने से, उचित स्थान पर धारण करने से, अलङ्कृतिः=अलङ्कार (अर्थात् शोभाजनक या शोभावर्धक) कहे जाते हैं। (तथैव=उसी प्रकार से), गुणाः=प्रसाद, माधुर्य आदि एवं सत्यशीलता आदि दोनों ही प्रकार के गुण—औचित्यात्=औचित्य से, अच्युताः=अस्खलित होकर ही, गुणाः = गुण, भवन्ति=होते हैं ॥ ६ ॥

अलङ्कृतिरुचितस्थानविन्यासादलङ्कर्तुं क्षमा भवति, अन्यथा त्वलङ्कृतिव्यपदेशमेव न लभते। तद्वदौचित्यादपरिच्युता गुणा गुणतामासादयन्ति अन्यथा पुनरगुणा एव।

पीछे कही गई बात को ही विशेष रूप से कहा जा रहा है—

अर्थ :—आभूषण एवं काव्यालङ्कार जैसे ठीक स्थान पर प्रयोग करने से अलङ्कार (अर्थात् शोभाजनक या शोभावर्धक) कहे जाते हैं उसी प्रकार से प्रसाद, माधुर्य आदि एवं सत्यशीलता आदि—दोनों ही प्रकार के गुण—औचित्य से अस्खलित होकर ही गुण होते हैं ॥ ६ ॥

टीका—पूर्वनिर्दिष्टमेवार्थं विवृण्वन्नाह—उचितस्थानेति। यथा अलङ्-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतिः=अलङ्करणम्, अलं करोतीत्यलङ्कृतिः, अनुप्रासोपमादयः अलङ्कारास्तथा कटककेयूरादीन्यांभूषणान्युभयविधमेव, उचितस्थानविन्यासात्--उचितम् =समीचीनम् यत्स्थानं तत्र विन्यासात्=प्रयोगाद्धारणाच्च, अलङ्कृतिः=अलंकरणसमर्थो भवति, तथैव गुणाः=काव्यगुणाः प्रसादमाधुर्यादयस्तथा सत्यशीलतादयो व्यक्तिगुणाश्च, औचित्यादच्युताः=अपरिभ्रष्टाः एवेति दार्ढ्यें, गुणा भवन्ति=गुणतामासादयन्ति ॥ ६ ॥

अर्थः—अलङ्कार उचित स्थान पर प्रयोग करने से ही अलङ्कृत करने में समर्थ होते हैं। उचित स्थान पर प्रयोग के अभाव में अलङ्कार कहे ही नहीं जा सकते। इसी प्रकार औचित्य की सीमा का उल्लंघन करने वाले ही गुण गुणपद की योग्यता को प्राप्त करते हैं अन्यथा वे फिर अगुण ही कहे जाते हैं ॥६॥

टीका—अलङ्कृतिरिति। अलङ्कृतिः—अलंकरोतीत्यलङ्कृतिः=भूषणसमवायः, उचिते=योग्ये स्थाने=अवयवे विन्यासादेव=सम्प्रयोगादेव, अलङ्कर्तुम्=भूषयितुम्, क्षमा=योग्या, भवति=जायते। अन्यथा=उचितस्थानसम्प्रयोगाभावे, अलङ्कृतिव्यपदेशम्—अलङ्कृतेः=अलङ्करणस्य व्यपदेशम्=संज्ञाम्, एवेति दार्ढ्यें, न लभते=न प्राप्नोति। तद्वत्=एवमेव, औचित्यात्=औचित्यभावात्, अपरिच्युताः=अस्खलिताः गुणाः गुणताम्=गुणभावम्,आसादयन्ति=प्राप्नुवन्ति, गुणपदवाच्या भवन्तीत्यर्थः अन्यथा=औचित्याभावे, पुनः=तु, अगुणा एव=गुणविपरीतभावोत्पादका एवेति। भीरोः शौर्यादिवर्णनेऽनन्विततया रसादिपोषणापेक्षया तद्व्याघातस्यैव सम्भावनेति ज्ञेयम् ॥

यदाह—

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यता-
मौचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणाः ॥

अर्थ :—औचित्य के अभाव में अलङ्कार एवं गुण किस प्रकार अपनी सार्थकता खो देते हैं, इसी को प्रदर्शित करने के लिए अग्रिम श्लोक की अवतारणा की जा रही है—जैसा कि कहा गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि कोई सुन्दरी गले में करधनी कमर में चमकते-दमकते हार हाथ में पायजेब तथा पैर में बाजूबन्द (केयूर) पहन ले तो उसकी अज्ञता पर कौन व्यक्ति उसका उपहास नहीं करेगा ? इसी प्रकार हाथ जोड़ कर शरण में आए हुए व्यक्ति पर शूरता एवं शत्रु पर करुणा प्रदर्शित करनेवाले कौन-से व्यक्ति उपहास के पात्र नहीं होते हैं ? वस्तुतः औचित्य के बिना न तो अलंकार शोभा प्रदान करते हैं और न गुण ही लोगों को आकृष्ट कर सकते हैं।

टीका—गुणालङ्कारयोरौचित्येनैव गुणालङ्कारतेति प्रदर्शनायोदाहरति—कण्ठे=गले, मेखलया=काञ्च्या, काञ्चीधारणयेत्यर्थः वा=अथवा, नितम्ब-फलके=कटिप्रदेशे, तारेण=निर्मलेन, हारेण=मुक्तामालया, मुक्तामाला-परिधापनेनेत्यर्थः, पाणौ=हस्ते, नूपुरबन्धनेन=नूपुरधारणेन, वा=इत्थमेव, चरणे=पादे, केयूरपाशेन=भुजबन्धधारणेन, कण्ठे हारस्थाने कटिप्रदेशालङ्कारस्य मेखलाया धारणेनेत्थमेव कट्यां कण्ठाभूषणस्य हारस्य धारणेनेति भावः, अनेनैव रूपेण प्रणते=करौ बद्ध्वा शरणागते, तथा रिपौ=शत्रौ, करुणया=कृपाप्रदर्शनेन के जना हास्यताम्=उपहासपदवीम्, न आयान्ति=नागच्छन्ति ? उपहास्यतामेवायान्तीति भावः। एवमेव औचित्येन विना=औचित्याभावे, अलङ्कृतिः=अलङ्कारः, रुचिम्=शोभाम्, न प्रतनुते=न विस्तारयति; न च गुणा रुचिं प्रतन्वते इति वचन-विपरिणामेनान्वयः औचित्यमेव गुणालङ्कारयोः शोभाजनने कारणमिति ज्ञेयम् ॥

टिप्पणी—गले में हार पहना जाता है और कमर में करधनी धारण की जाती है। अब कोई सुन्दरी यदि गले में करधनी तथा कमर में हार धारण कर लें तो उसकी लोग हँसी ही उड़ावेंगे। इसी प्रकार हाथ जोड़ कर शरण में आये हुए व्यक्ति पर यदि कोई अपनी शूरता प्रकट करता है और शत्रु पर कृपा दिखलाता है तो उसकी भी लोग हँसी ही करते हैं। ठीक यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी समझनी चाहिए। साहित्य में तो मर्यादा का अधिक ध्यान रक्खा जाता है। अतः औचित्य के बिना न तो अलंकार ही शब्दार्थ की शोभा बढ़ाते हैं और न गुण ही अपनी ओर लोगों को आकृष्ट करते हैं ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि तदौचित्यमित्याह—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ॥ ७ ॥

यत्किल यस्यानुरूपं तदुचितमुच्यते, तस्य भावमौचित्यं कथयन्ति ।

अन्वयः—यस्य, यत्, सदृशम्, किल, तत्, आचार्याः, उचितम्, प्राहुः, यः, उचितस्य, भावः, तत्, औचित्यम्, प्रचक्षते ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—यस्य = जिसके, यत् = जो, सदृशम् = योग्य है, किल = निश्चय ही, तत् = उसको, आचार्याः = आचार्यों ने, उचितम् = उचित, योग्य, प्राहुः = कहा है, च = और, यः = जो, उचितस्य = उचित का, भावः = भाव है, क्रिया है, तत् = उसको, औचित्यम् = औचित्य, प्रचक्षते = कहते हैं ॥ ७ ॥

अर्थ :—वह औचित्य क्या है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

जिस वस्तु के जो योग्य होता है, उसको आचार्यों ने उचित कहा है, और जो उचित का भाव है उसको औचित्य कहते हैं ॥ ७ ॥

जो जिसके अनुरूप है उसे उचित कहा जाता है; उचित के भाव को औचित्य कहते हैं ॥

टीका—औचित्यं काव्यस्य जीवितमित्युक्तम् । किं तदौचित्यमिति जिज्ञासायामुच्यते—उचितं प्राहुरिति, यस्य = यस्य वस्तुनः, यत् = यद्वस्तु कार्यं वा, उचितम् = योग्यम्, आचार्याः = साहित्यकोविदः, व्यवहाराभिज्ञाः वा, उचितम् = योग्यम्, प्राहुः = कथयन्ति । उचितस्य = योग्यस्य, यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते । उचितस्य भाव औचित्यमिति व्युत्पत्तिः ॥ ७ ॥

अधुना सकलकाव्यशरीरजीवातुभूतस्यौचित्यस्य प्राधान्येनोपलभ्यां स्थितिं दर्शयितुमाह—

पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलङ्करणे रसे ।
क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ॥ ८ ॥
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते ।
तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसङ्ग्रहे ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि ।
काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् ॥१०॥

एतेषु पदप्रभृतिषु स्थानेषु मर्मस्विव काव्यस्य सकलशरीरव्यापि जीवितमौचित्यं स्फुटत्वेन स्फुरदवभासते ॥

अर्थ :—अब काव्य शरीर के प्राणभूत औचित्य के कुछ प्रमुख उदाहरणों को यहाँ प्रदर्शित कर रहे हैं । संख्या में सत्ताईस ये उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(१) पद, (२) वाक्य, (३) प्रवन्धार्थ, (४) गुण, (५) अलंकार, (६) रस, (७) क्रिया, (८) कारक, (९) लिंग, (१०) वचन, (११) विशेषण, (१२) उपसर्ग, (१३) निपात, (१४) काल, (१५) देश, (१६) कुल, (१७) व्रत, (१८) तत्त्व, (१९) सत्त्व, (२०) अभिप्राय, (२१) स्वभाव, (२२) सारसंग्रह, (२३) प्रतिभा, (२४) अवस्था, (२५) विचार, (२६) नाम, (२७) आशीर्वाद । काव्य के इन अंगों में व्याप्त रहने वाला औचित्य ही काव्य का जीवन है ।

जिस प्रकार शरीर के समस्त भागों में व्याप्त जीवन कुछ मर्म स्थानों में स्पष्ट रूप से स्फुरित होता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार काव्य के मर्म के समान इन पद, वाक्य आदि स्थानों में स्पष्ट रूप से स्फुरित होने वाला औचित्य ही काव्य का जीवन है । यद्यपि यह औचित्य काव्य के सम्पूर्ण अंगों में उसी प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे शरीर के समस्त स्थानों में आत्मा ॥ ८–१० ॥

टीका—अधुनेति । अधुना = सम्प्रति, सकलकाव्यशरीरजीवातुभूतस्य—सकलम् = समग्रं यत् काव्यस्य शरीरम् = देहस्तस्य जीवातुभूतस्य = प्राणभूतस्य, औचित्यस्य प्राधान्येन = मुख्यरूपेण, न तु सामग्र्येणेत्यभिप्रायः, एतेन, पदवाक्याद्यतिरिक्तेषु स्थलेष्वप्यौचित्यस्य स्थितिर्निर्दिष्टा । उपलभ्याम् = प्राप्याम्, स्थितिम् = विद्यमानताम्, दर्शयितुमाहेत्यवतरणग्रन्थः । निम्ननिर्दिष्टेषु पदवाक्यादिस्थलेषु प्राधान्येनौचित्यमुपलभ्यत इति तदर्थः ।

पद इति—(१) पदे = सुप्तिङन्तरूपे शब्दे, (२) वाक्ये = पदसमूहो वाक्यमिति पदसमूहे, (३) प्रबन्धार्थे—प्रबन्धस्य = रघुवंशादिकाव्यस्य अर्थे —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिधेये, (४) गुणे=ओजःप्रसादादिरूपे गुणे, (५) अलङ्करणे=उपमोत्प्रेक्षादिरूपेऽलङ्कारे, (६) रसे=शृङ्गारादौ, (७) क्रियायाम्=भवति-करोतीत्यादिपदबोध्ये, (८) कारके=कर्तृकर्मरूपे, (९) लिङ्गे=स्त्री-पुं-नपुंसकरूपे, (१०) वचने=एकवचन-द्विवचन-बहुवचनेषु, (११) विशेषणे=अवच्छेदके, (१२) उपसर्गे=क्रियापदपूर्वसंलग्ने प्रपरादिरूपे, (१३) निपाते=अद्रव्यार्थके च-वा-हादिरूपे, (१४) काले=समये, (१५) देशे=स्थाने, (१६) कुले=वंशे, (१७) व्रते=नियमविशेषरूपे, (१८) तत्त्वे=निष्कृष्टार्थे, (१९) सत्त्वे=अन्तर्बलप्रसङ्गे, (२०) अभिप्राये=तात्पर्ये, (२१) स्वभावे=प्रकृतौ, (२२) सारसङ्ग्रहे=निष्कृष्टार्थोपस्थापने, (२३) प्रतिभायाम्=नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा, तस्याम्, (२४) अवस्थायाम्=वयसि, (२५) विचारे=विवेचने, (२६) नाम्नि=संज्ञाभिधाने, (२७) आशिषि=आशीर्वचने । एतेषु काव्याङ्गेषु=काव्यावयवेषु व्यापि=व्यापकम्, औचित्यमेव जीवितम्=जीवनं मनीषिणः प्राहुः=कथयन्ति ॥

एतेषु पदप्रभृतिष्विति । यथा शरीरे सर्वत्र जीवनं व्याप्तं भवति । किन्तु मर्मस्थानेषु वैशिष्ट्येनोपलभ्यते । यदि मर्मस्थान आघातो भवति तदा प्राणा उत्क्रामन्ते । एवमेव काव्ये सर्वत्रौचित्यमपेक्षितं किन्तु मर्मस्थानीयेषु पदवाक्यादिषु विशेषेण तत्सत्ता स्फुरति । तत्रौचित्यव्याघाते काव्यं निष्प्राणं भवतीति ज्ञेयम् ॥ ८–१० ॥

तेषूदाहरणानि क्रमेण दर्शयितुमाह—

तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम् ।
चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम् ॥ ११ ॥

एकमेवोचितं पदं तिलकायमानं बिभ्राणा सूक्तिः समुचितपरभागशोभातिशयेन रुचिरतामावहति ।

अन्वयः—कस्तूरीकृतम्, तिलकम्, बिभ्रती; चन्द्रानना, इव, चान्दनम्, तिलकम्, बिभ्रती श्यामा, इव तिलकम् एकम्, (अपि), उचितम्, पदम्, बिभ्रती, सूक्तिः, भाति ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थः—कस्तूरीकृतम्=कस्तूरीविरचित, तिलकम्=तिलक को, बिभ्रती=धारण की हुई, चन्द्रानना=गौरवर्णा चन्द्रमुखी की, इव=भाँति, चान्दनम्=धवल चन्दन के, तिलकम्=तिलक को, बिभ्रती=लगाई हुई, श्यामा=श्यामवर्णा तरुणी की, इव=तरह, तिलकम्=तिलकायमान, तिलक की तरह सर्वोत्कृष्ट, एकम्=एक, (अपि=भी), उचितम्=योग्य, पदम्=पद को, बिभ्रती=धारण की हुई, सूक्तिः=सत्कवि की रचना, भाति=सुशोभित होती है ॥ ११ ॥

अर्थः—कस्तूरी विरचित तिलक को धारण की हुई गौरवर्णा चन्द्रमुखी की भाँति, धवल चन्दन के तिलक को लगाई हुई श्यामवर्णा तरुणी की तरह, तिलकायमान एक (भी) उचित पद को धारण की हुई सत्कवि की रचना सुशोभित होती है ॥ ११ ॥

टीका—पूर्वमौचित्योदाहरणप्रदर्शनक्रमे पदगतमौचित्यं विचारयति–तिलकमिति । कस्तूरीकृतम्=मृगमदरचितम्, श्याममिति यावत्, तिलकम्=विशेषकम्, बिभ्रती=धारयन्ती, चन्द्राननेव=गौरवर्णा तरुणीव, तथा चान्दनम् चन्दनस्येदं चान्दनम्=मलयचन्दननिर्मितम्, धवलमिति भावः, तिलकम्=मस्तकबिन्दुम्, बिभ्रती=दधती, श्यामेव=श्यामवर्णा युवतिरिव, तिलकम्=तिलकायमानम्, प्राधान्यमधिगच्छत्, एकमप्युचितं पदम् बहूनां तिलकायमानानां पदानां सत्तायां पुनः किमुत वक्तव्यम्, बिभ्रती सूक्तिः=सत्कविभणितिः, भाति=शोभते ॥ ११ ॥

एकमेवोचितमिति । उचितमतस्तिलकायमानमेकमपि पदं बिभ्राणा=धारयन्ती सूक्तिः समुचितपरभागशोभातिशयेन—समुचितः=औचित्यसंवलितो यः परभागस्तस्य शोभातिशयेन=सौन्दर्याधिक्येन, रुचिरताम्=सौन्दर्याधिक्यम्, आवहति=धारयति ॥

यथा परिमलस्य—

मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराकुले,
नाथास्मिन्निति वन्दिवाचि बहुशो देव श्रुतायां पुरा ।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः,
कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—पदगत औचित्य को दिखलाने के लिए कहते हैं—जैसे परिमल कवि का—

हे नाथ, आपकी इस तलवार की धारा के जल से परिव्याप्त संग्राम में शत्रुओं के झुण्ड के झुण्ड डूब गये—इस बात को मैंने वन्दीजनों के मुख से पहले बहुत बार सुना है। ऐसा कह कर, घोर जंगल में (प्यास से व्याकुल), भोली-भाली, गुर्जरनरेश की महारानी, जल-प्राप्ति की आशा से, चकित होकर अपने पति की तलवार पर बार-बार दृष्टिपात करती है।

विशेष—महारानी अत्यन्त भोली है। वह पहली बार अपने पति के साथ अरण्यश्री का आनन्द लेने घोर जंगल में गई थी। वहाँ वह प्यास से व्याकुल हो उठी : उसने सुन रक्खा था कि महाराज की तलवार की धारा में शत्रु डूब जाते हैं। अतः वह जल मिलने की आशा से बार-बार अपने पतिदेव की तलवार को देखकर उक्त वचन कहती है।

टीका—पदगतमौचित्यमुदाहर्तुमाह—यथा परिमलस्येति। मग्नानीति। हे देव=हे नाथ, अस्मिन्=एतस्मिन् पुरो वर्तमाने, त्वत्खड्गधाराकुले=त्वत्करवालधाराचिते, समरे=युद्धे, द्विषताम्=शत्रूणाम्, कुलानि=समवायाः, मग्नानि=ब्रुडितानि, इति=एतत्, वन्दिवाचि=वन्दिजनैः कृतायां तव स्तुतौ, पुरा=पूर्वम्, बहुशः=अनेकबारम्, श्रुतायाम्=आकर्णितायाम् सत्याम्, मुग्धा=अतिसरलचित्ता, गुर्जरभूमिपालमहिषी=गुर्जरराजस्य प्रधाना राज्ञी, कान्तारे=अतिघोरेऽरण्ये, पाथसः=जलस्य, प्रत्याशया=प्राप्त्याशया, चकिता सती, पत्युः=स्वामिनः, कृपाणे=खड्गे, दृशौ=नेत्रे, विमुञ्चति=प्रतिक्षिपति ॥

अत्र मुग्धापदेनौचित्यचमत्कारिणा सूक्तिः शरदिन्दुवदनेव श्यामतिलकेन श्यामेव शुभ्रविशेषकेण विभूषिता सकलकविकुलललामभूतां विच्छित्तिमातनोति।

अर्थः—इस पद्य में अर्थौचित्य के कारण चमत्कार को उत्पन्न करने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मुग्धा' इस पद के प्रयोग से यह सूक्ति, श्याम तिलक से विभूषित गोरी युवती तथा धवल तिलक से अलंकृत श्यामवर्णा तरुणी की तरह, समस्त कविकुल के लिये स्पृहणीय चमत्कार को उत्पन्न करती है।

विशेष—गुर्जरनरेश की रानी कितनी भोली है कि उसे यह भी पता नहीं है कि जिस तलवार की धारा में शत्रु-समूह डूबता है उससे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझाई जा सकती। उसका यह भोलापन 'मुग्धा' पद के प्रयोग से अभिव्यक्त किया गया है। मुग्धापद के प्रयोग से वस्तुतः कविता प्राणवती हो उठी है, इसका अनुभव सभी सहृदय करते हैं।

टीका—अत्र मुग्धापदेनेति। अत्र औचित्यचमत्कारिणा=अर्थौचित्यचमत्कारोपस्थापकेन, मुग्धापदेन=मुग्धापदप्रयोगेण, सूक्तिः=कविभणितिः, श्यामतिलकेन=कस्तूरीविरचितविशेषकेण, विभूषिता=अलंकृता, शरदिन्दुवदनेव-शरदि=शरत्समये य इन्दुः=चन्द्रस्तद्वत् वदनम्=मुखम् यस्याः साः तादृशीव, तथा शुभ्रविशेषकेण=धवलचन्दनतिलकेन, विभूषिता=सुशोभिता, श्यामेव=श्यामवर्णा षोडशवार्षिकी तरुणीव, सकलकविकुलललामभूताम्, सकलम्=समग्रम् यत् कविकुलम्=सहृदयसमवायस्तस्य ललामभूताम्=शिरोधार्याम्, हृदयग्राहिणीमिति यावत्, विच्छित्तिम्=शोभाम्, आतनोति=विस्तारयति। कृपाणधारया पिपासाशान्तिमिच्छन्त्या राजमहिष्याः कृते मुग्धेतिविशेषणतया प्रयोगः समस्तमेव पद्यं चमत्कारर्चचितमेवाकरोदिति स्फुटमेवात्र पदगतमौचित्यमिति।

न तु यथा धर्मकीर्तेः—

लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान्स्वीकृतः,
स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताज्वरो निर्मितः।
एषापि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता,
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्यास्तनुं तन्वता॥

अर्थः—अब धर्मकीर्ति के श्लोक में पदगत अनौचित्य का उदाहरण देते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधाता ने इस तन्वी की शरीर-लता का निर्माण करते समय मन में क्या सोचा था पता नहीं, क्योंकि इसके शरीर के सौन्दर्य को बनाने में सौन्दर्य-साधन का जो अपार व्यय हुआ उसकी उन्होंने परवाह न की। उसके ऊपर उन्हें इसके सौन्दर्य-निर्माण में जीतोड़ परिश्रम भी करना पड़ा। इस प्रकार उन्होंने अपनी हानि तो की ही, साथ ही आज तक जो पुरुष स्वच्छन्द सुखमय जीवन व्यतीत करते थे उनके लिए चिन्तारूपी व्याधि की रचना क़र डाली (क्योंकि) इस सौन्दर्य को देखकर कोई भी निश्चिन्त नहीं रह सकता। उसका हृदय इसकी प्राप्ति की चिन्ता में सर्वदा जलता रहेगा। स्वयं यह बेचारी भी अपने योग्य प्रियतम के अभाव में बेमौत मारी गई। इस प्रकार विधाता यदि उसके अनुरूप सुन्दर वर का निर्माण नहीं कर सकते थे तो उसकी भी रचना उन्हें नहीं करनी चाहिए थी॥

टीका—पूर्वं पदगतमौचित्यं प्रदर्श्य सम्प्रति पदगतमनौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—लावण्यद्रविणेति। कस्याश्चित्सुन्दर्याः सौन्दर्यप्रशंसायां केनचित्कविना विरचितमिदं पद्यम्। वेधसा=विधात्रा, तन्व्याः=कृशाङ्ग्याः, अस्या इति शेषः तनुम्=शरीरलतिकाम्, तन्वता=रचयता, चेतसि=मनसि, कोऽर्थः=कोऽभिप्रायः, विनिहितः=चिन्तितः, इति नाहं जाने, यतोऽस्याः शरीरसौन्दर्यनिर्माणे, लावण्यद्रविणव्ययः लावण्यम्=सौन्दर्यरूपमेव यद् द्रविणम्=धनं तस्य व्ययः, न गणितः=न संख्यातः, न चिन्तित इति यावत्। शतावधानेन ब्रह्मणा अतिसूक्ष्मेक्षिकया तत्सौन्दर्यनिर्माणे महान्=प्रभूतः, क्लेशः=दुःखम्, स्वीकृतः=अङ्गीकृतः। इत्थमस्य सौन्दर्यस्य निर्माणेन ब्रह्मणा स्वकीया हानिस्तु कृतैव किन्तु स्वच्छन्दस्य=स्वतन्त्रस्य, बन्धनशून्यस्येति यावत्, सुखम्=आनन्दम्, वसतः=निवसतः, जीवत इति भावः, जनस्य=पुरुषस्य, चिन्ताज्वरः—चिन्ता=अस्याः पुनरलाभात् सन्ताप एव ज्वरः=व्याधिः, निर्मितः=रचितः। एषा=इयम्, वराकी=असहाया अपि, स्वयमेव=स्वस्मिन्नेवेत्यर्थः, तुल्यरमणाभावात्-तुल्यः=समानो यो रमणः=प्रियतमः, वर इति यावत्, तस्य अभावात्=विरहात्, हता=विनष्टा। यदि विधातरि नासीत्सामर्थ्यमस्या अनुरूपवरनिर्माणे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदा को लाभोऽभूदस्या ईदृशस्य शरीरस्य रचने। अनेन तस्य व्यर्थायासेन नासीत् कस्यापि जनस्य कश्चनापि लाभलवलेश इति।

अत्र "तन्व्याः" इति पदं केवलशब्दानुप्रासव्यसनितया निबद्धं न काञ्चिदर्थौचित्यचमत्कारकणिकामाविष्करोति। "सुन्दर्याः" इत्यत्र पदमनुरूपं स्यात्। अन्यानि वा निरतिशयरूपलावण्यव्यञ्जकानि। तन्वीपदं तु विरहविधुररमणीजने प्रयुक्तमर्थौचित्यशोभां जनयति।

अर्थः—यहाँ उपर्युक्त पद में 'तन्वी' (तन्व्याः) शब्द का प्रयोग केवल तकारानुप्रास के शौक के कारण किया गया है। यह तन्वी शब्द यहाँ अर्थौचित्य के चमत्कार की एक कणिका को भी नहीं स्फुरित करता। यहाँ यदि तन्वी (तन्व्याः) के स्थान पर सुन्दरी (सुन्दर्याः) पद का प्रयोग किया गया होता तो प्रसंग के अधिक अनुरूप होता। अथवा अत्यधिक सौन्दर्य एवं लावण्य के अभिव्यञ्जक दूसरे 'कान्ता' (कान्तायाः) आदि का प्रयोग भी प्रसंग के अनुरूप हो सकता था। 'तन्वी' पद तो यदि विरह में झुलसती हुई रमणी जनों के लिए प्रयुक्त होता है तो यह अर्थौचित्य की अधिक शोभा को धारण करता है, क्योंकि तनुता वियोग का स्वाभाविक परिणाम है।

विशेष—महाकवि क्षेमेन्द्र 'तन्वी' पद के प्रयोग का अर्थ की दृष्टि से औचित्य नहीं मानते हैं जहाँ सुन्दरी नायिका वियोग की आग में तप रही हो। उन्हें कदाचित् यहाँ यह भूल ही गया कि सुन्दरियों के लावण्य के लिए आँख, नाक, हाथ आदि की विशेष बनावट की ही भाँति शरीर की तनुता भी एक अपरिहार्य आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि यदि हम उन्हीं की ही बात मान लें तो भी यहाँ 'तन्वी' पद का प्रयोग अर्थौचित्य की दृष्टि से उपयुक्त है, क्योंकि यह सुन्दरी भी अपने योग्य वर के अभाव में आखिर तप ही तो रही है। ऐसी अवस्था में यह कैसे कहा जा सकता है कि यहाँ 'तन्वी' पद का प्रयोग अर्थौचित्य की दृष्टि से समीचीन नहीं है।

टीका—तदनौचित्यमेव प्रदर्शयति—अत्रेति। अत्र = अस्मिन् पद्ये, 'तन्व्याः' इति पदं केवलम् = एकम् शब्दानुप्रासव्यसनितया = तकारानुप्रासाग्रहेण, निबद्धम् =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योजितम्, अतः पद्यमिदं न काञ्चित् = कामपि अर्थौचित्यचमत्कारकणिकाम्—अर्थौचित्यस्य यश्चमत्कारः = हृदयाह्लादकता तस्य कणिकाम् = लवमपि, आविष्करोति = प्रकटयति । अस्मिन् पद्ये 'तन्व्याः' इत्यस्य स्थाने यदि 'सुन्दर्याः' पदस्य प्रयोगः स्यात्तदानुरूपम् = औचित्यास्पदम्, स्यात् = भवेत् । वा = अथवा, 'तन्व्याः' स्थाने निरतिशयरूपलावण्यव्यञ्जकानि—निरतिशयम् = अत्यधिकम् यद् रूपम् = शरीराङ्गसन्निवेशसौन्दर्यम् तथा लावण्यम् = शरीरचमत्कारकारकं सौन्दर्यञ्च तयोर्व्यञ्जकानि = अभिव्यक्तुं समर्थानि पदानि अनुरूपाणि स्युरिति शेषः । तर्हि 'तन्वी'ति पदस्य कुत्र प्रयोगः समीचीनतामावक्ष्यतीति जिज्ञासायामुच्यते—तन्वीपदं त्विति । तन्वीपदं यदि विरहविधुररमणीजने—विरहेण = वल्लभवियोगेन विधुरः = भृशं तप्तो यो रमणीजनस्तस्मिन्, अत्र विषयसप्तमीति, प्रयुक्तं सदर्थौचित्यशोभाम्—अर्थौचित्यस्य शोभाम् = विच्छित्तिम्, जनयति = उत्पादयति । तनुतां वियोगपरिणामं मन्वानः कविरयं विस्मरति यत्स्त्रीशरीरलतिकायाः सौन्दर्यं तनुत्व एव निवसति । अन्यच्च तस्यापि मतस्वीकारे न काप्यत्र हानिः । यतो हि सा तुल्यरमणाभावाद्विरहविधुरामेव दशां बिभर्तीति विज्ञैर्विमृश्यमेव ॥

यथा श्रीहर्षस्य—

> परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
> स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमलनमप्राप्य हरितम् ।
> इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः,
> कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति बिसिनीपत्रशयनम् ॥

अर्थः—तन्वी शब्द के समान अर्थ के बोधक कृशाङ्गी पद का अर्थ की दृष्टि से औचित्यपूर्ण प्रयोग को दिखलाने के लिए कहा गया है—जैसे श्री हर्ष का—

विशाल स्तनों तथा मोटी जांघों के संसर्ग से शय्या के दोनों तरफ मलिन, क्षीण कटि स्थान के सम्पर्क को न प्राप्त करने के कारण मध्य में हरित, सन्ताप के कारण शिथिल भुजलताओं के इतस्ततः सञ्चालन से अस्तव्यस्त, कमलिनीपत्र की यह शय्या ही कृशाङ्गी के मदन-सन्ताप को बतला रही है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—यह पद्य रत्नावली नाटिका का है। "नायिका सागरिका महाराज उदयन के विरह में काम से सन्तप्त है। उसे संसार की कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लग रही है। अतः अपने अंग-सन्ताप को कम करने के लिए वह कमलिनी पत्र की शय्या पर मुँह के बल लेटी रहती है। इसलिए दोनों तरफ मोटे-मोटे स्तनों तथा स्थूल जाँघों की रगड़ से कमलिनी पत्र की शय्या मलिन हो गई है। स्तनों के मध्यभाग तथा क्षीण कटि के स्पर्श के न होने से उन स्थानों की शय्या हरित है।" इससे नायक उदयन सागरिका के सन्ताप का अनुमान कर रहा है। सन्ताप के व्याज से यहाँ सागरिका के मोटे स्तनों तथा क्षीण कटि का वर्णन किया गया है।

टीका—परिम्लानमिति। अत्र तन्वीपदसमानार्थकस्य कृशाङ्गीपदस्य योग्यं प्रयोगं दर्शयितुमाह—पीनस्तनजघनसङ्गात्—रत्नावलीनादिकायाः सागरिकायाः= पीनौ=स्थूलौ यौ स्तनौ जघनौ च तयोः संगात्=सम्पर्कात्, उभयतः=उभयत्र, पारिम्लानम्=मलिनम्, तनोः=क्षीणस्य मध्यस्य, कटिप्रदेशस्य परिमलनम्= संघर्षणम् अप्राप्य=न लब्ध्वा, अन्तः=मध्ये हरितम्=अम्लानम् अतो हरिद्वर्णम्, श्लथभुजलताक्षेपवलनैः—श्लथे=शिथिले ये भुजलते=बाहुलतिके तयोराक्षेपैः=इतस्ततः सञ्चालनैः वलनैः=वेल्लनैः, व्यस्तन्यासम् व्यस्तः=क्रमविपर्यस्तः न्यासः=निर्माणस्थितिर्यस्य तथाभूतम्, इदम्=एतत्, पुरोवर्ति, बिसिनीपत्रशयनम्= कमलपत्रनिर्मिता शय्या, कृशाङ्ग्याः=तन्व्याः सन्तापम्= विरहज्वालाव्यथाम्, वदति=कथयति, संकेतयति।

अत्र सागरिकाया विरहावस्थासूचकं "कृशाङ्ग्याः" इतिपदं परमौचित्यं पुष्णाति ॥ ११ ॥

अर्थः—इस श्लोक में नायिका सागरिका की विरहावस्था को सूचित करने वाले 'कृशांगी' इस पद का प्रयोग, भाव एवं अवस्था को अभिव्यक्त करने के कारण, अत्यन्त उचित होने से पाठकों को अत्यन्त आनन्दित करता है ॥ ११ ॥

वाक्यगतौचित्यं दर्शयितुमाह—

औचित्यरचितं वाक्यं सततं संमतं सताम्।
त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्ज्वलमिव श्रुतम् ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औचित्यरचितं वाक्यं काव्यविवेकविचक्षणानामभिमततमम् ।

अन्वयः—औचित्यरचितम्, वाक्यम्, त्यागोदग्रम्, ऐश्वर्यमिव, तथा, शीलोज्ज्वलम्, श्रुतमिव, सततम्, सताम्, संमतम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—औचित्यरचितम् = औचित्यपूर्ण रीति से बनाया गया, वाक्यम् = वाक्य, त्यागोदग्रम् = दानादि से उदात्त, ऐश्वर्यमिव = सम्पत्ति की तरह, तथा = और, शीलोज्ज्वलम् = सज्जनता के कारण प्रकाशित, श्रुतमिव = विद्या की भाँति, सततम् = निरन्तर, सताम् = सज्जन काव्यालोचकों के लिए, सम्मतम् = प्रिय होता है ॥ १२ ॥

अर्थः—पदगत औचित्य को दिखलाकर अब वाक्यगत औचित्य को दिखलाने के लिए कहा गया है :—

औचित्य को ध्यान में रखकर की गई वाक्य-रचना अच्छे और बुरे काव्यों को पहचानने वाले आलोचकों को अत्यन्त प्रिय होती है ।

टीका—पदगतमौचित्यं प्रदर्श्याधुना वाक्यगतमौचित्यं प्रदर्शयन्नाह—औचित्यरचितमिति । औचित्यरचितम्—औचित्येन रचितम् = निर्मितम्, वाक्यम् = पदसमवायः, काव्यमिति यावत्, त्यागोदग्रम्—त्यागेन = दानेन उदग्रम् = उदात्तम्, ऐश्वर्यमिव = सम्पत्तिमिव, तथा = अपि च, शीलोज्ज्वलम्—शीलेन = साधुस्वभावेन उज्ज्वलम् = धवलम्, प्रशस्तमिति यावत्, श्रुतमिव = शास्त्रमिव, सततम् = अनवरतम्, सताम् = सज्जनानाम्, सत्साहित्यरसिकानामित्यर्थः, संमतम् = अभीष्टम् ॥ १२ ॥

अस्यैवाभिप्रायमाह—औचित्यरचितमिति । औचित्यरचितम् = औचित्याभिनिवेशपूर्वकं निर्मितं काव्यम्, काव्यविवेकेति—काव्यविवेके = काव्यविचारे विचक्षणानाम् = निपुणानाम्, अभिमततमम् = अतिशयेन प्रियम् ॥

यथा मम विनयवल्ल्याम्—

युग्मकम्—

देवो दयावान्विजयो जितात्मा यमौ मनः संयममाननीयौ ।
इति ब्रुवाणः स्वभुजं प्रमार्ष्टि यः कीचकाकालिककालदण्डम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरः स किर्मीरजटासुरारिः कुबेरशौर्यप्रशमोपदेष्टा ।
दृष्टो हिडिम्बादयितः कुरूणां पर्यन्तरेखागणनाकृतान्तः ॥

अर्थ :—वाक्यगत औचित्य के उदाहरण के लिए ग्रन्थकार ने स्वरचित विनयवल्ली नामक ग्रन्थ से यह उदाहरण प्रस्तुत किया है—

महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त दयालु हैं। बलशाली अर्जुन आत्मविजेता भी हैं। नकुल और सहदेव चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। ऐसी अवस्था में इन लोगों के द्वारा शत्रु-दमन की आशा नहीं की जा सकती ऐसा कहते हुए जिसने कीचक के लिए अनवसर में ही उपस्थित दूसरे कालदण्ड के समान अपनी भुजाओं को मलना शुरू किया, कुटिल कुन्तल वाले किर्मीर नामक असुर के विघातक, कुबेर की वीरता की गरमी को शान्त करने वाले, कौरवों के जीवन का अन्त करनेवाले, हिडिम्बा के पति, अत्यन्त धैर्यशाली भीमसेन को लोगों ने देखा।

टीका—वाक्यगतमौचित्यमुदाहर्तुमाह—देवो दयावानिति। देवः=महाराजो, युधिष्ठिरः, दयावान्=अत्यन्तं दयालुः, विजयः=प्रथितविक्रमोऽर्जुनः, जितात्मा=जितक्रोधः, वशीकृतचित्तवृत्तिरिति यावत्, यमौ=युगलौ नकुलसहदेवौ, मनःसंयममाननीयौ—मनसः=चेतसः संयमे=वशीकरणे माननीयौ=प्रथिताविति यावत्। अत एभिः शत्रुदमनस्याशा स्वप्नेऽपि नैव कार्येति भावः। इति=इत्थम्, ब्रुवाणः=कथयन्, यः=यो भीमसेनः, कीचकाकालिककालदण्डम्—कीचकाय=तन्नाम्ने विराटस्यालकायेत्यर्थः। अकालिकम्=अनवसर उपस्थितम् कालदण्डम्=मृत्युदण्डसदृशम्। स्वभुजम्=स्वबाहुम्, प्रमार्ष्टि=मुहुर्मुहुरामर्दयति, किर्मीरजटासुरारिः—किर्मीरासुरशत्रुः, कुबेरशौर्यप्रशमोपदेष्टा-कुबेरस्य=धनाधिपस्य यत् शौर्यम्=बलोत्साहस्तस्य प्रशमाय=शान्ति प्रापणाय उपदेष्टा=आचार्यः, हिडिम्बादयितः=हिडिम्बापतिः, कुरूणाम्=कौरवाणाम्, पर्यन्तरेखागणनाकृतान्तः—पर्यन्तस्य=जीवनसमाप्तेर्या रेखाः=लेखास्तासां गणनायां कृतान्तः=यमसदृशः, कौरवाणां विनाशक इति भावः, धीरः=रणधैर्यशाली, सः=जगति विदितो भीमः, दृष्टः=अवलोकितो जनैरितिशेषः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र भीमस्य भीमचरितोचितकीचकाकालिककालदण्डहिडिम्बादयितादिभिः पदैरुन्निद्ररौद्रस्वरूपानुरूपो वाक्यार्थः सजीव इव भासते।

अर्थ :—इस पद्य में भीमसेन के लिए उनके भीमचरित के अनुकूल प्रयुक्त 'कीचकाकालिककालदण्ड', 'हिडिम्बादयित' आदि पदों से रौद्रस्वरूप के अनुरूप वाक्यार्थ सजीव सा प्रतीत होता है। अनेक पदों में व्याप्त होने के कारण ही यह वाक्यगत औचित्य का उदाहरण है।

टीका—श्लोके कथं वाक्यगतमौचित्यमित्येव विवृणुते—अत्र भीमस्येति। अत्र=अस्मिन् पद्यद्वये, भीमस्य=वृकोदरस्य, भीमचरितेत्यादिः—भीमचरितस्य रौद्ररसानुरूपवृत्तस्य उचितानि=अनुरूपाणि यानि कीचकाकालिककालदण्डहिडिम्बादयितादीनि तैः तादृशैः, पदैः=शब्दैः, उन्निद्ररौद्रस्वरूपानुरूपः—उन्निद्रः=प्रस्फुटीकृतः रौद्रस्वरूपस्य=रौद्ररसस्वभावस्य अनुरूपः=अनुकूलो यो वाक्यार्थः=पदसमूहैरुपस्थापितोऽर्थः स सजीव इव=सप्राण इव, भासते=प्रकाशते। अत्रौचित्यस्य बहुषु पदेषु स्थितिमत्तया वाक्यगतत्वमौचित्यस्येति बोध्यम्॥

अथवा राजशेखरस्य—

सम्बन्धी पुरुभूभुजां मनसिजव्यापारदीक्षागुरु-
गौराङ्गीवदनोपमापरिचितस्तारावधूवल्लभः।
सद्योमार्जितदाक्षिणात्यतरुणीदन्तावदातद्युति-
श्चन्द्रः सुन्दरि दृश्यतामयमितश्चण्डीशचूडामणिः॥

अर्थ :—अथवा आलोचक कवि राजशेखर का निम्नलिखित श्लोक वाक्यगत औचित्य के उदाहरण के रूप में दिया जा रहा है—

हे सुन्दरि, इधर पूरबदिशा की ओर देखो पुरुवंशी राजाओं का मूलभूत, काम-क्रीड़ा का शिक्षक, गौराङ्गी नायिका के मुख की तरह सुन्दर, तारा रूपी सुन्दरियों का प्राणप्यारा, तत्काल ब्रश अथवा दन्तधावन से रगड़ कर साफ किये गये दाक्षिणात्य युवती के दाँतों की तरह धवल कान्तिवाला, चण्डीश्वर भगवान् शङ्कर की चूड़ा का मणिभूत यह चन्द्र निकल आया है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—सम्बन्धी—पुरुवंश की उत्पत्ति चन्द्र से ही हुई है। अतः चन्द्र पुरुवंशियों के सम्बन्धी हुए।

दीक्षागुरु :—चन्द्रमा कामोत्तेजक है, तरुण-तरुणियाँ चन्द्रकिरणों का स्पर्श पाकर विविध काम-क्रीडाओं में निमग्न हो जाते हैं। अतः चन्द्र को कामकला का शिक्षक आचार्य कहा जाता है॥

टीका—अधुना वाक्यगतौचित्यस्य द्वितीयमुदाहरणमुपस्थापयत्याचार्यः अथवा राजशेखरस्येति। सम्बन्धीति—हे सुन्दरि=हे सौन्दर्यमण्डिते नायिके, पुरुभूभुजाम्=पुरुवंशे जातानां राज्ञाम् सम्बन्धी=सम्पर्की, पुरुवंशस्योत्पत्तिश्चन्द्रादेव पुराणादिषु वर्णितेति ज्ञेयम्; मनसिजव्यापारदीक्षागुरुः—मनसि=चेतसि जातः=उत्पन्नो मनसिजः=कामदेवस्तस्य व्यापाराः=केलयस्तत्र दीक्षागुरुः=उपदेष्टा; गौराङ्गीति—गौराङ्गी=गौरवर्णा या सुन्दरी तस्या वदनम्=आननम् तस्य उपमया=तुलनया, परिचितः=अभिज्ञः, गौराङ्गीवदनतुल्य इत्यर्थः; तारावधूवल्लभः—तारा नक्षत्राणि एव वध्वस्तासां वल्लभः=प्रियः; सद्य इत्यादिः—सद्यः=तत्कालम् मार्जिताः=दन्तधावनघर्षणेन परिष्कृताः दक्षिणस्याम्=दक्षिणदिशि भवा दाक्षिणात्या या तरुणी तस्याः दन्ताः=द्विजाः तद्वदवदाता=अतीव शुभ्रा द्युतिः=आभा यस्य स तादृशः; चण्डीशचूडामणिः—चण्डीशः=शिवः तस्य चूडा=केशकलापस्तस्याः मणि=मणितुल्यः, अयम्=एषः, पुरो दृश्यमान इत्यर्थः, चन्द्रः=ताराधिपतिः, इतः=अस्यां पूर्वस्यां दिशि, राजत इत्यध्याहार्यम्, इति दृश्यताम्=अवलोक्यताम्, त्वयेति शेषः॥

अत्रापि चन्द्रमसः शृङ्गारान्तरङ्गैरनङ्गोद्दीपनैः पदैर्निर्वर्तितो वाक्यार्थः सर्वथौचित्यसामर्थ्येन समुचितार्थवशेनात्यर्थमत्यन्तमर्थनीयतां प्राप्तः।

अर्थ :—इस पद्य में भी चन्द्रमा-सम्बन्धी शृङ्गार के अनुकूल, कामोद्दीपक; पदों के द्वारा निष्पन्न वाक्यार्थ सब प्रकार से अर्थ के औचित्य की महिमा से उपस्थापित होने के कारण अत्यन्त उपादेय बन गया है। अर्थात् चन्द्रमा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषण रूप से कहे गये योग्य पदों के प्रयोग से सम्पूर्ण वाक्य में औचित्य का सञ्चार हो रहा है। अतः यह भी वाक्यगत औचित्य का उदाहरण है।

टीका—अत्रापि = अस्मिन् पद्येऽपि, चन्द्रमसः = चन्द्रस्य, शृङ्गारान्तरङ्गैः-शृङ्गारस्य = शृङ्गारसस्य अन्तरङ्गैः = पोषकैः, अनङ्गोद्दीपनैः-अनङ्गस्य = कामस्य उद्दीपनैः = उद्दीपकैः, उत्तेजकैरिति यावत्, पदैः = शब्दैः, निर्वर्तितः = निष्पन्नः; वाक्यार्थः = पदसमूहैरुपस्थापितोऽर्थः, सर्वथौचित्यसामर्थ्येन समुचितेनार्थवशेन च अत्यन्तमर्थनीयताम् = उपादेयताम्, प्राप्तः = अधिगतः। अत्रौचित्यपोषकैश्चन्द्रमसो विशेषणीभूतैः कतिपयैरेव पदैर्वाक्यगतमौचित्यं परिपोष्यत इति भावः॥

न तु यथास्यैव—

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधेः
शश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडोपधाने श्रियः।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशां कन्दर्पदर्पे परं
श्रीदुर्योधनदोष्णि विक्रमपरे लीनं जगन्नन्दतु॥

अर्थः—पूर्वोक्त दो श्लोकों में वाक्यगत औचित्य को दिखला लेने के अनन्तर अब वाक्यगत अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए राजशेखर का ही एक दूसरा उदाहरण देने जा रहे हैं:—

वीरता कमलिनी के नालदण्ड रूप, संग्राम-सागर के बांधरूप, खड्ग भुजंगमों के लिए निरन्तर चन्दन वृक्ष रूप, लक्ष्मी के आरामदायक तकिया रूप, विजयरूप हाथी के लिए आलानसदृश, सुनयनाओं के लिए कामदेव के अखर्व गर्वरूप, पराक्रम के खजाने, श्री दुर्योधन के विक्रमशाली भुजदण्ड की छत्रच्छाया में निमग्न यह समग्र जगत् परमानन्द को प्राप्त करे॥

विशेषः—यहाँ दुर्योधन के विक्रमशाली भुजदण्ड के जितने भी विशेषण हैं, उनमें दो को छोड़ कर प्रायः सभी अनुपयुक्त हैं। यह आगे दिखलाने ही जा रहे हैं।

टीका—पूर्वं वाक्यगतस्यौचित्यस्य पद्यद्वयेन प्रदर्शनानन्तरं सम्प्रति तद्गतानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—नाल इति। शौर्यमहोत्पलस्य—शौर्यम् = शूरत्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महोत्पलम् = विपुलं कमलं तस्य, नाले = दण्डस्वरूपे, समिद्वारिधेः—समितः = युद्धान्येव वारिधिः = सागरस्तस्य, विपुले = विशाले, सेतौ = बन्धरूपे, शश्वदिति शश्वत् = निरन्तरम् खड्गः = कृपाण एव भुजंगः = सर्पस्तस्य चन्दनतरौ = मलयवृक्षकल्पे, श्रियः = राजलक्ष्म्याः, क्रीडोपधाने = विलासोपबर्हस्वरूपे, जय-कुञ्जरस्य—जयः = विजय एवं कुञ्जरः = दिग्गजस्तस्य आलाने = बन्धनस्तम्भे, सुदृशाम् = सुनयनानाम्, परम् = उत्कृष्टम् यथा स्यात्तथा, कन्दर्पदर्पे-कन्दर्पस्य = कामस्य दर्पः = गर्वरूपस्तस्मिन्, विक्रमपरे = पराक्रमशालिनि, श्रीदुर्योधन-दोष्णि = श्रीदुर्योधनस्य बाहौ, लीनम् = निमज्जितम्, जगत् = संसारः, नन्दतु प्रसीदतु ॥

अत्रातिशयपरकर्कशसोत्कर्षसुभटभुजस्तम्भस्यासमुचितेन कुवलय-नालतुलाधिरोपणेन वाक्यार्थः सोपहासतयैव निबद्धः परिज्ञायते ॥१२॥

अर्थः—इस पद्य में शत्रुओं के लिए अत्यन्त कठोर तथा उत्कृष्ट वीरता के सम्पादक सुभट के भुजस्तम्भ के लिए असमुचित कमलनाल की उपमा देने से सम्पूर्ण वाक्य ही उपहासास्पद-सा रचित ज्ञात होता है। अतः यह वाक्यगत अनौचित्य का उदाहरण सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

टीका—अत्रेति। अत्र अस्मिन् पद्ये अतिशयेन = नितराम् परस्मै = शत्रवे कर्कशः सोत्कर्षः = उत्कृष्टवीरतासम्पादकश्च यो भुजस्तम्भस्तस्य, असमुचितेन = अनुचितेन, अयोग्येनेति यावत्, कुवलयनालतुलाधिरोपणेन—कुवलयनालेन = कमलदण्डेन या तुला = तुलना तस्या अधिरोपणेन = आरोपणेन, वाक्यार्थः = श्लोकार्थः सोपहासतयैव = उपहासास्पदत्वेनेव, निबद्धः = गुम्फितः परिज्ञायते = प्रतीयते। कर्कशस्य भयानकस्य च भुजदण्डस्य कमलनालेन तुलना वस्तुतः उपहासास्पदमेवेति नितरामनौचित्यमिदं पद्यमावहतीति बोध्यम् ॥ १२ ॥

प्रबन्धार्थौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितार्थविशेषेण प्रबन्धार्थः प्रकाशते।
गुणप्रभावभव्येन विभवेनेव सज्जनः ॥ १३ ॥

अन्वयः—गुणप्रभावभव्येन, विभवेन, सज्जन इव, (तथा) उचितार्थविशेषेण, प्रबन्धार्थः, प्रकाशते ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थः—गुणप्रभावभव्येन=सद्गुणों के प्रभाव से विभूषित, विभवेन=सम्पत्ति के द्वारा, सज्जन इव=जैसे सज्जन सुशोभित होते हैं, (तथा=उसी तरह), उचितार्थविशेषेण=योग्य अर्थविशेष के कारण, प्रबन्धार्थः=समग्र प्रबन्ध का अर्थ, प्रकाशते=प्रकाशित तथा हृदयग्राही होता है ॥ १३ ॥

अर्थः—पदसम्बन्धी एवं वाक्यसम्बन्धी औचित्य की विवेचना करके सम्प्रति प्रबन्धसम्बन्धी औचित्य का विचार किया जा रहा है:—

जैसे सद्गुणों के प्रभाव से विभूषित सम्पत्ति के द्वारा सज्जन सुशोभित होते हैं उसी तरह योग्य अर्थ विशेष के कारण समग्र प्रबन्ध का अर्थ प्रकाशित तथा हृदयग्राही होता है ॥ १३ ॥

टीका—पदगतं वाक्यगतञ्चौचित्यं विवेच्याधुना प्रबन्धार्थगतमौचित्यं विवेचयितुमाह—उचितार्थविशेषेणेति । गुणप्रभावभव्येन—गुणानाम्=दया-दाक्षिण्यादीनां प्रभावः=प्रबलः संसर्गस्तेन भव्यः=स्पृहणीयस्तेन, विभवेन=सम्पत्त्या, सज्जनः=साधुपुरुषः, इव=यथा, यथा सद्गुणानां सम्पर्केण सज्ज-नस्य सम्पत्तिर्विराजते तथैवेत्यर्थः, उचितार्थविशेषेण—उचितः=औचित्यपूर्णः योऽर्थः=अभिधेयादिस्तद्विशेषेण, प्रबन्धार्थः=काव्याभिधेयार्थः, प्रकाशते=हृदयग्राहितया सुशोभते ॥ १३ ॥

अम्लानप्रतिभाप्रकर्षोत्प्रेक्षितेन सकलप्रबन्धार्थाप्यायिपीयूषवर्षेण समुचितार्थविशेषेण महाकाव्यं चमत्कारकारितामापद्यते ।

अर्थः—उपर्युक्त कारिका के ही अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

चमकती हुई प्रतिभा के प्रकर्ष के द्वारा उत्प्रेक्षित, सम्पूर्ण काव्यार्थ को अमृत वृष्टि के समान स्निग्ध करने वाले समुचित अर्थ विशेष से महाकाव्य अत्यन्त स्पृहणीय बन जाता है, अर्थात् अलौकिक आनन्द का जनक बन जाता है ।

टीका—उक्तमेवार्थं विस्फोरयन्नाह—अम्लानेति । अम्लाना—स्फुरन्तीत्यर्थो या प्रतिभा=नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तस्या यः प्रकर्षः=उत्कर्षस्तेनोत्प्रेक्षितेन,=उद्भावितेन, सकलप्रबन्धार्थाप्यायिपीयूषवर्षेण—सकलः=सम्पूर्णो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः प्रबन्धार्थः = काव्यार्थस्तस्य आप्यायी=आप्लावकः, सरसतासम्पादक इत्यर्थः, यः पीयूषवर्षः=अमृतवर्षणं तेन, समुचितार्थविशेषेण—समुचितः=औचित्यपूर्णो योऽर्थविशेषस्तेन, महाकाव्यम्=प्रबन्धात्मकं महावाक्यम्, चमत्कारकारिताम्= अमन्दालौकिकानन्दजनकताम्, आपद्यते=लभते ॥

यथा कालिदासस्य—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं विधिपरवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥

अर्थ :—प्रबन्धार्थगत औचित्य का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—जैसे महाकवि कालिदास के मेघदूत का यह पद्य है—

(हे मेघ ! मैं) तुझे जगद्विख्यात पुष्कर और आवर्तक (नामवाले मेघों) के कुल में उत्पन्न अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला, इन्द्र का प्रधान पुरुष जानता हूँ। यही कारण है कि भाग्यवश प्रियतमा से विछुड़ा हुआ मैं तुम्हारे पास याचना करने आया हूँ। क्योंकि अधिक गुणशाली व्यक्ति से (की गई) याचना निष्फल होने पर भी कुछ ठीक है। परन्तु निर्गुण व्यक्ति से की गयी याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है ॥ (पूर्वमेघ, श्लोक सं० ६)

टीका—प्रबन्धार्थगतमौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—जातमिति । हे मेघ ! त्वाम् =भवन्तम्, भुवनेषु=लोकेषु विदिते=प्रसिद्धे भुवनविदिते पुष्करास्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठास्तेषां वंशे=कुले, जातम्=उत्पन्नम्, महाकुलप्रसूतमित्यर्थः, कामरूपम्=इच्छाधीनविग्रहम्, मघोनः=इन्द्रस्य, प्रकृतिपुरुषम्=प्रधानपुरुषम्, जानामि । तेन=महाकुलप्रसूतत्वादिगुणयोगित्वेन हेतुना, विधिवशात्=दैवायत्त-त्वात्, दूरबन्धुः—दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुः=वियुक्तभार्योऽहम्, त्वयि=भवद्विषये, त्वामित्यर्थः, अर्थित्वम्=याचकभावम्, गतः=प्राप्तः । अधिगुणे=अधिक गुणे पुंसि विषये, याच्ञा=याचना, मोघा=निष्फलाऽपि, वरम्=ईषत्प्रियम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधमे=निर्गुणे, याच्ञा लब्धकामापि=सफलाऽपि, न वरम्। ईषत्प्रियमपि न भवतीत्यर्थः॥

अत्राचेतनस्य चेतनाध्यारोपेण मेघस्य दौत्ययोग्यताधानाय प्रथितपुष्करावर्तकपर्जन्यवंशत्वममात्यप्रकृतिपुरुषत्वञ्च यदुपन्यस्तं तेन समस्तप्रबन्धस्योत्प्रेक्षितेतिवृत्तरुचिरतरस्य निरतिशयमौचित्यमुद्योतितम्।

अर्थ :—यहाँ अचेतन मेघ में चेतनता का अध्यारोप करके दूत बनने की योग्यता के आधान के लिए मेघ के पुष्कर और अग्वर्तक के कुल में जन्म लेने तथा इन्द्र का प्रधान-पुरुष होने की बात जो कही गई है, उससे कल्पित इतिहास के कारण अत्यन्त रुचिर सम्पूर्ण प्रबन्ध ही औचित्य से अत्यन्त चमत्कृत हो उठता है।

विशेष :—मेघ जड़ पदार्थ है। उससे सन्देश भेजने की बात उपहासास्पद है। किन्तु यक्ष ने मेघ के उच्च कुल में जन्मने तथा इन्द्र के प्रधान पुरुष होने की बात कह कर, एक नवीन बात की ही कल्पना करके, इसका परिहार कर दिया है। इससे सम्पूर्ण प्रबन्ध ही चमत्कृत हो उठा है।

टीका—अत्राचेतनस्येति। अत्र=अस्मिन् प्रबन्धे, अचेतनस्य=जडस्य, मेघस्य=जलदस्य, चेतनायाः=चैतन्यस्य। अध्यारोपेण=कथनेन, औचित्ययोग्यताधानाय=दूतकर्म कर्तुं योग्यत्वस्थापनाय, प्रथिताः=प्रसिद्धाः ये पुष्करावर्तकपर्जन्यास्तेषां वंशे=कुले भवत्वं तथा अमात्यप्रकृतिपुरुषत्वञ्च=इन्द्रसचिवप्रधानत्वञ्च; यदुपन्यस्तम्=यदुपस्थापितम्, तेन हेतुना, उत्प्रेक्षिते निवृत्तरुचिरतरस्य—उत्प्रेक्षितम्=कल्पितं यदितिवृत्तम्=इतिहासस्तेन, रुचिरतरस्य=मनोहरस्य, समस्तप्रबन्धस्य=समग्रस्य प्रबन्धस्य, निरतिशयम्=अत्यन्तमौचित्यम्=योग्यत्वम्, उद्द्योतितम्=प्रकाशितम्॥

यथा वा भवभूतेः—

(नेपथ्ये)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लवः—(सगर्वमिव ।) अहो सन्तापनान्यक्षराणि । भो, भोः ! किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घुष्यते । (विहस्य) आः किं नाम स्फुरन्ति शस्त्राणि । (धनुरारोपयन्)

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्गारिघोषघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बिविकटोवरमस्तु चापम् ॥

अर्थ :—प्रबन्धार्थगत औचित्य का ही दूसरा उदाहरण दिखलाने के लिए भवभूति रचित उत्तररामचरित से एक अंश उद्धृत कर रहे हैं—

प्रसङ्ग—सीता परित्याग के बहुत दिनों बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । लक्ष्मणतनय चन्द्रकेतु के नेतृत्व में विशाल सेना ने यज्ञीय अश्व को देश के कोने-कोने में घुमाना शुरू किया । घूमता हुआ अश्व वहाँ पहुँचा जहाँ वाल्मीकि के आश्रम में ऋषि बालकों के साथ सीता-पुत्र लव खेल रहे थे । अश्व को देख कर बालकों ने अश्वरक्षक सैनिकों से पूछा कि किस प्रयोजन से सैनिकों के संरक्षण में यह अश्व घुमाया जा रहा है ? इसी के उत्तर में नेपथ्य से सैनिक कह रहे हैं—

(पर्दे के पीछे से)

अर्थ—जो यह अश्व है, वह सातों लोकों के अद्वितीय वीर, रावण-कुल के शत्रु (भगवान् राम) की विजय-पताका है अथवा उनकी वीरता का उद्घोष है ॥

लव—(मानो गर्व सहित) हृदय को जलाने वाले ये अक्षर हैं । हे हे सैनिको, तो क्या पृथिवी क्षत्रिय-विहीन है, जो ऐसी घोषणा की जा रही है । (हँस कर) आह, (हमारे ऊपर प्रहार करने के लिए) क्या शत्रुओं के शस्त्र चञ्चल हो रहे हैं ? (धनुष को चढ़ाता हुआ)

प्रत्यञ्चारूप जिह्वा से वेष्टित हैं उन्नत सिरे रूप दाढ़ें जिसकी ऐसा, ऊपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठता हुआ, भीषण, मेघ की तरह घर्घर शब्दवाला, यह धनुष (जगत् को) निगलने में लगे हुए, (अतः) अट्टहास करते हुए यम के यन्त्र सदृश मुख की जँभाई का अनुकरण करनेवाला (अत एव) भीषण उदर (अन्तराल) वाला बने ॥

टीका—नेपथ्य इति । प्रबन्धार्थगतौचित्यस्य द्वितीयमुदाहरणं प्रदर्शयितुमाह—नेपथ्य इति । योऽयमश्व इति । अयम्=पुरतो वर्तमानः, योऽश्वः=हयः, इयम्=एषा, अश्वरूपेत्यर्थः, विधेयप्राधान्यात् स्त्रीलिङ्गनिर्देशः, सप्तलोकैकवीरस्य—सप्तसु लोकेषु=भुवनेषु एकः=अद्वितोयो यो वीरस्तस्य, दशकण्ठकुलद्विषः=रावणकुलशत्रोः भगवतो रामस्येत्यर्थः, पताका=विजयवैजयन्ती, अथवा=वा, पूर्वोक्तातिरेकेणेत्यर्थः, वीरघोषणा—वीर इति घोषणा, पराक्रमख्यापनमिति भावः, अस्तीति शेषः ॥

लव इति । सगर्वमिव=गर्वेण सहितमिव । अहो इत्यसूयासूचकमव्ययम्, सन्तापनान्यक्षराणि—अक्षराणि=शब्दा इत्यर्थः, सन्तापनानि=हृदयदाहकानीति यावत्, सन्तीति शेषः । पृथिवी=भूमण्डलम्, अक्षत्रिया=क्षत्रियरहिता, निर्वीरेति यावत्, यद्=यस्मात्, एवम् इत्थम्, उद्घुष्यते=प्रख्याप्यते । किमिति प्रश्ने, नाम इति प्राकाश्ये, ('नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः), शस्त्राणि विस्फुरन्ति=विलसन्ति, प्रचलितुं तत्पराणि भवन्तीत्यर्थः, धनुरारोपयन्=धनुषि प्रत्यञ्चां स्थापयन् ।

ज्याजिह्वयेति । ज्याजिह्वया—ज्या=मौर्वी सैव जिह्वा=रसना तया, वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम्—वलयिते वेष्टिते उत्कटे=उग्रे कोटी=अग्रे, अटन्यौ इत्यर्थः, एव दंष्ट्रे यस्य तथाविधम्, उद्गारिघोरघनघर्घरघोषम्—उद्गारी=उदयन् घोरः=भीषणः घनस्येव=मेघस्येव घर्घरघोषः=घर्घरध्वनिः यस्य तथाविधम एतत्=इदम्, चापम्=धनुः, ग्रासप्रसक्तेत्यादिः—ग्रासे=जगत्कवलने प्रसक्तः=व्यापृतः, अत एव हसन्=अट्टहासं कुर्वन् यः अन्तकः=कृतान्तः तस्य वक्त्रयन्त्रस्य—वक्त्रम्=आननम् यन्त्रमिव तस्य, यन्त्रतुल्यमुखस्य, उपमितिसमासः, जृम्भाविडम्बि—जृम्भाम्=व्यादानम् विडम्बयति=अनुकरोति तत्, विकटोदरम्—विकटम्=भीषणम् उदरम्=अन्तरालं यस्य तत्, अस्तु=भवतु ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्रार्थे रामायणकथातिक्रमेण नूतनोत्प्रेक्षिता रामतनयस्य सहजविक्रमानुसारिणी शौर्योत्कर्षभूमिः परप्रतापस्पर्शासहिष्णुता प्रबन्धस्य रसबन्धुरामौचित्यच्छायां प्रयच्छति ।

१. अर्थ :—यहाँ पूर्वोक्त अर्थ में यद्यपि रामायण की कथा का अतिक्रमण करके सर्वथा नवीनकल्पित, रामपुत्र लव की स्वाभाविक वीरता का अनुसरण करनेवाली, शूरता की पराकाष्ठा की जननी जो दूसरे वीरों के प्रताप को न सहन कर सकने की प्रवृत्ति है, वह सम्पूर्ण प्रबन्ध को अनिर्वचनीय रस से सिक्त औचित्य की छटा से मण्डित कर देती है ।

टीका—अत्रेति । अत्रार्थे=अत्र वर्णनीयार्थे, रामायणकथातिक्रमेण—रामायणस्य या कथा=इतिवृत्तम् तस्या अतिक्रमेण उल्लंघनेन, नूतनोत्प्रेक्षिता=नवीनोद्भाविता, रामतनयस्य=रामपुत्रस्य लवस्य, सहजविक्रमानुसारिणी=स्वाभाविकशौर्यानुरूपिणी, शौर्योत्कर्षभूमिः—शौर्यस्य=शूरताया य उत्कर्षः=उन्नतिः, तस्य भूमिः=जननी, परप्रतापस्पर्शासहिष्णुता—परेषाम्=अन्येषां यः प्रतापः=शूरताप्रभावस्तस्य स्पर्शः=यत्किञ्चित्संसर्गस्तस्यासहिष्णुता=सहनशक्त्यभावः, सा, प्रबन्धस्य=समग्रकाव्यस्य, रसबन्धुराम्=रसपेशलाम्, औचित्यच्छायाम्=औचित्यविच्छित्तिम्, औचित्यसौन्दर्यमिति भावः, प्रयच्छति समर्पयति ॥

न तु यथा राजशेखरस्य—

रावणः—यत्पार्वतीहठकचग्रहणप्रवीणे-
पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम् ।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र-
तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु ॥

जनकः—आविरस्तु सममगर्भसम्भवया सीतया ।

अर्थ :—प्रबन्धार्थगत अनौचित्य को दिखलाने के लिए महाकवि राजशेखर का यह पद्य उद्धृत किया जा रहा है—

प्रसङ्ग—सीता के स्वयंवर में आया हुआ रावण कह रहा है—

३ औ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रावण—जो धनुष पार्वती के केशपाश से हठ पूर्वक खेलने वाले भगवान् शंकर के हाथ में सहस्रों वर्ष तक रह चुका है; देवताओं के तेज से निर्मित है, सीता को प्राप्त करने का मूल्यभूत है, वह धनुष यहाँ प्रत्यक्ष हो।

जनक :—अयोनिजा सीता के साथ वह प्रकट हो।

टीका—प्रबन्धार्थगतमनौचित्यं दर्शयितुमाह—यत्पार्वतीति। सीतास्वयम्वरे समायातस्य रावणस्य कथनमिदम्। यत्=यद्धनुः, पार्वतीहठकचग्रहणे—पार्वत्याः=उमायाः हठेन=आग्रहेण यत्कचानाम्=केशानाम् ग्रहणम्=स्पर्शस्तत्र प्रवीणे=कुशले, पुरभिदः=शंकरस्य, पाणौ=करे, शरदां सहस्रम्=सहस्रवर्षपर्यन्तम्, स्थितम्=अतिष्ठत्; गीर्वाणेति—गीर्वाणानाम्=देवानाम् सारस्य=तत्त्वस्य तेजस इत्यर्थः, कणैः=कणिकाभिरित्यर्थः, निर्मितम्=रचितम् गात्रम्=शरीरं यस्य तत्, मैथिलीक्रयधनम्—मैथिल्याः=सीतायाः क्रयस्य=स्वाधीनीकरणस्य धनम्=द्रविणभूतं मूल्यमिति यावत्, तत्=तादृशम्, धनुः=कार्मुकम्, अत्र=अस्मिन् स्थले, आविरस्तु=प्रकटीभवतु॥

रावणस्य वचनं श्रुत्वा स्वयंवरायोजको जनकः कथयति—आविरस्त्विति। अगर्भसम्भवया—नास्ति गर्भात्=मातुरुदरात् संभवः=उत्पत्तिर्यस्याः सा तया, अयोनिजयेत्यर्थः, सीतया=जानक्या, समम्=साकम्, आविरस्तु=प्रकटीभवतु॥

अत्र 'आविरस्तु समं सीतया' इति जनकराजेन यदुच्यते तेनास्य पिशिताशनाय तनयाप्रतिपादनमभिमतमिवोपलक्ष्यते। नचैतद्विद्मः कथं भक्ष्यभूता कुसुमकोमलाङ्गी पुरुषादाय प्रतिपाद्यते, इत्यनौचित्येन प्रसिद्धं वृत्तवैपरीत्यं परं हृदयविसंवादमादधाति।

अर्थः—यहाँ 'सीता के साथ ही' शंकर जी का धनुष आविर्भूत हो।' जनक के द्वारा यह जो कहा गया है उससे प्रतीत होता है कि उस मांसभक्षी को कन्या देना उन्हें अभीष्ट है। यह बात समझ में नहीं आती कि कुसुम-सुकुमारी सीता, जो मांसभक्षी राक्षसराज की भक्ष्यभूता है, कैसे उसे दी जा सकती है? अतः इस कथन से इतिहास से पूर्णतया विपरीत स्थिति, जो अनौचित्य के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप में प्रसिद्ध है, सहृदयों के हृदय से सहमति नहीं उपस्थित करती अर्थात् हृदय इस बात को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं होता।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् प्रकरणे, 'सीतया सममाविरस्तु'—इति जनकराजेन यदुच्यते=यत्कथ्यते, तेन=तेन कथनेन, अस्य=जनकस्य, पिशिताशनाय—पिशितम्=मांसम् अशनम्=भोजनम् यस्य तस्मै, रावणायेत्यर्थः, तनयाप्रतिपादनम्, अभिमतमिव=अभीष्टमिव, उपलक्ष्यते=प्रतीयते। न चैतद्विद्मः=न चैतज्जानीमः, कथम्=केन प्रकारेण, भक्ष्यभूता=आहारभूता, कुसुमकोमलाङ्गी=पुष्पसुकुमारी जानकी, पुरुषादाय–पुरुषम्=मनुष्यम् अत्ति=भक्षयतीति पुरुषादस्तस्मै, प्रतिपाद्यते=प्रदीयते। इति=इत्थम्, अनौचित्येन=औचित्यविरुद्धेन, प्रसिद्धम्=विदितम्, वृत्तवैपरीत्यम्=इतिहासविरुद्धम्, परम्=अत्यन्तम्, हृदयविसंवादम्–हृदयस्य=चेतसो विसंवादम्=असहमतिम्, आदधाति=उपस्थापयति॥

यथा वा कालीदासस्य—

ऊरुमूलनखमार्गपंक्तिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः।
वासस: प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत्॥

अर्थ:—प्रबन्धार्थगत अनौचित्य का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार महाकवि कालिदास के कुमारसंभव के अष्टम सर्ग से यह श्लोक उद्धृत कर रहे हैं—

भगवान् शंकर एवं जगदम्बा पार्वती पूरी रात रमण में संलग्न थे। शरीर पसीना-पसीना हो गया था। अतः प्रातःकाल की सुहावनी बेला में दोनों दक्षिणानिल का सेवन करने के लिए बाहर बैठ गये। जगदम्बा ने जांघों पर से खिसकी अपनी साड़ी को सँभालने का प्रयास किया। किन्तु इसी समय भगवान् शंकर ने उनकी जांघों पर पड़े नखक्षतों को देख लिया। यह बार-बार देखने के लिए वे लालायित हो उठे। अतः प्रियतमा को उन्होंने जांघ ढकने से रोक दिया।

टीका—प्रबन्धार्थगतानौचित्यस्यान्यमुदाहरणं प्रदर्शयितुं पार्वतीपरमेश्वरयोः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संभोगकाले वर्णितमिदं पद्यमुपस्थापयति—ऊरुमूलनखेत्यादिः। तत्क्षणम्=तस्मिन् काले, प्रातःकाले वायुसेवनावसर इत्यर्थः, ऊरुमूलेत्यादिः—ऊरुमूले=जघनारम्भप्रदेशे कृतानां नखमार्गाणाम्=नखक्षतानाम् याः पंक्तयः=श्रेणयस्ताभिः, हृतविलोचनः=हृते=आकृष्टे विलोचने=नेत्रे यस्य स तादृशः, हरः=शिवः, प्रशिथिलस्य=स्खलितस्य, वाससः=शाटिकायाः, संयमम्=यथास्थाननिवेशनम्, कुर्वतीम्=विदधतीम्, प्रियतमाम्=प्रेयसीं पार्वतीम्, अवारयत्=न्यषेधत ॥

अत्राम्बिकासंभोगवर्णने पामरनारीसमुचितनिर्लज्जसज्जनखराजिविराजितोरुमूलहृतविलोचनत्वं त्रिलोचनस्य भगवतस्त्रिजगद्गुरोर्यदुक्तं तेनानौचित्यमेव परं प्रबन्धार्थः पुष्णाति ॥ १३ ॥

अर्थः—यहाँ जगदम्बिका के संभोगवर्णन के प्रसंग में गँवार नारी के अनुरूप निर्लज्जतापूर्वक किये गये नखक्षतों से विराजित जंघा-मूल के द्वारा जगद्वन्द्य, भगवान्, त्रिलोचन के नेत्रों को आकृष्ट करने की जो बात कही गई है उससे सकल प्रबन्ध का अर्थ केवल अनौचित्य को ही पुष्ट करता है। एक तो जगद्वन्द्य भगवान् शंकर तथा जगज्जननी के संभोग श्रृंगार का वर्णन ही अनुचित है, दूसरे साधारण मनुष्यों की भाँति उनके भोग का वर्णन नितान्त अनुचित है ॥ १३ ॥

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, अम्बिकासंभोगवर्णने—अम्बिकायाः=जगदम्बायाः संभोगस्य=रतेर्यद्वर्णनम्=कथनं तेन, त्रिलोचनस्य=भगवतः शिवस्य, पामरनारीत्यादिः—पामरनारी=अधमजातिसमुद्भवा स्त्री तस्याः समुचिता=योग्या निर्लज्जसज्जा=निर्लज्जेन सज्जा=कृता या नखराजयः=नखक्षतपंक्तयस्ताभिर्विराजितेन=शोभितेन ऊरुमूलेन=जंघामूलेन हृतविलोचनत्वम्=आकृष्टलोचनत्वम्, यदुक्तम्=यत्कथितम्, तेन कथनेन, प्रबन्धार्थः=वाक्यप्रबन्धाभिप्रायः, परम्=केवलम्, निरतिशयमिति यावत्, अनौचित्यमेव=व्यवहारायोग्यत्वमेव, पुष्णाति=वर्धयति। परमपूज्यायाः जगज्जनन्या जगज्जनकस्य च संभोगवर्णनमेवानुचितं तत्रापि साधारणस्त्रीपुरुषयोः संभोगकथनमिव तयोस्तद्वर्णनं नितान्तमेवानौचित्यं भजते ॥ १३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणौचित्यं दर्शयितुमाह—

प्रस्तुतार्थोचितः काव्ये भव्यः सौभाग्यवान् गुणः।
स्यन्दतीन्दुरिवानन्दं संभोगावसरोदितः ॥ १४ ॥

अन्वयः—प्रस्तुतार्थोचितः, गुणः, काव्ये, भव्यः, सौभाग्यवान्, (सन्), संभोगावसरोदितः, इन्दुः इव, आनन्दम्, स्यन्दति ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—प्रस्तुतार्थोचितः = प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप, गुणः = ओज, प्रसाद आदि गुण, काव्ये = काव्य में, भव्यः = सुन्दर, सौभाग्यवान् = चरितार्थ, भाग्यशाली, (सन् = होकर) संभोगावसरोदितः = रतिक्रीडा के अवसर पर उदित, इन्दुः इव = चन्द्रमा की तरह, आनन्दम् = आनन्द को, स्यन्दति = प्रवाहित करता है ॥ १४ ॥

अर्थः—प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप ओज प्रसाद आदि गुण काव्य में उसी प्रकार सुन्दर तथा चरितार्थ होकर आनन्द को प्रवाहित करते हैं, जैसे रति-क्रीडा के अवसर पर उदित चन्द्रमा आनन्द को प्रवाहित करता है ॥ १४ ॥

टीका—प्रबन्धार्थगतौचित्योदाहरण-प्रत्युदाहरणे प्रत्युपस्थाप्येदानीं क्रमप्राप्तं गुणौचित्यं विवेचयितुमाह—प्रस्तुतार्थोचित इति। प्रस्तुतार्थोचितः—प्रस्तुतस्य = उपस्थितस्य, वर्णनीयस्येति यावत्, अर्थस्योचितः = अनुरूपः, गुणः = ओजःप्रसादादिर्गुणः, काव्ये = प्रबन्धे, भव्यः = आवर्जकः, सुन्दर इति यावत्. सौभाग्यवान् = सौभाग्यसंवलितः, चरितार्थ इति यावत्, सन्, संभोगावसरोदितः—संभोगस्य = रतिक्रीडायाः, अवसरे = काले उदितः = निःसृतः, इन्दुः = चन्द्रः, इव = यथा, आनन्दम् = सौख्यम्, स्यन्दति = प्रवाहयतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

प्रस्तुतार्थस्यौचित्येनौजःप्रसादमाधुर्यसौकुमार्यादिलक्षणो गुणः काव्ये भव्यः सौभाग्यवत्तामवाप्तः सहृदयानन्दसन्दोहमिन्दुरिव स्यन्दति।

अर्थ :—कारिका की ही व्याख्या करते हुए कह रहे हैं :—

काव्य में वर्णित किये जा रहे अर्थ के औचित्य से आलंकारिक वामन के द्वारा कथित ओज, प्रसाद, माधुर्य तथा सौकुमार्य आदि दसों गुण काव्य में उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार सहृदयों के अमन्द आनन्द को प्रवाहित करते हैं जैसे कान्ता के संभोग के अवसर पर उदित चन्द्रमा आनन्द-निस्यन्द का कारण बनता है ॥ १४ ॥

टीका—कारिकाभिप्रायमेव विस्फोरयत्यधुना—प्रस्तुतार्थस्येति। प्रस्तुतार्थस्य=वर्ण्यमानार्थस्य, औचित्येन=योग्यविनियोगेन, ओजःप्रसादादयो वामनकथिता दश गुणाः, काव्ये=प्रबन्धे भव्याः सन्तस्तथैव सहृदयहृदयाह्लादकारका भवन्ति यथा संभोगावसरे आकाशे प्रदीपायमानश्चन्द्रः सहृदयानामुदारे चेतस्यमन्दमानन्दं भरति ॥ १४ ॥

यथा भट्टनारायणस्य—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः,
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः॥

अर्थ :—गुण गत औचित्य का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है महाकवि भट्टनारायण के वेणीसंहार नामक नाटक से—

प्रसङ्ग :—द्रोणाचार्य के वध के अनन्तर कौरवसेना चारों ओर भाग रही है। उसी समय तलवार ताने कोलाहल सुनते हुए अश्वत्थामा प्रवेश करते हुए कहता है—

आज सामने यह, महाप्रलय के समय वायु से आन्दोलित पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघों के प्रचण्ड गर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करनेवाला, कर्णकटु, आकाश तथा पृथिवी के मध्यवर्ती भाग (अन्तरिक्ष) रूपी कन्दरा को व्याप्त करनेवाला, अभूतपूर्व, कोलाहल संग्रामरूपी सागर से बार-बार क्यों (उठ रहा है ?) ॥ ३ । ४ ॥

टीका—महाप्रलयेति। महाप्रलयेत्यादिः—महाप्रलये=महाप्रलयकाले ये मारुताः=वायवस्तैः क्षुभितयोः=इतस्ततः सञ्चालितयोः पुष्करावर्तकयोः=पुष्करावर्तकनामधारिणोः मेघयोः प्रचण्डम्=भीषणम् यद् घनगर्जितम्=मेघगर्जनम् यद्वा प्रचण्डं घनम्=अनवरतञ्च यत् गर्जितं तस्य प्रतिरवस्य=प्रतिध्वनेः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुकारी=अनुकरणकर्ता, सदृश इत्यर्थः, श्रवणभैरवः—श्रवणयोः=श्रोत्रयोः श्रवणे=आकर्णने वा भैरवः=भीषणः, स्थगितरोदसीकन्दरः—स्थगितम्=व्याप्तम् रोदस्योः=द्यावापृथिव्योः कन्दरम्=गह्वरम् येन तादृशः, अभूतपूर्वः=पूर्वमश्रुतः, रवः=ध्वनिः, समरोदधेः समरः=संग्रामः उदधिः=सागर इव तस्मात्, मुहुः=बारम्बारम्, कुतः=कस्मात्, भवति=जायते इति शेषः। उपमालङ्कारः। पृथिवी छन्दः ॥ ३ । ४ ॥

अत्रौजस्विनो भटमुकुटमणेरश्वत्थाम्नः स्फूर्जदूर्जितप्रतापानुरूपं वाक्यमोजसा काव्यगुणेनोदग्रतामवाप्तं सहस्रगुणमिव विक्रमौचित्यगौरवमावहति।

अर्थ :—इस पद्य में योद्धा-शिरोमणि अश्वत्थामा का, फड़कने वाले तेजस्वी प्रताप के अनुरूप, वाक्य ओजोनामक काव्यगुण के कारण समृद्धि को प्राप्त कर हजार गुणा अधिक-सा होकर विक्रम के अनुरूप गौरव को धारण कर रहा है।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, ओजस्विनः=प्रतापशालिनः, भटमुकुटमणेः=योद्धृभानोः, अत्यन्तप्रतापशालिनः, अश्वत्थाम्नः=द्रोणपुत्रस्य, स्फूर्जत्=चमत्कुर्वत्, ऊर्जितप्रतापानुरूपम्—ऊर्जितः=ऊर्जस्वी यः प्रतापस्तस्यानुरूपम्=योग्यम्, वाक्यम्=श्लोकात्मकः पदसमूहः, ओजसा काव्यगुणेन=ओजो नामकेन काव्यगुणेन, उदग्रताम्=उच्छ्रितताम्, अवाप्तम्=प्राप्तम्, अधिगतम्, सहस्रगुणमिव=सहस्रगुणाधिकमिव, विक्रमौचित्यगौरवम्=पराक्रमानुरूपं गरिमाणम्, आवहति=धारयति ॥

यथा वा भट्टबाणस्य—

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि-
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥

अर्थ :—गुणगत औचित्य का दूसरा उदाहरण देने के लिए कह रहे हैं :—जैसे भट्ट बाण की निम्नलिखित रचना में है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्प अथवा मुक्ता की माला, भींगा वस्त्र, कमलिनी के पत्ते, बर्फीली बूँदों को टपकाने वाले चन्द्रमा की किरणें तथा सरस चन्दनद्रव आदि जिस (कामाग्नि) के लिए ईंधन का काम कर रहे हैं, वह कामाग्नि भला कैसे बुझ सकती है ।

टिप्पणी—नायिका काम से सन्तप्त थी। उसका शरीर जल रहा था। सखियों ने, शुभचिन्तकों ने शरीर ताप के निवारण के लिए कुन्द, चम्पक आदि की माला पहनानी शुरू की। किसी ने शिर पर, मस्तक पर तथा तलवे पर गीली, ठण्डी पट्टी रखी। इसी प्रकार आगे बतलाये गये अन्य उपचार प्रारम्भ किये गये। किसी विशिष्ट साहित्यिक ने इसे देख कर माथा ठोंक लिया। उसने कहा —"ये उपचार तो अन्य बाह्य तापों का उपशमन कर सकते हैं, किन्तु कामाग्नि का इनसे शमन नहीं होता। ये सब तो कामाग्नि को और भड़काने ही वाले ठहरे।" बस, साहित्यिक की यही उक्ति इस श्लोक में वर्णित है ॥

टीका—हारो जलार्द्रवसनमिति । गुणगतौचित्यस्यापरमुदाहरणं प्रदर्शयितुमाह—हार इति । हारः=पुष्पाणां माला मौक्तिको वा हारः, जलार्द्रवसनम्—जलेन=सलिलेन आर्द्रम्=क्लिन्नम् वसनम्=वस्त्रम्, नलिनीदलानि —नलिन्याः=कमलिन्याः दलानि=पत्राणि, प्रालेयशीकरमुचः=तुषारकणवर्षिणः, तुहिनांशुभासः—तुहिनांशुः=चन्द्रः तस्य भासः=किरणानि, च= तथा; सरसानि=शीतलानि, चन्दनानि=श्रीखण्डद्रवाः, यस्य=यस्य मनोभवाग्नेः, इन्धनानि=प्रज्वालकानि काष्ठादीनि, भवन्तीति शेषः, सः=तादृशः, मनोभवाग्निः—मनोभवः=काम एवाग्निः=सन्तापकत्वाद्वह्निः, कथम्=एभिरुपचारैः केन प्रकारेण, निर्वाणम्=शान्तिम्, एष्यति=यास्यति, प्राप्स्यतीति यावत् । न ह्येभिरुपकरणैः शान्तिं गमिष्यतीति भावः ॥

अत्र विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथावर्णना माधुर्यसौकुमार्यादिगुणयोगेन पूर्णेन्दुवदनेव प्रियंवदत्वेन हृदयानन्ददायिनीं दयिततमतामातनोति ।

अर्थ :—इस श्लोक में वियोग के भार से टूटे हुए धैर्यवाली कादम्बरी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरहव्यथा का वर्णन माधुर्य, सौकुमार्य आदि उचित गुणों के सहयोग से वैसी ही हृदयानन्ददायिनी लोकप्रियता को प्राप्त कर रहा है जैसे चन्द्रवदना सुन्दरी अपने मधुरवचनों के द्वारा 'प्रियतमा' तथा हृदयानन्ददायी 'दयिता' पद को प्राप्त करती है। अर्थात् 'प्रियतमा' एवं 'दयिता' कही जाती है।

टीका—श्लोकाभिप्रायं विवृणुते—अत्रेति। विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः—विप्रलम्भस्य=वियोगस्य भरेण=भारेण भग्नम्=विनष्टम् धैर्यम्=धीरता यस्यास्तथाभूतायाः, कादम्बर्याः, विरहव्यथावर्णना—विरहव्यथायाः=वियोग-सन्तापस्य वर्णना=वर्णनम्; माधुर्यसौकुमार्यादिगुणयोगेन=माधुर्यसौकुमार्यादि-गुणसम्बन्धेन, प्रियम्वदत्वेन=मधुरवादितया, पूर्णेन्दुवदना=पूर्णचन्द्रानना कामिनीव, हृदयानन्ददायिनीम्=चेतोह्लादकारिणीम्, दयिततमताम्=अति-प्रेमास्पदताम्, आतनोति=विस्तारयति॥

न तु यथा चन्द्रकस्य—

युद्धेषु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं नियच्छति जयश्च पराजयश्च।
एषैव मे रणगतस्य सदा प्रतिज्ञा
पश्यन्ति यन्न रिपवो जघनं हयानाम्॥

अर्थ :—गुणगत अनौचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा चन्द्रक का पद्य है—

भाग्य के कारण अनिश्चित युद्ध के विषय में मेरी प्रतिज्ञा नहीं है, क्योंकि जीत-हार पूर्णतः दैवाधीन हुआ करती है। किन्तु युद्ध में संलग्न मेरी सर्वदा यही प्रतिज्ञा रहती है कि शत्रुजन युद्ध से मुख मोड़ते हुए मेरे घोड़ों का पिछला भाग न देख सकें अर्थात् शत्रु के बाणों की बौछार के कारण विवश होकर मुझे युद्ध से मुख न मोड़ना पड़े—यही मेरी प्रतिज्ञा रहती है॥

टीका—गुणगतानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—न तु यथा चन्द्रकस्येति। भाग्य-चपलेषु—भाग्येन=दैवेन चपलेषु=चञ्चलेषु, जयपराजयविषयेऽनिश्चितेषु, युद्धेषु=संग्रामेषु, मे=मम, प्रतिज्ञा=कश्चन प्रणः, न=नास्ति। हि दैवम्=भाग्यम्, जयम्=विजयम् पराजयश्च=पराभूतिञ्च, नियच्छति=नियमयति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतो रणगतस्य=युद्धरतस्य, मे=मम, सदा=सर्वदा, एषा=इयमेव, प्रतिज्ञा =प्रण:, यत् रिपवः=शत्रवः, मे हयानाम्=अश्वानाम्, जघनम्= पृष्ठभागम्, न पश्यन्ति=नावलोकयन्ति ॥

अत्र क्षात्रवृत्तिरिवौजसा काव्यगुणेनास्पृष्टा सुभटोक्तिरुचितार्थापि तेजोजीवितविरहिता दुर्गतगृहदीपशिखेव मन्दायमाना न विद्योतते।

अर्थ :—यहाँ क्षत्रिय वीर के आचरण की तरह वीरकाव्य के गुण ओज से सर्वथा रहित वीर की यह उक्ति, उचित अर्थ से युक्त होती हुई भी अर्थात् यद्यपि इसका आशय वीरोचित है तथापि, वीर की उक्ति में वर्तमान रहने वाले तेज रूप प्राण से रहित है। अत: मन्दतेजवाली यह उक्ति उसी तरह सुशोभित नहीं हो रही है जैसे निर्धन के घर की टिमटिमाती दीपशिखा ठीक से प्रकाशित नहीं होती।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, क्षात्रवृत्तिः=क्षत्रियवीरजनोचितो व्यवहारः, काव्यगुणेन ओजसा=ओजोगुणेन, अस्पृष्टा=असंपृक्ता, उचिता= यथार्थाऽपीयम्, सुभटोक्तिः=वीरोक्तिः, तेजोजीवितविरहिता—तेजसः=तेजस्विताया जीवितम्=जीवनम्, प्राणा इत्यर्थः, तस्मात् विरहिता=विहीना, मन्दायमाना=तेजोविरहिता, तथैव न विद्योतते=न शोभते, यथा दुर्गतगृहदीपशिखा—दुर्गतानाम्=निर्धनानाम् गृहे=जीर्णे आवासे स्नेहाभावात् मन्दायमाना =मलिना दीपशिखा न विद्योतते ॥

यथा वा राजशेखरस्य—

> **एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्यो न यः,**
> **स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थम्पचः पाथसाम्।**
> **निर्वीर्यीकृतचन्दनौषधिविधौ तस्मिंस्तडत्कारिणो,**
> **लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयः सर्वेऽपि हारस्रजाम् ॥**

अर्थः—गुणगत अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—अथवा जैसे राजशेखर का निम्न पद्य है—

(वक्षस्थल पर रक्खे गये पात्र में) पसेरी भर पानी को भी गरम कर देने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाला, इस वियोगिनी नायिका का कामज्वर स्नेही स्वजनों के द्वारा हाथ रखकर इसलिए नहीं देखा जा रहा है कि कहीं इसके शरीर पर हाथ रखने से वह हाथ जल न जाय। उसके शरीर पर पोता गया औषधिसिश्रित चन्दन का लेप भी निष्फल हो रहा है तथा वक्षस्थल पर धारण की गई मुक्तामाला की सभी मणियां धान के लावा की तरह तड़तड़ा कर फूट रही हैं ॥

टीका—गुणगतानौचित्यस्यापरमुदाहरणं प्रस्तोतुमाह—एतस्या इति। पाथसाम्=जलानाम्, प्रस्थम्=प्रस्थपरिमाणं पचति=उष्णं करोतीति तादृशः, एतस्याः=अस्याः नायिकायाः, यः, स्मरसंज्वरः—स्मरेण=कामेन कृतः संज्वरः=सन्तापः, स्निग्धेनापि=स्वकीयेनापि, अपिना सरसेनापि, जनेन =मनुष्येण, दाहभयतः=ज्वलनभीत्या करतलस्पर्शैः=हस्तेन छुप्येत्यर्थः, न परीक्ष्यः=नानुभवनीयो भवति। तस्मिन्=तादृशे ज्वरे=दाहे, निर्वीर्यीकृत-चन्दनौषधिविधौ—निर्वीर्यीकृतः=निष्पावीकृतः, विफलीकृत इति यावत्, चन्दनरूपस्य=श्रीखण्डरूपस्य औषधेर्विधौ=प्रयोगे, सति, तडत्कारिणः= तडतडायमानाः, हारस्रजाम्=मुक्तादाम्नाम्, सर्वेऽपि=निखिला अपि, मणयः=मुक्ताः, लाजस्फोटम्=यथा लाजाः स्फुटन्ति तथेतिभावः, स्फुटन्ति= लाजादिरूपेण परिणमन्तो बहुधा भवन्तीत्यर्थः ॥

अत्र विरहविधुररमणीमनोभवावस्थानुरूपं माधुर्यमुत्सृज्य तड-त्कारिणो लाजस्फोटं स्फुटन्तीत्योजःस्फूर्जितोर्जितस्वभावाधिवासिता सूक्तिर्लावण्यपेशलतनुर्ललितललनेव परुषभाषिणी झटित्यनौचित्यं चेतसि सञ्चारयति ॥ १४ ॥

अर्थः—इस श्लोक में वियोग से सन्तप्त सुन्दरी की मनोदशा के अनुकूल मधुरता को छोड़कर 'तड़तड़ाकर लावा के समान फूट रहे हैं' इस प्रयोग से ऊर्जित स्वभाववाले ओजोगुण का समावेश कर देने के कारण सारी की सारी सूक्ति उसी प्रकार से सहृदयों के हृदय में अनौचित्य का सञ्चार कर देती है, जैसे अत्यन्त सुकोमल सुन्दर शरीर वाली मनोहारिणी ललना अपने कटु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषण से श्रोताओं के चित्त में शब्द सुनते ही विरसता की सृष्टि कर देती है ॥ १४ ॥

टीका—अत्र पद्ये गुणगतमेवानौचित्यं विवृणुते—अत्र विरहेत्यादि०—अत्र=अस्मिन् पद्ये, विरहविधुरेत्यादिः—विरहेण=वियोगेन विधुरायाः=सन्तप्तायाः रमण्याः=कामिन्याः मनोभवावस्थायाः=कामदशायाः अनुरूपम्=योग्यम्, माधुर्यम्=मधुरताम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, "तडत्कारिणो लाजास्फोटं स्फुटन्ति" इति=एतादृशपदगुम्फनेन, ओजसः=ओजोगुणस्य स्फूर्जितः=चमत्कारसंवलितः ऊर्जितः=ओजस्वितः यः स्वभावस्तेन वासिता=सुरभिता, सूक्तिः=सुभाषितम्, लावण्यपेशलतनुः लावण्यम्=सौन्दर्यभरितं पेशलम्=मसृणम् तनुः=शरीरं यस्याः सा तादृशी, ललिता=अतिलालित्यवती या ललना=तरुणी, यदि परुषभाषिणी—परुषम्=कर्कशम् भाषते या सा तादृशीव, झटिति=शीघ्रम्, अनौचित्यम्=अयोग्यभावनाम्, चेतसि=सहृदयानां मनसि, सञ्चारयति=प्रसर्पयति ॥ १४ ॥

अलङ्कारौचित्यं दर्शयितुमाह—

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलङ्कारेण शोभते ।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ॥ १५ ॥

अन्वयः—पीनस्तनस्थितेन, हारेण, हरिणेक्षणा, इव, अर्थौचित्यवता, अलङ्कारेण, सूक्तिः, शोभते ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—पीनस्तनस्थितेन=मोटे एवं उत्तुङ्ग पयोधरों के बीच स्थित, हारेण=हार से, हरिणेक्षणा इव=मृगनयनी के समान, अर्थौचित्यवता=अर्थगत औचित्य से अलंकृत, अलंकारेण=अलंकार से, सूक्तिः=कवि के सुन्दर वचन, शोभते=सुशोभित होते हैं ॥ १५ ॥

अलङ्कारगत औचित्य को दिखलाने जा रहे हैं—

अर्थः—मोटे एवं उत्तुङ्ग पयोधरों के बीच स्थित हार से मृगनयनी की जैसी शोभा होती है वैसी ही शोभा से अर्थगत औचित्य से अनुप्राणित अलङ्कार से कवि के सुन्दर वचन सुशोभित होते हैं ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—गुणगतौचित्योदाहरणप्रत्युदाहरणादिकं प्रदर्श्याधुना पञ्चममलंकारगतौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—अर्थौचित्यवतेति। पीनस्तनस्थितेन–पीनौ=उत्तुङ्गौ यौ स्तनौ=पयोधरौ तत्र स्थितेन=वर्तमानेन, हारेण=मुक्तादाम्ना, हरिणेक्षणेव=मृगनयनीव, अर्थौचित्यवता=प्रचलितार्थानुरूपशालिना, अलंकारेण=उपमारूपकादिभिरित्यर्थः, सूक्तिः=सुभाषितम्, काव्यवचनमिति यावत्, शोभते=आभासते ॥ १५ ॥

प्रस्तुतार्थस्यौचित्येनोपमोत्प्रेक्षादिनालङ्कारेण सूक्तिश्चकास्ति कामिनीवोच्चकुचचुम्बिना रुचिरमुक्ताकलापेन ।

अर्थः—प्रस्तुत अर्थ के औचित्य से युक्त उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के द्वारा सत्कविरचना उसी प्रकार सुशोभित होती है जैसे ऊँचे स्तनों पर लहराने वाली आकर्षक मुक्ता-माला से काम के मद से मतवाली तरुणी सुशोभित होती है।

टीका—श्लोकार्थमेव विस्फोरयति—प्रस्तुतार्थस्येति। प्रस्तुतार्थस्य=प्राकरणिकस्यार्थस्य, औचित्येन=अनुकूलेन, उपमोत्प्रेक्षादिनाऽलंकारेण; सूक्तिः=सत्कविभणितिः, उच्चकुचचुम्बिना—उच्चौ=उन्नतौ यौ कुचौ=पयोधरौ तौ चुम्बिना=स्पर्शशालिना, रुचिरमुक्ताकलापेन—रुचिरः=मनोहरो यो मुक्ताकलापः=मौक्तिकदाम तेनालंकृता, कामिनीव=काममदविह्वला तरुणीव, चकास्ति=शोभते ॥

यथा श्रीहर्षस्य—

> विश्रान्तविग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य
> चित्ते वसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात् ।
> पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
> वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ॥

अर्थः—अलंकारगत औचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—जैसे श्रीहर्ष का निम्नलिखित पद्य है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसङ्ग—यह श्लोक हर्षवर्धन रचित रत्नावली से यहाँ उद्धृत किया गया है। जिस समय उदयन वसन्तमहोत्सव को देखने के लिए पधार रहे हैं उसी समय का यह प्रसंग है।

अनंग होने के कारण शरीर की कथा से रहित, रतिपति, मनोभव होने के कारण लोगों के चित्त में निवास करने वाले, प्रिय वसन्त ऋतुवाले साक्षात् कामदेव की तरह शत्रुओं को पराजित कर देने के कारण युद्ध आदि की वार्ता से रहित, आनन्दमग्न, सुशासक होने के कारण लोगों के चित्तों में निवास करने वाले अर्थात् सर्वजनप्रिय, वसन्तक नामक मित्र वाले यह महाराज उदयन अपने महोत्सव को (मदन महोत्सव को) देखने के लिए इधर ही आ रहे हैं ॥

टीका—अलंकारगतौचित्यमुदाहर्तुमाह—विश्रान्तविग्रहकथेति। विश्रान्ता =समाप्ता विग्रहस्य=शरीरस्य कथा=वार्ता यस्य स तादृशः, कामोऽनङ्गत्वाद्विग्रहशून्य इति प्रसिद्धिः, रतिमान् रतिरस्तीत्यस्य रतिमान्=रतिनाम्न्या पत्न्या संयुक्तः, मनोभवत्वात् जनस्य=प्राणिमात्रस्य, चित्ते=मनसि, वसन्=निवसन्, प्रियवसन्तकः-प्रियः=अभीप्सितो वसन्तः=वसन्तर्तुरेव वसन्तकः, निजमहोत्सवदर्शनाय—निजः=स्वकीयः, स्वमुद्दिश्य प्रवर्तितो यो महोत्सवः=मदनमहोत्सव इत्यर्थः तस्य दर्शनाय=अवलोकनाय, पर्युत्सुकः=उत्कण्ठितः, कुसुमचाप इव= कामदेव इव, विश्रान्तविग्रहकथः—शत्रून् पराजित्य विश्रान्ता=समाप्तिमापादिता विग्रहस्य=युद्धस्य कथा=वार्ता येन स तादृशः, रतिमान्=आनन्दोल्लसितः, जनस्य=प्रजावर्गस्य, चित्ते=मनसि, वसन्=निवसन्, सुशासकत्वात्, प्रियवसन्तकः—प्रियः=अभीप्सितः सखेति यावत् वसन्तकः=एतन्नामको विदूषको यस्य स तादृशः, वत्सेश्वरः=राजा उदयनः, निजमहोत्सवदर्शनाय पर्युत्सुकः=उत्कण्ठितः सन्, अभ्युपैति=आगच्छति ॥

अत्र वत्सेश्वरस्य कुसुमचापेनोपमा शृङ्गारावसरसरसचारुतरतामौचित्येन कामपि चेतश्चमत्कारिणीमाविष्करोति।

अर्थः—इस श्लोक में वत्सराज उदयन की कामदेव के साथ की गई तुलना शृंगार रस के अनुरूप होने के कारण सहृदयों के हृदय को चमत्कृत कर देने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाली किसी अलौकिक ही चारुता को प्रकट कर रही है। अलंकारौचित्य का यह बड़ा ही सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

नतु यथा चन्द्रकस्य—

खगोत्क्षिप्तैरन्त्रैस्तरुशिरसि दोलेव रचिता,
शिवा तृप्ताहारा स्वपिति रतिखिन्नेव वनिता।
तृषार्तो गोमायुः सरुधिरमसिं लेढि बहुशो,
बिलान्वेषी सर्पो हतगजकराग्रं प्रविशति॥

अर्थः—अलंकारगत अनौचित्य का प्रदर्शन करने के लिए कहा गया है—ऐसा नहीं होना चाहिए जैसा कि चन्द्रक के पद्य में है—

प्रसङ्ग—कहीं अभी-अभी युद्ध समाप्त हुआ था। दोनों दलों की सेनाएँ युद्धस्थल से वापस जा चुकी थीं। मांसभक्षी पशु एवं पक्षी युद्धस्थल का आनन्द ले रहे थे। उसी समय का वर्णन प्रस्तुत पद्य में किया गया है।

कहीं मरे हुए सैनिकों की अँतड़ियाँ उड़ते हुए गीध, चील तथा कौवे आदि की चोंच तथा चंगुलों से गिर कर वृक्षों की डाल पर झूले के समान लटक रही हैं। कहीं छककर मांस का भोजन की हुई सियारिन तृप्त होकर उसी प्रकार अलसाई हुई सो रही है जैसे रतिक्रिया से थक कर चूर-चूर हुई कामिनी सो रही हो। कहीं प्यास से व्याकुल सियार खून से सनी हुई तलवार को बार-बार चाट रहा है। कहीं बिल को खोजता हुआ सर्प मारे गये हाथी की सूंड़ में घुस रहा है॥

टीका—अलंकारानौचित्यमुदाहर्तुमाह—खगोत्क्षिप्तैरिति। युद्धे मृतानां मानवाश्वादीनां खगोत्क्षिप्तैः—खगैः=पक्षिभिः उत्क्षिप्तानि=आकाशे आनीतानि यानि अन्त्राणि तैः, तरुशिरसि=तरूणाम्=वृक्षाणाम् शिरसि=शिखरे, दोलेव रचिता=निर्मिता। तृप्ताहारा=मांसभोजनेन सन्तुष्टा पूर्णाहारा, शिवा =जम्बुकी रतिखिन्ना-रत्या=रमणेन खिन्ना=परिश्रान्ता, वनिता इव=कामिनीव, स्वपिति=निद्राति, तृषार्तः=पिपासाव्याकुलः, गोमायुः=शृगालः, सरु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धिरम्=रुधिरेण क्लिन्नम्, असिम्=खड्गम्, बहुशः=वारम्वारम्, लेढि=जिह्वया स्वादयति । 'बिलान्वेषी=बिलान्वेषणपरः, सर्पः=भुजंगमः, हतगज-कराग्रम्-हतः=मारितो यो गजः=हस्ती तस्य कराग्रम्=शुण्डादण्डाग्रम्, प्रविशति=विशति ।।

अत्रानुचितस्थानस्थितायाः पुरुषपिशिततृप्तसुप्तायाः शिवायाः सुरतकेलिक्लान्तकान्तया विच्छायैवोपमा परं वैपरीत्यं प्रकाशयति ।

अर्थः—यहाँ अनुचित स्थान में स्थित मनुष्य के मांस के भक्षण से तृप्त हो कर सोई हुई सियारिन की सम्भोग क्रिया से थकी हुई कामिनी के साथ की गई उपमा सौन्दर्यहीन होकर बीभत्सरस के प्रतिकूल भाव को व्यञ्जित करती है। अतः यह अलंकारानौचित्य का व्यञ्जक सिद्ध हो रहा है।

कहने का भाव यह है कि उपमा समान में हुआ करती है। यहाँ काम-क्रीडा से थकी हुई कामिनी के साथ मनुष्य के मांस भक्षण से तृप्त एवं अलसाई हुई सियारिन की समता दिखलाकर उपमा अलंकार की जो योजना की गई है वह अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि स्थान एवं कर्म की दृष्टि से दोनों में कुछ भी समता नहीं है। कहाँ घर की जगमगाती मोती की तरह कामिनी और कहाँ दुर्गन्ध से भरपूर युद्धस्थल में आमोद मनाने वाली सियारिन। कहाँ पुरुष को लोकोत्तर आनन्द देकर थकने वाली कामिनी तो कहाँ पुरुष के मांसभक्षण से तृप्त तथा अलसाई हुई सियारिन। दोनों में कुछ भी समता नहीं है।

टीका—अत्रेति । अत्र=उक्ते पद्ये, अनुचितस्थानस्थितायाः—अनुचिते=अयोग्ये, रतिक्रीडाविपरीते इत्यर्थः, स्थाने=रणभूमौ स्थितायाः=वर्तमानायाः, पुरुषपिशिततृप्तसुप्तायाः—पुरुषस्य=नरस्य पिशितम्=मांसम् तेन तृप्ता=सन्तुष्टा अतः सुप्ता=कृतशयना तस्याः, शिवायाः=शृगाल्याः, सुरतकेलि-क्लान्तकान्तया—सुरतकेलिः=रति-क्रीडा तया सह, उपमा=तुलना, विच्छा-यैव=कान्ति-हीनैव, परम्=केवलम्, वैपरीत्यम्=प्रकृतबीभत्सरसविपरीतताम् प्रकाशयति=प्रद्योतयति ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा वा मालवरुद्रस्य—

अभिनववधूरोषास्वादः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः।
गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवे-
र्विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशाकरः॥

अर्थः—अलंकारगत अनौचित्य का दूसरा उदाहरण दिखलाने के लिए कहते हैं—अथवा जैसे मालवरुद्र का यह पद्य है—

शीतकाल में शुष्क गोबर (करसी) की आग नई नवेली वधू के कोप के समान आनन्द कर लगने लगती है, तथा शीतल हवा कपटी मनुष्य के आलिंगन के समान अप्रिय प्रतीत होती है। सूर्य का तेज निर्धन हो गये मनुष्य की आज्ञा के समान कोमल हो जाता है तथा चन्द्रमा विरहिणी नायिका के मुख के समान निस्तेज हो जाता है।

टीका—अलङ्कारगतानौचित्यस्यान्यमुदाहरणमुपस्थापयितुमाह—अभिनववधूरोषास्वाद इति। शीतसमयस्य वर्णनप्रसङ्गे कविकथनमिदम्। शीतसमये करीषतनूनपात्—करीषस्य=शुष्कगोमयस्य तनूनपात्=अग्निः, अभिनववधूरोषास्वादः—अभिनवा=नवागता या वधूः=विवाहिता स्त्री तस्याः यो रोषः =कोपः तस्य आस्वाद इव आस्वादः=अनुभवः यस्यासौ, नवोढाकोप इव प्रियो भवतीत्यर्थः। इत्थमेव तुषारसमीरणः=हिमवायुः, असरलजनाश्लेषक्रूरः—असरलः=कपटमयो यो जनः=मनुष्यः तस्य आश्लेषः=आलिङ्गनं तद्वत्क्रूरः= कर्कशः, अप्रिय इति यावत्, भवतीति शेषः। तथा रवेः=सूर्यस्य द्युतिः= प्रभा, तेज इति यावत्, गलितविभवस्य—गलितः=दूरीभूतः विभवः=धनं यस्यासौ तादृशस्य, जनस्य=मनुष्यस्य, आज्ञा=आदेशः, इव=यथा, मसृणा= कोमला, अप्रभावकरीति यावत्, जायत इति शेषः। एवमेव निशाकरः=चन्द्रः, विरहिवनितावक्त्रौपम्यम्—विरहिणी=प्रोषितपतिका या वनिता=स्त्री तस्याः वक्त्रम्=मुखम् तस्य औपम्यम्=तुलनाम्, बिभर्ति=धारयति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र कोमलकामिनीकोपेन करीषकृशानोः सादृश्यं शीतसमयस्वादुतया हृदयसंवादसुन्दरमप्यनुचितत्वेन सहसैव चेतसः सङ्कोचमिवादधाति ।

अर्थः—इस पद्य में सुकुमार सुन्दरी का जो कोमल कोप है उसके साथ शुष्क गोमय (करसी) की आग का सादृश्य बतला[illegible] शीतकाल में रुचिकर होने के कारण हृद्य होते हुए भी, अनुचित होने के कार[illegible] सहृदयों के हृदय को सङ्कुचित-सा कर देता है, क्योंकि हृदय को आनन्दसागर में निमग्न कर देने वाले नवोढा के कोप की तुलना दाहक अग्नि के साथ दिखलाना अनुचित है, कविसम्प्रदाय के विरुद्ध है। अतः उपमा अलंकार को यहाँ निर्दुष्ट नहीं कहा जा सकता ॥

टीका—अत्रेति । अत्र=अस्मिन् पद्ये, कोमलकामिनीकोपेन—कोमलः=मसृणः कामिन्याः=सुन्दर्याः यः कोपः=रोषस्तेन सह, करीषकृशानोः=शुष्कगोमयाग्नेः, सादृश्यम्=समत्वम्, शीतसमयस्वादुतया=शीतकाले रुचिरतया, हृदयसम्वादसुन्दरम्—हृदयेन=मनसा सह यः सम्वादः=ऐक्यानुभूतिस्तेन सुन्दरम्=मनोहरम्, अपि, हृद्यमपीत्यर्थः,अनुचितत्वेन=अयोग्यत्वेन, सहसैव=अकस्मादेव, चेतसः=मनसः, संकोचमिव=खेदानुभवतया ग्लानिमिव, आदधाति=आपादयति । यद्यपि नवोढायाः कोपस्य करीषाग्नेश्च स्वादुत्वांशे साम्यं हृदयसंवादि वर्तते तथापि तत्कथनमनौचित्यमेव बिभर्ति यतोहि नवोढाकोपः सर्वदा हृदयाह्लादी तृप्तिकरश्च किन्तु करीषकृशानुस्तु हृद्यत्वेऽपि सन्तापक एवेति कविसम्प्रदायविरुद्धत्वमिति ॥

यथा वा राजशेखरस्य—

चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः,
कलङ्कस्तत्रत्यः स्पृशति मलिनाङ्गारकलनाम् ।
यदेतत्सज्ज्योतिर्दरदलितकर्पूरधवलं,
मरुद्भिर्भस्मैतत्प्रसरति विकीर्णं दिशि दिशि ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थः—अलंकारगत अनौचित्य का तीसरा उदाहरण दिखलाने के लिए कहते हैं—अथवा जैसे राजशेखर का निम्नलिखित पद्य है—

प्रसंग—यहाँ महाकवि चन्द्र को उपालम्भ देते हुए कह रहा है—

यह चन्द्रमा रुद्र के कोप से दग्ध-शरीर कामदेव की धधकती हुई चिता है। चन्द्र में दिखलाई पड़ने वाला कलंक और कुछ नहीं उसी चिता के बुझे हुएं अंगारे हैं। कुछ-कुछ पीसकर चूर्णं बनाये गये कपूर की तरह धवल यह जो ज्योति फैल रही है, वह और कुछ नहीं, बल्कि हवाओं के द्वारा उड़ाये गये उसी चिता के भस्म हैं ॥

टीका—अलंकारगतस्यानौचित्यस्य तृतीयमुदाहरणमुपस्थापयति। चिताचक्रमिति। चन्द्रः=इन्दुः, दग्धवपुषः—दग्धम्=प्रज्वलितम् वपुः=शरीरम् यस्य. तादृस्य, कुसुमधनुषः=पुष्पेषोः कामदेवस्य, चिताचक्रम्=चितामण्डलमस्तीति भावः। तत्रत्यः=चन्द्रे वर्तमानः, कलङ्कः=लाञ्छनम्, मलिनाङ्गारकलनाम्=कृष्णाङ्गारतुलनाम्, स्पृशति=चुम्बति। दरदलदिति—दरम्=ईषत् दलितम्=चूर्णीकृतम् यत्कर्पूरं तद्वत् धवलम्=श्वेतम्, यदेतत्=परिदृश्यमानम्, सद्योतिः=सत्प्रकाशः, तत् मरुद्भिः=वायुभिः, दिशिदिशि=प्रतिदिशम्, विकीर्णम्=प्रसारितम्, भस्म=चिताधूलिरस्तीति शेषः ॥

अत्राप्यानन्दिसुधावस्यन्दसुन्दरस्येन्दोश्चिताचक्रत्वमनुचिततया कर्णकटुकमातङ्कमिवातनोति।

अर्थः—यहाँ भी आनन्ददायक तथा अमृतबिन्दुओं को बरसाने वाले आह्लादक चन्द्र में चिताचक्रत्व की बात बतलाना, अर्थात् रूपकालंकार की योजना करना, अनुचित है। यह कथन सुनने में कर्णकटु तो लगता ही है साथ ही साथ मन में विरसता भी पैदा होती है।

टीका—अत्रापीति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, अपिना पूर्वेण साम्यमुक्तम्, आनन्दीति—आनन्दिना=आह्लादकेन, सुधावस्यन्देन=अमृतवर्षणेन, सुन्दरस्य=मनोज्ञस्य, इन्दोः=चन्द्रस्य, चिताचक्रत्वम्=चितामण्डलत्वम्, चन्द्रे चिताचक्रस्यारोपो रूपकमिति यावत्, अनुचिततया=अशोभनतया, कर्णकटुकम्=श्रवणदुःखदम्, आतंकम्=त्रासमिव, विरसत्वमिवेतिभावः, आतनोति=विस्तारयति ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योऽर्थस्तु हृदयसंवादी स यद्यनौचित्यस्पर्शलेशरहितस्तदाऽधिकतरामलङ्कारशोभां पुष्णाति । यथा कार्पटिकस्य—

शीतेनोद्घृषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः,
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे ।
निद्रा क्वापि विमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता,
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी ॥

अर्थ :—जो अर्थ हृद्य है वह यदि अनौचित्य के स्पर्श के लेश से भी वर्जित है तो अधिक शोभा को पुष्ट करता है अर्थात् अधिक चमत्कारी होता है। जैसे कविवर कार्पटिक का निम्न पद्य है—

कड़ाके की सर्दी के कारण उचित वस्त्रों के अभाव में मेरी दशा उर्द की छीमी के समान हो गई है। चिन्ताओं ने मुझे सब तरफ से घेर लिया है। (ईंधन के अभाव में) बुझी हुई आग को फूँकते-फूँकते मेरे ओठ फट गये हैं। भूख के कारण मेरा गला सूख रहा है। मेरी नींद मुझे छोड़कर उसी प्रकार न जाने कहाँ विलीन हो गई है, जैसे अपमानित प्रियतमा प्रेमी को छोड़कर कहीं चली जाती है। सत्पात्र को दान दी गई पृथिवी के समान रात अक्षय हो रही है। (अर्थात् बीतने का नाम ही नहीं ले रही है) ॥

टीका—हृदयसंवाद्यप्यर्थोऽनौचित्यलेशाभावादेवालङ्कारशोभां पुष्णातीत्युदाहर्तुमुपक्रमते—योऽर्थस्त्विति । योऽर्थो हृदयसंवादी—सहृदयहृदयानुमतः सोऽर्थो अनौचित्यस्पर्शलेशरहितः=यथा कथञ्चिदपि कयाचिदपि दिशाऽनौचित्यसम्बन्धशून्यो भवति, तदा=तस्यामेवास्थायाम्, अधिकतराम्=अत्यन्तम्, अलङ्कारशोभाम्=अलङ्कारश्रियम्, पुष्णाति=वर्धयति । अत्रोदाहरते यथा कार्पटिकस्येति कार्पटिकनामा कश्चनाज्ञातः कविस्तस्य पद्ये वर्तत इति शेषः ॥

सर्वथा निर्दुष्टामौचित्यलक्षणभरितामेवोक्तिमुदाहरति—शीतेनेति । शीतेन =तुषारप्रभावेन, माषशिमिवत्=माषफलफलकवत् उद्घृषितस्य=अतितरां पीडितस्य, यथा माषशिमयो शीतपीडाप्रभावात्सङ्कुचिताः जडीभूताश्च जायन्ते तथैवाहमपि शीतेन पीडितः सन् जानुनी शिरसा संयोज्य ग्रन्थिरिव निश्चेष्टो भवामीति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावः। चिन्तार्णवे=चिन्तासागरे, मज्जतः=ब्रुडतः, क्षुत्क्षामकण्ठस्य=बुभुक्षाशुष्कगलस्य, शान्ताग्निम्—शान्तः=इन्धनाभावान्निर्वाणमुपगतः अग्निः= वह्निस्तम्, धमतः—फूत्कारेणोज्जीवयतः, अत एव स्फुटिताधरस्य—विदीर्णोष्ठस्य, मे=मम, निद्रा=स्वापः, विमानिता=तिरस्कृता, दयितेव=प्रेयसीव, सन्त्यज्य=त्यक्त्वा, दूरंगता=पलायिता, तथा शर्वरी=रात्रिः, सत्पात्रप्रतिपादिता—सत्पात्राय=योग्यपुरुषाय प्रतिपादिता, मेदिनीव=पृथिवीव, न क्षीयते =नान्तं गच्छति॥

अत्रानौचित्यस्पर्शपरिहारेण केवलं हृदयसंवादसौन्दर्यमेव स्वादुतामादधाति॥ १५॥

अर्थ :—इस पद्य में "विमानितेव दयिता" तथा "सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा" आदि पदों के द्वारा प्रतिपादित उपमा अलंकार अनौचित्य के लेश से भी रहित होने के कारण सहृदयों के हृदय से समर्थित होकर केवल परम चारुता तथा आस्वाद्यता को ही प्राप्त होता है। अर्थात् यहाँ के अर्थ (दरिद्र व्यक्ति की अवस्था) का स्फटिक की भाँति वर्णन होने से सहृदयों के हृदय में रस की निष्कलुष चर्वणा होती है॥ १५॥

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, अनौचित्यस्पर्शपरिहारेण—अनौचित्यस्य=अमर्यादितस्यार्थस्य यः स्पर्शः=संसर्गस्तस्य परिहारेण=वर्जनेन, केवलं सहृदयसंवादसौन्दर्यमेव=सहृदयहृदय चारुतामेव, स्वादुताम्=चर्वणीयताम्, आदधाति=उत्पादयति॥ १५॥

रसौचित्यं दर्शयितुमाह—

कुर्वन्सर्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः।
मधुमास इवाशोकं करोत्यङ्कुरितं मनः॥ १६॥

अर्थ :—अलङ्कार गत औचित्य-अनौचित्य का विवेचन करने के अनन्तर अब छठे रसगत औचित्य का विवेचन करने जा रहे हैं—

अन्वय :—सर्वाशये, व्याप्तिम्, कुर्वन्, औचित्यरुचिरः, रसः, मधुमासः, अशोकम्, इव, मनः, अङ्कुरितम्, करोति॥ १६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शब्दार्थ :—सर्वाशये=सभी सहृदयों के हृदय में, व्याप्तिम्=अपनी व्यापकता को, कुर्वन्=बनाता हुआ, औचित्यरुचिरः=औचित्य के कारण मनोहर, रसः=शृङ्गार आदि रस, मधुमासः=बसन्त ऋतु, अशोकम्=अशोक को, इव=जैसे विकसित करता है उसी तरह, मनः=मन को; अङ्कुरितम्=प्रफुल्ल, करोति=कर देता है ॥ १६ ॥

अर्थ :—सभी सहृदयों के हृदयमें अपनी व्यापकता को बनाता हुआ (अर्थात् व्याप्त होता हुआ), औचित्य के कारण मनोहर शृङ्गार आदि रस मन को उसी तरह विकसित कर देता है जैसे वसन्त ऋतु अशोक को प्रफुल्ल कर देता है ॥ १६ ॥

टीका—अलंकारगतौचित्यस्योदाहरणानि प्रत्युदाहरणानि च विधायाधुना क्रमप्राप्तं षष्ठं रसौचित्यं दर्शयितुमाह—कुर्वन्निति । सर्वाशये—सर्वेषाम्=निखिलानां सहृदयानाम् आशये=चेतसि, व्याप्तिम्=व्यापकताम्, कुर्वन्=विरचयन्, औचित्यरुचिरः—औचित्येन रुचिरः=मनोहारी, रसः=शृङ्गारादिः, मधुमासः=वसन्तर्तुः, अशोकमिव=वञ्जुलमिव, मनः=सभ्यानां चेतः, अङ्कुरितम्=प्रफुल्लम्, करोति=विदधाति ॥ १६ ॥

औचित्येन भ्राजिष्णुः शृङ्गारादिलक्षणो रसः सकलजनहृदयव्यापी वसन्त इवाशोकमङ्कुरितं मनः करोति ।

अर्थ :—औचित्य-कथन से सुशोभित, समस्त जनों के मानस को व्याप्त करनेवाला शृंगार, वीर आदि रस सहृदयों के चित्त को उसी तरह विकसित करता है जैसे वसन्त ऋतु की उपस्थिति होने पर अशोक खिल उठता है ॥

टीका—औचित्येनेति । औचित्येन=आनुरूप्येण, उचितकथनेनेति यावत्, भ्राजिष्णुः=रोचिष्णुः, शृङ्गारादिलक्षणो रसः=शृङ्गार-करुणादी रसः, सकलजनहृदयव्यापी—सकलानाम्=निखिलानाम् जनानाम्=सहृदयानामित्यर्थः हृदयेषु=चेतःसु व्याप्नोतीति तादृशः सन्, वसन्तः=ऋतुराजः, अशोकम्=वञ्जुलमिव, अङ्कुरितम्=प्रफुल्लम्, करोति=विदधाति । वसन्तयोगेन यथा अशोकाः फुल्लन्ति तथैव औचित्यपूरितेन रसेन सहृदयमनांसि विकसन्तीति भावः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा श्रीहर्षस्य—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ॥
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥

अर्थ :—क्षण भर में ही पर्याप्त कलियों से आच्छादित, विकसित होने वाली (अर्थात् विकसित होते हुए पुष्पों से युक्त), श्वेतकान्तिवाली, निरन्तर बहने वाली हवा के झकोरों से (हिलने के कारण) अपनी दुर्बलता को प्रकट करती हुई, मदन नामक वृक्ष से युक्त (अर्थात् मदन नामक वृक्ष से लिपटी हुई) उद्यान की उस लता को, (कामावेग के कारण—रोमाञ्चित, जम्भाई लेने वाली, सफेद शरीर की कान्तिवाली, निरन्तर उसासों से अपनी व्यथा को व्यक्त करती हुई, कामातुर) किसी अन्य स्त्री के समान, देखता हुआ मैं आज निश्चय ही महारानी के मुख को कोप के कारण किञ्चित् लाल वर्ण का कर दूँगा ॥

टीका—उद्दामोत्कलिकामिति । क्षणात्=सद्यः एव, दोहददानानन्तरमेवेत्यर्थः नायिकापक्षे—नायकदर्शनात्परं सद्य एव, उद्दामोत्कलिकाम्—उद्दामम्=बन्धरहितम् परिपूर्णम् इति यावत् ('उद्दामो बन्धरहिते' इति मेदिनी) यथा तथा उद्गताः=बहिर्गताः कलिकाः=कोरकाः यस्याः सा ('कलिका कोरकः' इत्यमरः) ताम्, प्रारब्धजृम्भाम्—प्रारब्धा=प्रक्रान्ता जृम्भा=विकासः पुष्पविकास इत्यर्थः, ('जृम्भाविकासजृम्भणयोस्त्रिषु' इति मेदिनी) यस्याः सा ताम्, विपाण्डुररुचम्—विशेषेण पाण्डुरा सर्वत्र पुष्पोद्गमात् धवला रुक्=कान्तिः यस्याः सा ताम्, अविरलैः=सन्ततैः, निरन्तरं प्रवहमानैरित्यर्थः श्वसनोद्गमैः—श्वसनानाम्=वायूनाम् ('श्वसनः स्पर्शनो वायुः' इत्यमरः) उद्गमैः=उत्पत्तिभिः, आत्मनः=स्वस्य, आयासम्=घूर्णनजन्यं खेदम्, आतन्वतीम्=प्रकटितं कुर्वतीम्ः समदनाम्—मदनेन=मदननामकेन वृक्षेण सहिता ताम्, लतात्वाद् वृक्षसाहित्यमुक्तम्, इमाम्=एताम्, उद्यानलताम्=आरामे जातां वल्लरीम्, लतायाः उद्यानविशेषणेन सागरिकाया राजकुलोत्पत्तिः सूचिता, (उद्दामोत्कलिकाम्—उद्दामा=प्रबला उत्कलिका=उकण्ठा ('उत्कण्ठोत्कलिके समे' इत्यमरः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रियप्राप्तिकामनेत्यर्थः, यद्वा उद्दामा उत्कलिकाः=रोमाञ्चाः, प्रियविलोकन-जन्यरोमाञ्चा इत्यर्थः, यस्याः सा ताम्, प्रारब्धजृम्भाम्—प्रारब्धा जृम्भा=जृम्भणम्, नायकावलोकननानन्तरं सञ्चारिभावजन्यं मुखव्यादानमित्यर्थः, विपाण्डुर-रुचम्—विपाण्डुरा=श्वेतवर्णा रुक्=कान्तिः यस्याः सा ताम्, कामसन्तापे शरीरच्छविः विपाण्डुरा भवत्येवेति, अविरतैः=सन्ततैः श्वसनोद्गमैः=उच्छ्वासाविर्भावैः, ('श्वसनं मारुते श्वासे' इति विश्वः) आत्मनः=स्वस्य आयासम्=पीडाम्, आतन्वतीम्=विस्तारयन्तीम्, समदनाम्—मदनेन=कामेन सहिता समदना ताम्), अन्याम्=वासवदत्तातिरिक्ताम्, नारीम्=सुन्दरीम्, सागरिकामिति ध्वनिः, इव=यथा, पश्यन्=अवलोकयन्, अहम्=उदयनः, अद्य=अस्मिन् दिने, ध्रुवम्=अवश्यम्, देव्याः=वासवदत्तायाः, मुखम्=आननम्, कोपविपाटलद्युति—कोपेन=अन्यतरुणीजनावलोकनजन्येन क्रोधेनेत्यर्थः विपाटला=ईषद्रक्तवर्णा द्युतिः=कान्तिः यस्य तादृशम्, करिष्यामि=विधास्यामि। प्रियस्यान्यस्त्रीजनावलोकने स्त्रीणां कोपेन मुखस्यारक्तीभवनं प्रसिद्धमेवेति। अत्र श्लेष उपमा चालङ्कारः॥

अत्रेर्ष्याविप्रलम्भरूपस्य शृङ्गाररसस्य वासवदत्तायामवेक्ष्यमाणस्य नवमालिकालताया ललितवनितातुल्यतया विरहावस्थारोपेण नितरामौचित्यरुचिरचमत्कारकारिणी दीप्तिरुपपादिता।

अर्थ :—रत्नावली नाटिका के उक्त पद्य में महारानी वासवदत्ता में दिखलाई पड़नेवाले ईर्ष्या विप्रलम्भ रूप शृंगार रस की, मनोहर कामिनी की समता के कारण नवीन मालिका नामक लता में विरह की दशा का आरोप करने से, अत्यधिक औचित्य के कारण मनोहर चमत्कार से पूर्ण कान्ति प्रतिपादित की गई है। (अर्थात् इस पद्य में औचित्य से चमकते हुए शृंगार रस का प्रतिपादन किया गया है)।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, वासवदत्तायाम्=उदयनमहिष्याम्, अवेक्ष्यमाणस्य=परिदृश्यमानस्य, अनुभूयमानस्येति यावत्, ईर्ष्याविप्रलम्भरूपस्य=ईर्ष्याजन्यवियोगात्मकस्य, शृङ्गाररसस्य=रसराजस्य, नवमालिकालतायाः=नवमालिकावल्लर्याः, ललितवनितातुल्यतया=मनोहरकामिनीसमतया, विरहा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्थारोपेण=विरहदशाध्याहारेण, नितराम्=अत्यन्तम्, औचित्यरुचिरचमत्कारकारिणी—औचित्येन=मर्यादापूर्णकथनेन यश्चमत्कारस्तं करोतीति तादृशी, दीप्तिः=कान्तिः, उपपादिता=प्रतिपादिता ॥

यथा वा कालिदासस्य—

बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

अर्थ :—रसगत औचित्य का दूसरा उदाहरण महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव नामक काव्य से दिया जा रहा है—

अविकसित होने के कारण द्वितीया के चन्द्रमा के कारण टेढ़े-टेढ़े तथा लाल-लाल पलाश के फूल उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे वसन्त रूप नायक के साथ अभी-अभी रमण कर के आई हुई वनस्थली रूप नायिका के कपोलों पर पड़े हुए नखक्षत हों ॥

टीका—रसगतौचित्यस्यापरमुदाहरणमुपन्यस्यति—बालेति । अविकासभावात्=विकासमप्राप्तत्वात्, बालेन्दुवत्-बालश्चासौ इन्दुर्बालेन्दुः=द्वितीयाचन्द्रस्तद्वत् वक्राणि=कुटिलानि तथा अतिलोहितानि=अत्यन्तं रक्तवर्णानि, पलाशानि=पलाशपुष्पाणि वसन्तेन=ऋतुराजेन, समागतानाम्=सम्भुक्तानाम्, वनस्थलीनाम्=वनमध्यभूमीनाम्, नायिकानामिति यावत्, सद्यः=तत्कालं कृतानि नखक्षतानि=रतिक्रीडायां कृतानि नखचिह्नानीव, बभुः=शुशुभिरे ।

अत्र पार्वत्यां परमेश्वरस्याभिलाषशृङ्गारे वक्ष्यमाणे प्रथममुद्दीपनविभावभूतस्य वसन्तस्य वर्णनायां कामुकाध्यारोपेण वनस्थलीललनानां कुटिललोहितपलाशकलिकाभिर्नवसंगमयोग्यनखक्षतान्युत्प्रेक्षितानि परमामौचित्यचारुतां प्रतिपादयन्ति ।

अर्थ :—आगे पार्वती में शिव का अभिलाषात्मक शृङ्गार वर्णित करना है। अतः पहले (शृङ्गार रस के) उद्दीपन विभाव रूप वसन्त ऋतु के वर्णन के सन्दर्भ में यह पद्य लिखा गया है । इसमें वसन्त में नायक का आरोप और वनस्थलियों में सुन्दरी नायिका का आरोप किया गया है । इसी तरह नवीन तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाल-लाल पलाश कलियों से नव संगम के अवसर पर नायक के द्वारा किये गये नखक्षत की सम्भावना की गई है। यह आरोप तथा सम्भावना आगे वर्णित शृङ्गार रस का पोषक होने के कारण अत्यन्त उचित है। इस औचित्यपूर्ण वर्णन के कारण काव्य की चारुता अत्यन्त निखर उठी है।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, पार्वत्याम्=उमायाम्; नायिकायामित्यर्थः, परमेश्वरस्य=शङ्करस्य, अभिलाषशृङ्गारे=औत्कण्ठ्यात्मके शृंगारे, वक्ष्यमाणे=अग्रे कथयिष्यमाणे सति, प्रथमम्=पूर्वम्, उद्दीपनविभावभूतस्य=शृङ्गारस्योद्दीपनकारणात्मकस्य, वसन्तस्य=वसन्तर्तोः, वर्णनायाम्=कथनप्रसङ्गे, कामुकाध्यारोपेण=उत्कण्ठितनायकाध्यारोपेण, वनस्थलीललनानाम्=वनस्थली सुन्दरीणाम्, कुटिललोहितपलाशकलिकाभिः—कुटिलाः=वक्राः लोहिताः=रक्तवर्णाः याः पलाशस्य कालिकाः=कुड्मलानि ताभिः, नवसङ्गमयोग्यनखक्षतानि—नवः=प्रथमभवो यः सङ्गमः=मिलनम् तत्र योग्यानि=उचितानि यानि नखक्षतानि=नखचिह्नानि उत्प्रेक्षितानि=सम्भावितानि तानि, परमौचित्यचारुताम्=अत्यन्तौचित्यपूर्णसौन्दर्यम्, प्रतिपादयन्ति=निर्वहन्ति, प्रकटयन्तीति यावत्॥

ननु यथास्यैव—

> **वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।**
> **प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥**

अर्थ :—रसगत अनौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कहते हैं—न कि जैसे इसी कवि का पद्य है—

रङ्ग रूप आदि में देखने में आकर्षक होने पर भी कर्णिकार निर्गन्ध होने के कारण चित्त को मार्मिक पीड़ा प्रदान करता है। सब तरह से गुणों की परिपूर्णता में सृष्टिकर्ता की प्रवृत्ति प्रायः प्रतिकूल ही हुआ करती है॥

टीका—रसगतमनौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—वर्णप्रकर्ष इति। वर्णप्रकर्षे—वर्णे=रंगे रूपे च प्रकर्षः=उत्कृष्टता तस्मिन्, सति=वर्तमानेऽपि, कर्णिकारम् =कर्णिकारकुसुमम्, निर्गन्धतया=गन्धाभावेन हेतुना,चेतः=हृदयम्, दुनोति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्म = खेदयति स्म। प्रायेण = बाहुल्येन, गुणानाम् = सौन्दर्यादीनाम्, सामग्रय-विधौ = परिपूर्णतायाम्, विश्वसृजः— विश्वम् = जगत् सृजतीति = रचयतीति तस्य, विधातुरित्यर्थः, प्रवृत्तिः = व्यवहारः, पराङ्मुखी = विमुखी भवतीति शेषः ॥

अत्र केवलकर्णिकारकुसुमवर्णनमात्रेण विधातृवाच्यतागर्भेणैव प्रस्तुतशृङ्गारानुपयोगिना तदुद्दीपनविभावोचितं न किञ्चिदभिहितम्।

अर्थः—इस पद्य में केवल कर्णिकार पुष्प का वर्णनमात्र किया गया है। यहाँ विधाता को दोष ही दिया गया है। अतः यह वर्णन प्रसङ्गप्राप्त शृङ्गार रस के अनुपयोगी है तथा उसके उद्दीपन विभाव के अनुकूल कुछ भी नहीं कहा गया है। यही कारण है कि यह पद्य रसानौचित्य का उदाहरण कहा जा सकता है ॥

टीका—अत्रेति। अत्र = अस्मिन् पद्ये, प्रस्तुतशृङ्गारानुपयोगिना—प्रस्तुतः = यः शृङ्गारः = शृङ्गाररसस्तस्यानुपयोगिना = अननुकूलेन, विधातृवाच्यता-गर्भेण—विधातुः = सृष्टिकर्तुर्वाच्यता = निन्दा गर्भे = अन्तराले यस्य तेन, केवल-कर्णिकारकुसुमवर्णनमात्रेण = केवलं कर्णिकारपुष्पकथनमात्रेण, तदुद्दीपनविभावो-चितम्—तस्य = शृङ्गाररसस्योद्दीपनविभावानुकूलम्, न किञ्चित् = न किमपि, अभिहितम् = कथितम् ॥

हास्यरसे यथा मम लावण्यवतीनाम्नि काव्ये—

सीधुस्पर्शभयान्न चुम्बसि मुखं किं नासिकां गूहसे,
रे रे श्रोत्रियतां तनोषि विषमां मन्दोऽसि वेश्यां विना।
इत्युक्त्वा मदघूर्णमाननयना वासन्तिका मालती
लीनस्यात्रिवसोः करोति वकुलस्येवासवासेचनम् ॥

अर्थः—शृङ्गार रस के औचित्य तथा अनौचित्य के उदाहरण को प्रदर्शित करने के अनन्तर हास्य रस के औचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हास्य रस के (औचित्य के) विषय में जैसा कि मेरे लावण्यवती नामक काव्य में (उदाहरण) है—

प्रसङ्गः—प्रस्तुत पद्य महाकवि क्षेमेन्द्र ही के द्वारा रचित "लावण्यवती" नामक काव्य से उद्धृत किया गया है। कवि ने इस पद्य में एक ऐसे ब्राह्मण के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत किया है जो अपनी प्राण-प्रिया पत्नी को प्रेम करने वाला है। पर इसके साथ ही वह वेश्या के आस्वाद का भी अनुभव करना चाहता है। संयोगवश वह एक दिन वेश्या के रमण में रम जाता है। उस समय वेश्या ने उसके साथ जो आचरण किया कवि ने उसी का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया है—

वेश्या—अरे ब्राह्मण, अपवित्र मदिरा के स्पर्श हो जाने के भय से तुम मेरे मुख को नहीं चूम रहे हो, मद्य के गन्ध के भय से क्यों अपनी नाक मूँद रहे हो ? अरे मूढ ! (क्यों व्यर्थ में) अनुचित श्रोत्रियता (वैदिक ब्राह्मणपन) का प्रदर्शन कर रहे हो। यह सब शिथिलता तो तुम में वेश्या के सहवास के विना ही तो आई है। ऐसा कह कर मद की विह्वलता के कारण चञ्चल नयन वाली वासन्तिका नामक वेश्या मालती नामक अपनी पत्नी के प्रेम में लीन अत्रिवसु नामक ब्राह्मण को अपने मुख में भर कर कुल्ला किये गये मद्य से उसी तरह सींच रही है, जैसे बकुल वृक्ष को कोई तरुणी मद्य के कुल्ला से सींचती है॥

टीका—शृङ्गाररसौचित्यानौचित्ययोरुदाहरणे प्रदर्श्याधुना हास्यरसौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—सीधुस्पर्शभयादिति। रे रे अत्रिवसो ? सीधुस्पर्शभयात्—सीधुः=मद्यं तस्य स्पर्शस्तस्माद्भयम्=भीतिस्तस्मात्, मुखम्=मदीयमाननम्, न चुम्बसि=नास्वादयसि, किम्=किमर्थम्, नासिकाम्=घ्राणेन्द्रियम्, गूहसे=आच्छादयसि ? मम श्वासेन सह प्रसृतं मद्यगन्ध वारणाय स्वकीयां नासिकां किमर्थमाच्छादयसीति भावः। इत्थं स्वाचरणप्रदर्शनेन विषमाम्=अनुचिताम्, श्रोत्रियताम्=स्वकीयं श्रोत्रियभावम्, तनोषि=विस्तारयसि, प्रकटयसीति भावः। वेश्यां विना=वारवनितां विना, मन्दः=शिथिलः, असि=वर्तसे। वाराङ्गना व्यवहारनिपुणा भवन्ति। तासां सहवासेन पुरुषेषु चातुर्यमागच्छति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वयि याऽनिपुणता दृश्यते सा तु वेश्यासंसर्गाभाव एव समायातेति भावः। इति=एतत्, उक्त्वा=कथयित्वा, मदघूर्णमाननयना—मदेन=मद्यावेगेन घूर्णमाने=चञ्चले नयने=नेत्रे यस्याः सा तादृशी वासन्तिका वेश्या, मालतीलीनस्य—मालत्याम्=मालतीनाम्न्यां स्वपत्न्याम् लीनस्य=परमासक्तस्य, अत्रिवसोः=अत्रिवसुनामकस्य कस्यचिद्ब्राह्मणस्य, वकुलस्येव=वकुलनाम्ना प्रसिद्धस्य वृक्षविशेषस्येव, आसवासेचनम्—आसवेन=मद्येन आसेचनम्=सम्यक् सिञ्चनम्, करोतीति=विदधातीति। तरुणीनां मुखमद्यासेचनेन वकुलो विकसतीति कविसमयप्रसिद्धिः। अनयैव रीत्या वेश्या अत्रिवसुमपि स्वमुखमद्यसिञ्चनेन सरसं विदधातीत्यभिप्रायः॥

टिप्पणी—वकुलस्येव—ऐसी प्रसिद्धि है कि तरुणियों के द्वारा मुख में मदिरा भरकर यदि वकुल पर कुल्ला किया जाय तो वह विकसित हो उठता है। इसी प्रकार यदि सुन्दरियाँ अशोक पर पैर से प्रहार करती हैं तो वह भी विकसित हो उठता है॥

अत्र श्रोत्रियस्यात्रिवसोरपवित्रसीधुस्पर्शशङ्कासङ्कोचनिलीनस्य शुष्कबकुलवृक्षस्येव सरसतापादनाय वेश्याविलासिन्या यदासवासेचनं तदङ्गभूतशृङ्गाररसाभासस्पर्शेन हास्यरसस्य वरासवस्येव सहकाररसवेधेन सचमत्कारमौचित्यमाचिनोति।

अर्थ :—यहाँ अपवित्र मदिरा के स्पर्श की आशङ्का के सङ्कोचवश सिकुड़े हुए अत्रिवसु नामक श्रोत्रिय ब्राह्मण को, सूखे हुए बकुल वृक्ष की तरह, सरस बनाने के लिए वेश्या सुन्दरी के द्वारा जो मदिरा से सींचने की बात वर्णित की गई है उससे, अङ्गभूत शृङ्गाररसाभास के स्पर्श से हास्य रस की चमत्कारिता उसी प्रकार बढ़ जाती है, जैसे आम के रस के मिश्रण से उत्तम कोटि की मदिरा का आस्वाद बढ़ जाता है, उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है।

टीका—अत्र श्रोत्रियस्येति। अत्र=अस्मिन् श्लोके, सीधुस्पर्शेत्यादिः—सीधुस्पर्शस्य=मदिरासंसर्गस्याशङ्का=भीतिस्तया यः सङ्कोचस्तेन निलीनस्य=सङ्कुचितस्येति यावत्, श्रोत्रियस्य=वेदपाठिनः, अत्रिवसोः=तन्नामकस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणस्य, शुष्कबकुलवृक्षस्तस्येव, सरसतापादनाय=रसमयत्वमानयनाय, वेश्य-विलासिन्या=वारविलासिन्या, यदासवासेचनम्, तत्=तदासेचनमित्यर्थः: यत्त-दोर्नित्यसम्बन्धात्, अङ्गभूतश्रृङ्गाररसाभासस्पर्शेन—अङ्गभूतः=गौडभावेनोप-स्थितो यः श्रृङ्गाररसाभासः, अत्र वेश्यागतत्वेन श्रृङ्गारस्याभासत्वं ज्ञेयम्, तस्य स्पर्शेन=सम्बन्धेन; हास्यरसस्य=प्रकृतपद्येऽङ्गित्वेन व्यञ्जनीयस्य हास-स्येति यावत्, सहकाररसवेधेन—आम्ररससम्बन्धेन, वरासवस्येव=श्रेष्ठमद्यस्येव सचमत्कारम्=चमत्कारपूर्णम्, औचित्यम् आचिनोति=प्रकटयतीत्यर्थः। श्रृङ्गाररससंसर्गेणात्र हास्यस्य तथैवास्वादजनकता सुरुचिपूर्णौचित्यसम्भरिता च जाता यथाऽऽम्ररसामिश्रणेन द्राक्षासवस्यास्वादजनकता गुणसम्पन्नता च जायत इत्यभिप्रायः। अत्र पद्ये श्रृङ्गाररसाभासोऽङ्गतया तथा हास्यरसः प्रधानतया व्यञ्जित इति हास्यरसः पुष्टिं भजन् रसौचित्यं पुष्णातीति पद्यमेतन् रसौचित्य-स्योदाहरणं भवतीति ज्ञेयम् ॥

यथा वा मम लावण्यवत्यामेव—

मार्गे केतकसूचिभिन्नचरणा सीत्कारिणी केरली,
रम्यं रम्यमहो पुनः कुरु विटेनेत्यर्थिता सस्मिता।
कान्ता दन्तचतुष्कबिम्बितशशिज्योत्स्नापटेन क्षणं
धूर्तालोकनलज्जितेव तनुते मन्ये मुखाच्छादनम् ॥

अर्थ—अथवा (हास्यरस के औचित्यपूर्ण उदाहरण के रूप में) मेरे लाव-ण्यवती नामक काव्य में ही यह दूसरा उदाहरण देखा जा सकता है—

केरल देश निवासिनी नायिका विट के साथ अभिसार के लिए जा रही थी। उसके पैर में केवड़े का काँटा गड़ गया। वह सीत्कार कर उठी। नायिका के सीत्कार को सुनकर विट ने—वाह! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जरा फिर ऐसा ही करना—यह कह कर पुनः वैसा ही सीत्कार करने का आग्रह किया। विट की इस प्रार्थना पर वह हँसने लगी। अतः उस सुन्दरी का मुख खुल गया। फलतः ओठों पर सामने के चमकीले दाँतों की चमक चन्द्रमा की चाँदनी की तरह झलकने लगी। मुखमण्डल पर प्रकाश का एक आवरण-सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फैल गया। ऐसी परिस्थिति में वह नायिका ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो धूर्त (विट) के देख लेने से लज्जित सी होकर आगे के चार दांतों के द्वारा प्रतिबिम्बित चाँदनीरूप वस्त्र से उसने अपने मुख को ढँक लिया हो॥

टीका—हास्यरसौचित्यस्यैवापरमुदाहरणमुपस्थापयति—मार्ग इति। मार्गे=अभिसरणपथे, केतकसूचिभिन्नचरणा—केतकस्य=लोके 'केवड़ा' इति प्रसिद्धस्य सूच्या=कण्टकेन भिन्नः=विद्धश्चरणः=पादो यस्या सैवंभूता, अतः सीत्कारकारिणी=सीदिति शब्दं कुर्वती, ततः विटेन=धूर्तेन, "अहो रम्यमहो रम्यम्=अरे सुन्दरमतिसुन्दरं, पुनः=मुहुः, एवम्=इत्थम्, कुरु=विधेहीतीत्थम्, अर्थिता=प्रार्थिता, केरली=केरलदेशोद्भवा, कान्ता=सुन्दरी नायिका, सस्मिता=सहासा, अत एव, दन्तचतुष्कविम्वतशशिज्योत्स्नापटेन—दन्तानाम् रदानाम् चतुष्कम्=चतुःसमुदायस्तेन बिम्बिता=चित्रिता या शशिनः=चन्द्रमसः ज्योत्स्ना=चन्द्रिका सैव पटम्=मुखाच्छादनवस्त्रम् तेन, धूर्तालोकनलज्जिता धूर्तस्य=विटस्य आलोकनेन=अवलोकनेन लज्जिता=व्रीडिता, इव=यथा, क्षणम्=मुहूर्तम्, मुखाच्छादनम्—मुखस्य=आननस्याच्छादनम्=पिधानम्, तनुते=विस्तारयतीति, मन्ये=उत्प्रेक्षयामि।

अत्रापि हास्यरसस्य कुटिलविटनर्मोक्तिवचनौचित्येनशृङ्गाररसाभासाधिवासितस्य सचमत्कारः परः परिपोषः समुन्मिषति।

अर्थ:—इस पद्य में भी धूर्तराज विट के मजाकपूर्ण कहे गये वचनों के औचित्य से शृङ्गाररसाभास से सुवासित हास्यरस का बेजोड़ परिपोष प्रस्फुटित होता है।

टीका—अत्रापीति। अत्रापि=अस्मिन्नुदाहरणेऽपीति, कुटिलविटनर्मोक्तिवचनौचित्येन—कुटिलः=अतीवधूर्तो यो विटस्तस्य नर्मोक्तौ=हास्यभाषणे कथितं यद्वचनम्=वचस्तस्यौचित्येन, शृङ्गाररसाभासाधिवासितस्य—शृङ्गाररस्य यो रसाभासः=पराङ्गनाविषयकतयात्र शृङ्गाररस्य रसाभासत्वं ज्ञेयम्, तेनाधिवासितस्य=अनुप्राणितस्य, परिपाकं नीयमानस्येति यावत्, हास्यरसस्य, चमत्कारः=चमत्कारपूर्णः, परः=कोऽप्यनिर्वचनीयः परिपोषः=परिपाकः, समुन्मिषति=समुद्भासते। अतः पद्यमिदं हास्यरसौचित्यस्योत्तममुदाहरणमिति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नतु यथा श्यामलकस्य—

चुम्बनसक्तः सोऽस्या दशनं च्युतमात्मनो वदनात् ।
जिह्वामूलप्राप्तं खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ॥

अर्थः—हास्य रस के अनौचित्य पूर्ण उदाहरण को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा कवि श्यामलक का यह पद्य है—

'कोई अधम नायक किसी वृद्धा नायिका को चूम रहा था। बूढ़ी का एक दांत उसी समय टूट कर उस नायक के गले में फँस गया जिसे खखार कर उसने अपने मुख से बाहर थूक दिया ॥

टीका—हास्यरसस्यानौचित्यपूर्णमुदाहरणं प्रदर्शयितुमाह—चुम्बनसक्त इति। चुम्बनसक्तः—चुम्बने=अधरास्वादने सक्तः=संलग्नः, सः=कश्चिदधमो नायकः, अस्याः=चुम्ब्यमानाया नायिकायाः, वृद्धाया इति यावत्, च्युतम्=गलितम्, त्रुटितमिति यावत्, जिह्वामूले=गलभागे, प्राप्तम्=गतम्, दशनम्=दन्तम्, खाडिति कृत्वा=निष्ठीवनकाले 'खो खो' इति शब्दं विधाय, आत्मनः=स्वस्य, वदनात्=मुखात्, निरष्ठीवत्=ष्ठीवनमकरोत् ॥

अत्र हास्यरसस्य बीभत्सरसाधिवासितस्य लशुनलिप्तस्येव कुसुमशेखरस्याविजुगुप्सितत्वादनीप्सितस्य परमानौचित्येन चमत्कारस्तिरोहितः। वृद्धापरिचुम्बने जिह्वामूलप्राप्तस्य च्युतदशनस्य कण्ठलोलिनः ष्ठीवनेन बीभत्सस्यैव प्राधान्यम्, नतु हास्यरसस्य।

अर्थः—जैसे लसुन के रस से लिप्त शिर पर धारण की जाने वाली पुष्पमाला दुर्गन्ध के कारण घृणित अतः अनभीष्ट हो जाती है उसी तरह इस पद्य में बीभत्स रस से मिश्रित हास्य रस का चमत्कार अत्यन्त अनौचित्य पूर्ण वर्णन से सर्वथा तिरस्कृत हो जाता है। फलतः ऐसे (बीभत्सरस से मिश्रित) हास्य रस का वर्णन सर्वथा अनुचित है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में हास्य रस का चमत्कार गौड हो जाता है। बुढिया के मुख-चुम्बन के अवसर पर टूट कर गिरे हुए दांत के नायक के गले में फँसने तथा उसे खखार कर थूकने के वर्णन से बीभत्स रस की ही प्रधानता हो जाती है न कि हास्य रस की ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अत्र हास्यरसस्येति । अत्र=अस्मिन् पद्ये, लशुनलिप्तस्य—लशुनेन=गृञ्जनेन ("लशुनं गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः" इत्यमरः) लिप्तस्य=सम्पृक्तस्य, कुसुमशेखरस्य=शिरोभूषणभूतस्य पुष्पमाल्यस्य ("शिखास्वापीड-शेखरौ" इत्यमरः), इव=यथा, अतिजुगुप्सितत्वात्=अतिवीभत्सत्वात्, अनीप्सितस्य=अनभिवाञ्छितस्य, बीभत्सरसाधिवासितस्य=बीभत्सरसमिश्रितस्य, हास्यरसस्य, चमत्कारः=विच्छित्तिः, परमानौचित्येन—परमम्=पराकाष्ठाङ्गतं यदनौचित्यम्=अनुचितभावस्तेन,तिरोहितः=तिरस्कृतः,आच्छादित इति यावत्। तिरस्कारे कारणमाह—वृद्धेति । वृद्धापरिचुम्बने—वृद्धायाः=जर्जराङ्गाया नायिकायाः परिचुम्बनम्=निर्दयमधरास्वादनं तस्मिन्, जिह्वामूलप्राप्तस्य—जिह्वायाः=रसनायाः, मूले=मूलभागे, गले इति यावत्, प्राप्तस्य=गतस्य, कण्ठ-लोलिनः गले परिवर्तमानस्य, च्युतदशनस्य=वृद्धाया मुखात् पतितस्य दन्तस्य, ष्ठीवनेन=थूत्कारेण, बीभत्सस्यैव=बीभत्सरसस्यैव, प्राधान्यम्=प्रबलत्वम्, न तु=न च, हास्यरसस्य प्रबलत्वमिति शेषः । अत एतादृशी रचनाऽनौचित्यमेवा-वहतीति भावः॥

करुणे यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

प्रत्यग्रोपनताभिमन्युनिधने हा वत्स हा पुत्रके-
त्यश्मद्रावि सुभद्रया प्रलपितं पार्थस्य यत्तत्पुरः ।
येनोद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलैः सेनातुरङ्गैरपि,
न्यञ्चत्पार्श्वगतैककर्णकुहरैर्निःस्पन्दमन्दं स्थितम् ॥

अर्थः—करुणरस (के औचित्य) का उदाहरण जैसा कि हमारे ग्रन्थ 'मुनिमतमीमांसा' में है—

सद्यः किये गये अभिमन्यु के वध के अवसर पर उसकी माँ सुभद्रा ने 'हाय बेटा ! हाय पुत्र !' कह कर अपने पति अर्जुन के समक्ष जो विलाप किया वह पत्थर को भी द्रवित कर देने वाला था । सुभद्रा के करुण-क्रन्दन को सुनकर सेना के घोड़ों की आँखों में भी आँसू छल-छला आये तथा वे भी घासों के ग्रास को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़कर एवं अपने कानों को नीचे की तरफ झुकाकर निश्चल और निस्तेज रूप से खड़े रहे ॥

टीका—करुणरसौचित्यं प्रदर्शयितुमुपक्रमते—प्रत्यग्रेति । प्रत्यग्रेत्यादि:—प्रत्यग्रम्=अभिनवम् उपनतम्=प्राप्तम् यदभिमन्यो:=सुभद्रातनयस्य निधनम्=मृत्युस्तस्मिन्, विषयसप्तमीयम्, सुभद्रया=अभिमन्युजनन्या, पार्थस्य=अर्जुनस्य, पुर:=अग्रे, "हा वत्स ! हा पुत्रक !" इति=इत्युक्त्वा, यत्प्रलपितम्=यद्रुदितम्, दृषदश्मद्रावि=शिलाद्रावकम्, आसीदिति शेष: । येन=कृतेन प्रलपितेनेत्यर्थ:, उद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलै:—उद्गतानि यानि वाष्पाणि=अश्रूणि येषान्तैस्तथा विमुक्तानि=परित्यक्तानि शष्पाणाम्=तृणानाम् कवलानि=ग्रासा: यैस्तादृशै:, न्यञ्चत्पार्श्वगतैककर्णकुहरै:—न्यञ्चन्ति=नम्रीभवन्ति पार्श्वगतानि चैककर्णकुहराणि=एकैकश्रवणविवराणि येषान्तै:, सेनातुरङ्गै:=सैन्याश्वै:, अपीत्यनेन का कथाऽन्येषां मानवानामित्यभिप्राय: प्रकटित:,निष्पन्दम्=निश्चलम् मन्दम्=निश्चेष्टञ्च यथा स्यात्तथा, स्थितम्=अवस्थितम् ॥

अत्र प्रत्यग्रोपनतप्रियतरतनयवियोगोपजनितशोकाख्यस्थायिभावोचितं—दृषतामपि हृदयद्रावणं सुभद्रया यत्प्रलपितं तदर्जुनचेतसि प्रतिफलितं न केवलमुद्दीप्ततामुपगतं यावत्तिरश्चां तुरङ्गमाणामप्यन्त: संक्रान्तमुद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलनि:स्पन्दमन्दस्थितादिभिरनुभावैरुदीर्णतरुणकरुणरसप्रतिपत्तिं किमप्यादधाति ।

अर्थ :—यहाँ प्रिय पुत्र के तत्काल प्राप्त वियोग से उत्पन्न शोकरूप स्थायी भाव के अनुरूप, पत्थर के भी हृदय को पिघला देने वाला जो विलाप सुभद्रा ने किया वह एकमात्र अर्जुन के ही चित्त में प्रतिफलित होकर करुण रस के विभाव के रूप में नहीं रह सका, अपितु पक्षियों घोड़ों आदि के हृदय में भी करुण रस का सञ्चारक सिद्ध हुआ । यह बात उन घोड़ों के आँसू बहाने, घास-ग्रास छोड़ने तथा निश्चल निष्पन्द रूप से खड़ा रहने आदि अनुभावों (कार्यों) से जानी जा सकती है । इस प्रकार सुभद्रा का करुण-क्रन्दन सद्य: समुत्पन्न करुण रस की अनिर्वचनीय प्रतीति का अनुभव करानेवाला सिद्ध हो रहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव यह है कि इस प्रकार के सुयोग्य कथन से करुण रस पूर्ण विकसित होता हुआ प्रतीत होता है। अतः यह करुण-रस का समुचित उदाहरण कहा जा सकता है ॥

टीका—अत्रेति। अत्र = अस्मिन् श्लोके, प्रत्यग्रेत्यादिः—प्रत्यग्रम् = तत्कालम्, उपनतः = प्राप्तः प्रियतरस्य = अतिशयप्रियस्य तनयस्य = सुतस्य यो वियोगः = मृत्युनोपनीतो विश्लेषस्तेन जनितो यः शोकाख्यस्थायिभावस्तदुचितम् = उपयुक्तम्, दृषतामपि = प्रस्तराणामपि, हृदयद्रावणम्—हृदयम् = चेतो द्रावयति = विदारयतीति तादृशम्, सुभद्रया = अर्जुनपत्न्या यत् = अवर्णनीयमित्यर्थः, प्रलपितम् = क्रन्दितम्, तत् = प्रलपितमित्यर्थः, न केवलमर्जुनचेतस्येव = पार्श्वहृदय एव प्रतिफलितं सत् = प्रतिबिम्बितं सत्, उद्दीप्ततामुपगतम् = आस्वाद्ययोग्यतां प्राप्तम्, अपितु तिरश्चाम् = पक्षिणाम्, तुरङ्गाणामपि = अश्वानामपि, अन्तःसङ्क्रान्तम् = चेतसि संलग्नम्, अत एव उद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलनिष्पन्दस्थितादिभिः = अश्रुप्रवाह-तृणकवलत्याग-निष्पन्दगत्यादिभिरनुभावैः, उदीर्णतरुणकरुणरसप्रतिपत्तिम्—उद्भूताभिनवकरुणरसप्रतीतिम्, किमपि = अनिर्वचनीयं यथा स्यात्तथा, आदधाति = जनयतीति ॥

ननु यथा परिमलस्य—

हा शृङ्गारतरङ्गिणीकुलगिरे हा राजचूडामणे,
हा सौजन्यसुधानिधान हहहा वैदग्ध्यदुग्धोदधे।
हा देवोज्जयिनीभुजङ्ग युवतिप्रत्यक्षकन्दर्प हा,
हा सद्बान्धव हा कलामृतकर ! क्वासि प्रतीक्षस्व नः ॥

अर्थ :—करुण रस के अनौचित्य को दिखलाने के लिये कहा जा रहा है—न कि जैसा कवि परिमल का यह उदाहरण है—

प्रसङ्ग—उज्जयिनी नरेश की मृत्यु पर उनके शोक-सन्तप्त परिवार वाले विलाप करते हुए कह रहे हैं—

हाय हे देव, आप शृङ्गार निर्झरिणी के उद्गम स्थान थे, राजाओं के मुकुटमणि थे, सुजनता रूपी अमृत के भाण्डागार थे, विदग्धता के क्षीरसागर थे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्जयिनी के भुजङ्ग थे (अर्थात् उज्जयिनी नगरी आप को अत्यन्त प्रिय थी), युवतियों के लिए साक्षात्कामदेव थे, सज्जनों के बन्धु थे, कलाओं के उज्जीवक थे। हाय! आप कहाँ चले गये। हम लोगों की ओर जरा दृष्टिपात तो कीजिये।

टीका—करुणरसानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—हेति श्लोके, शृङ्गारतरङ्गिणी-कुलगिरे—शृङ्गारः=आद्यो रसः एव तरङ्गिणी=निर्झरिणी तस्य कुलगिरिः=उद्गमपर्वतः, हिमालय-विन्ध्य-सह्याद्रिप्रमुखाः सप्तपर्वता नदीप्रभवाः कुलपर्वतत्वेन पुराणादिषु स्मृतिषु च परिगणितास्तदन्यतम इति भावः, तत्सम्बुद्धौ रूपम्, यथा नद्यः पर्वतान्निःसरन्ति तथैव त्वत्त एव शृङ्गारस्योत्पत्तिर्विकासश्चाभूदित्यभिप्रायः। राजचूडामणे—राज्ञाम्=भूपालानाम् चूडामणिः=मुकुटमणिरिवेति तत्सम्बुद्धौ, हा सौजन्यसुधानिधान—सौजन्यम्=सुजनता एव सुधा=अमृतं तस्य निधानम्=आकरस्तत्सम्बुद्धौ, हहहेति शोकोपचये, वैदग्ध्यदुग्धोदधे—वैदग्ध्यम्=चातुर्यमेव दुग्धम्=पयस्तस्योदधिः=क्षीरसागरस्तत्सम्बुद्धौ, हा देव=हा राजन्, उज्जयिनीभुजङ्ग—उज्जयिन्याः भुजङ्गः=विटः कामुक इति यावत् तत्सम्बुद्धौ, हा युवतिप्रत्यक्षकन्दर्प—युवतीनाम्=तरुणीनाम् प्रत्यक्षः=साक्षात् कन्दर्पः=कामस्तत्सम्बुद्धौ, हा सद्बान्धव—सताम्=सज्जनानाम् बान्धवः=सहायभूतस्तत्सम्बुद्धौ, हा कलामृतकर=कलैवामृतं तत्करोतीति तत्सम्बुद्धौ, क्वासि=क्व वर्तसे, नः=शोकज्वालावलीढानस्मान्, प्रतीक्षस्व=विलोकय ॥

अत्र 'हाहेति' हतमहीपतिविरहे तद्गुणामन्त्रणपदैर्वक्तृवक्त्रगत एव शोकः केवलमुपलक्ष्यते, नतु विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगेन शोकाख्यस्य स्थायिभावोचितं रसीकरणं किंचिन्निष्पन्नम्।

अर्थ :—यहाँ मृत राजा के विरह में 'हा हा' इस शब्द की अधिकता के साथ उनके (राजा के) गुणों के प्रकाशक शब्दों से शोक केवल वक्ता तक ही सीमित रूप से प्रतीत हो रहा है, क्योंकि विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव के मिश्रण से शोकरूप स्थायी भाव के अनुरूप कुछ भी रस-निष्पत्ति नहीं हो सकी है। अतः श्रोता या पाठक के हृदय में करुण रस का सञ्चार कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि यह करुणरसानौचित्य का उदाहरण है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अत्र हाहेतीति । अत्र हाहेति=हाहेति—शब्दोच्चारणेन, हतमहीपतिविरहे—हतः=मृतः, घातित इति भावः, महीपतिः=राजा तस्य विरहे=वियोगे, तद्गुणामन्त्रणपदैः—तस्य=राज्ञः गुणाः=दयादाक्षिण्यशौर्यादिगुणाः तेषामामन्त्रणपदैः=ख्यापकशब्दैः, वक्तृगतः=विलापकर्तृवर्तमानः, एवेति दार्ढ्ये, शोकः केवलमुपलक्ष्यते=ज्ञायते, न तु=न च, विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगेन=कार्यकारणसहकारिसम्मिश्रणेन, शोकाख्यस्य=शोकाभिधानस्य, स्थायिभावस्य=चित्तविकृतिरूपस्येत्यर्थः उचितम्=योग्यम्, रसीकरणम्=रसरूपनिष्पत्तिः, किञ्चित्=स्वल्पमपि, निष्पन्नम्=जातम् । समुचितैर्विभावादिभिरेव परिपोषं प्राप्त एव स्थायी रसरूपेणास्वाद्यते । अत्र तु शोकः परिपोषमेव नाप्नोतीति रसानभिव्यक्तिरिति भावः ॥

रौद्रे यथा भट्टनारायणस्य—

> यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां,
> यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।
> यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः,
> क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥

अर्थः—रौद्र रस के औचित्य को प्रदर्शित करने के लिए कह रहे हैं कि—रौद्र रस के औचित्य प्रदर्शन के लिए भट्टनारायण का यह पद्य देखा जा सकता है—

पाण्डवों की सेना के मध्य में जो-जो शस्त्र धारण करता है, पाञ्चाल कुल में जो-जो बालक अथवा अधिक अवस्था वाला (प्रौढ़) अथवा 'गर्भरूपी शय्या में वर्तमान है, जो-जो उस घृणित कर्म का द्रष्टा है, युद्ध में मेरे विचरण करने पर जो-जो भी विरोध कर्ता होगा, इस युद्ध में क्रोध से अन्धा मैं उसका-उसका तथा स्वयं संसार के विनाशक (यमराज) का भी विनाशक हूँ ॥

टीका—रौद्ररसौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—यो य इति । पाण्डवीनाम्—पाण्डवानाम्=पाण्डुपुत्राणां तत्पक्षपातिनाञ्च इमाः पाण्डव्यः तासाम्, पाण्डवसम्बन्धिनीनामित्यर्थः, चमूनाम्=सेनानाम्, मध्ये=अन्तराले, यः यः जनः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शस्त्रम्=आयुधम्, बिभर्ति=धारयति; पाञ्चालगोत्रे—पञ्चालानामिदं पाञ्चालं तथाभूते गोत्रे=कुले, यः यः, शिशुः=बालः, वा=अथवा, अधिकवयाः=अधिकं वयः यस्य स अधिकवयाः=प्रौढो वृद्धश्च, वा, गर्भशय्याम्—गर्भः=मातुर्गर्भाशयः एव शय्या=तल्पं ताम्, गतः=प्राप्तः, वर्तत इति शेषः; यः यः तत्कर्मसाक्षी—तस्य=तादृशस्य घृणितस्येत्यर्थः, कर्मणः=कृत्यस्य साक्षी=द्रष्टा, वर्तत इति क्रिया शेषः, रणे=युद्धे, मयि=अश्वत्थामनि, चरति=विचरति सति, यः यः, च=अपि, प्रतीपः=विपरीतकारी, भविष्यतीति शेषः, इह=अत्र रणे, क्रोधान्धः=अतिकुपितः, अहम्=अश्वत्माथा, तस्य तस्य (तथा=च, विरोध कर्तुः=युद्धे विपरीतस्य, स्वयम्, जगताम्=लोकानाम्, अन्तकस्य=विनाशकस्य यमस्य, अपि=च, अन्तकः=विनाशकः, अस्मीति शेषः । सर्वान् शत्रून् हनिष्यामीति मे दृढो निश्चय इति भावः । अत्र चतुर्थचरणे रूपकालङ्कारः । स्रग्धरा छन्दः ॥

अत्र क्रूरक्रोधस्थायिभावात्मकस्योन्निद्ररौद्ररसस्योचिता शिशुस्थविरगर्भगतविशसननिस्त्रिंशकर्माध्यवसायाधिरोहणसंवादिनी द्रोणवधविधुरामर्षविषविषमव्यथा कश्मलशिथिलमश्वत्थाम्नः स्थेमानं प्रतिज्ञापयति ।

अर्थ-इस पद्य में नृशंस कोपरूप स्थायीभाववाले प्रस्फुटित रौद्र रस के योग्य, शिशु, वृद्ध और गर्भस्थ शिशु की हत्या में खड्ग-चालनरूप कार्य में प्रसक्त, द्रोण के वध-जन्य क्रोध से उत्पन्न, विष की तरह तीखी व्यथा, अश्वत्थामा की मोहाच्छन्न आन्तरिक स्थिति का बोध कराती है । भाव यह है कि इस पद्य के द्वारा यहाँ जो भाव व्यक्त किया गया है, वह सहृदय दर्शकों या पाठकों के अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होकर एक अनिर्वचनीय दहशत की भावना उत्पन्न कर देता है । इस प्रकार रौद्र रस का बड़ा ही औचित्यपूर्ण सुन्दर समावेश यहाँ किया गया है ॥

टीका—अत्रेति । अत्र=अस्मिन् पद्ये, क्रूरक्रोधस्थायीभावात्मकस्य—क्रूरः=निर्दयो यः क्रोधः स एव स्थायीभावस्तदात्मकस्य=तत्स्वरूपस्य उन्निद्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रौद्ररसस्य—उन्निद्र:=प्रस्फुटितो यो रौद्ररसस्तस्य, उचिता=योग्या, शिशि-त्यादि:-शिशो:=बालस्य स्थविरस्य=वृद्धस्य गर्भगतस्य=मातुरुदरे स्थितस्य विशसने=हिंसने यन्निस्त्रिंशकर्म=करवालचालनरूपं कर्म तदेवाध्यवसाय:=उद्योगस्तत्राधिरोहणम्=आश्रयणं तस्य संवादिनी=योग्या, द्रोणेत्यादि:-द्रोणस्य=स्वपितुर्द्रोणाचार्यस्य वधेन=हननेन विधुरस्य=दुखितस्य अमर्ष:=कोप एव विषम्=गरलं तेन विषमा=तीव्रा व्यथा=पीडा, कश्मल-शिथिलम्—कश्मलेन=मोहेन शिथिलम् स्थेमानम्=स्थितिम्, प्रतिज्ञापयति=बोधयति ।

न तु यथा श्रीप्रवरसेनस्य—

दणुइन्दरुहिरलग्गे जस्स फुरन्ते णहप्पहाविछडे ।
गुप्पन्ती विवलाआ गलिअब्बथणंसुए, महासुरलच्छी ।।
[दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्य स्फुरति नखप्रभासमूहे ।
व्याकुलीभवन्ती विपलायिता गलितस्तनांशुका
महासुरलक्ष्मी: ।।
।। इति छाया ।।

अर्थ:—रौद्ररस के अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा श्रीप्रवरसेन का यह पद्य है :—

दानवराज (हिरण्यकशिपु) के रुधिर से लिप्त जिन (नृसिंह) की नख-कान्ति की चमक से महासुर हिरण्यकशिपु की राज्यलक्ष्मी व्याकुल होकर भाग गई । भागते समय उसे यह भी होश न था कि उसके वक्ष: स्थल पर से वस्त्र खिसक कर गिर गया है ।।

टीका—रौद्ररसानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—न तु यथेति । दनुजेन्द्ररुधिर-लग्ने—दनुजेन्द्र: = दानवाधिपतिस्तस्य रुधिरेण लग्ने=लिप्ते, यस्य—नृसिंहस्य, नखप्रभासमूहे=नखकान्तिसमूहे, स्फुरति=प्रकाशमाने सति, महासुरलक्ष्मी:—महासुरस्य=असुरराजस्य हिरण्यकशिपो: लक्ष्मी:=श्री:, व्याकुलीभवन्ती=भया-क्रान्ता, अत: गलितस्तनांशुका=दूरीभूतवक्ष:स्थलवस्त्रा सती, विपलायिता=पलाय्य दूरं गता ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र क्रोधव्यञ्जकपदविरहिततया "दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्य नृसिंहस्य स्फुरति नखप्रभासमूहे व्याकुलीभवन्ती विपलायिता गलितस्तनांशुका महासुरलक्ष्मी:" इति वर्णनया रुधिरलग्न इति बीभत्सरससंस्पर्शे व्याकुलीभवन्ती दैत्यश्री: पलायितेति भयानकरससङ्करेण प्रकृतोचितप्रधानभूतस्य रौद्ररसस्य क्वचिन्मुखमपि न दृश्यते।

अर्थ :—इस पद्य में क्रोध व्यञ्जक पद के न रहने के कारण एवं "रुधिरलग्ने" इस वर्णन से किञ्चित् स्पष्ट बीभत्स रस का "व्याकुलीभवन्ती दैत्यश्री: पलायिता" इस वर्णन से उपस्थित भयानक रस से सम्मिश्रण हो जाने के कारण प्रकृत प्रसंग के अनुरूप प्रधान भूत रौद्र रस का कहीं मुख तक भी नहीं दिखलाई पड़ता।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, क्रोधव्यञ्जकपदविरहिततया—क्रोधव्यञ्जकम्=कोपाभिव्यक्तिकरं यत् पदं तेन विरहिततया=वियुक्ततया, "दनुजरुधिरलग्ने" इति वर्णनया=इत्यादिवर्णनेन, "रुधिरलग्न" इत्यादिकथनात् बीभत्सरसस्पर्शे—बीभत्सरसस्य स्पर्शे=यथाकथञ्चित् किञ्चित् प्रस्फुटिते तथा "व्याकुलीभवन्ती दैत्यश्री: पलायिता" इति कथनात् प्रस्फुटितस्य भयानकरसस्य सङ्करेण=सम्मिलनेन, प्रकृतोचितप्रधानभूतस्य=प्रसङ्गानुरूपस्य अतः प्रधानस्य प्रमुखस्य, मुख्यतयाभिव्यञ्जनीयस्येत्यर्थ:, रौद्ररसस्य क्वचिन्मुखमपि न दृश्यते=क्वचित् किञ्चिदपि प्रतीतिर्न भवतीति भाव:।

वीरे यथा मम नीतिलतायाम्—

शौर्याराधितभर्गभार्गवमुनेः शस्त्रग्रहोन्मार्गिणः,
संक्षेपेण निवार्य संक्षयमयीं क्षत्रोचितां तीक्ष्णताम्।
आकर्णायतकृष्टचापकुटिलभ्रूभङ्गसंसर्गिणा,
येनान्यायनिषेधिना शममयी ब्राह्मी प्रदिष्टा स्थितिः॥

अर्थ :—वीर रस के औचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं कि—वीररस के औचित्य के उदाहरण में मेरी नीतिलता का यह श्लोक देखा जा सकता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शस्त्र-ग्रहण रूप कुमार्ग पर चलने वाले (अर्थात् शस्त्र-ग्रहण रूप अनुचित कार्य करने वाले), अपनी वीरता से भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट करने वाले भार्गव मुनि (परशुराम) की विनाशात्मक, क्षत्रियोचित तीक्ष्णता को, थोड़े ही प्रयास से निवारित करके, कान तक खींचे गये चाप रूप कुटिल भ्रूभङ्ग वाले, अन्याय के विरोधी जिस राम ने, शान्तिमय ब्राह्मणोचित मर्यादा सिखलाई थी—वही यह राम हैं।

टीका—वीररसस्यौचित्यमुदाहर्तुमाह—शौर्याराधितेत्यादिः । शस्त्र-ग्रहोन्मार्गिण:=शस्त्रग्रहणरूपकुमार्गप्रस्थितस्य, ब्राह्मणानां शास्त्रधारणं धर्मं शस्त्र-धारणन्त्वधर्म एव। अतः शस्त्रधारकस्य परशुरामस्य कुपथे प्रस्थानं सुस्पष्टमेव। शौर्याराधितभर्गभार्गवमुनेः—शौर्येण=शूरतया आराधित:=तोषितो भर्गः= शिवो येनैवंभूतो यो भार्गवमुनिस्तस्य, संक्षयमयीम्=विध्वंसात्मिकाम्, क्षत्रो-चिताम्=क्षत्रियधर्मानुकूलाम् तीक्ष्णताम्=कर्कशां तेजस्विताम्, संक्षेपेण=समा-सेन, निवार्य—निषेध्य, आकर्णेत्यादिः—आकर्णम्=कर्णपर्यन्तम् आयत:=दीर्घः कृष्टः=आकृष्टश्च यश्चाप:=धनुस्तद्रूपो यः कुटिल:=वक्रो यो भ्रूभङ्गः= भ्रूकुट्यास्त्रोटनं तत्संसर्गिणा=तत्सम्पर्कवता, तद्युक्तेनेत्यर्थः, अन्यायनिषेधिना= अनौचित्यनिषेधकेन, येन=येन रामेण, शममयी=शान्तिपूर्णा, ब्राह्मी= ब्राह्मणोचिता, स्थिति:=मर्यादा, प्रदिष्टा=उपदिष्टा। सोऽयं राम इति पूर्वेण सम्बन्धः।

अत्र "सोऽयं राम" इति रावणाग्रे शुकसारणाभ्यां दूरान्निर्दिश्य-मानस्य निःसंरम्भगम्भीरावष्टम्भसंभाव्यमानप्रभावोचितायां शस्त्रसं-ग्रहोन्मार्गगामिनो भार्गवस्य मुनेः स्वजातिसमुचितस्थित्युपदेशे सति प्रभविष्णुतायां चापरूपभङ्ग्या भ्रूभङ्गः प्रदर्शितः न तु स्वाभाविकः वीरस्य क्रोधे विकारासंभवात्। प्रसन्नमधुरधीरा हि वीरवृत्तिः, तदुचितमत्राभिहितम् भार्गवाभिभवेन च प्रधाननायकस्योत्कर्षः प्रतिपादितः।

अर्थ :—यह पद्य स्वयं क्षेमेन्द्र द्वारा रचित नीतिलता का है। इसमें शुक एवं सारण अपने स्वामी रावण से युद्धाङ्गण में आये हुए राम के विषय में कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे हैं—यह वही राम हैं जिन्होंने ... ऐसा किया, ऐसा किया। इस पद्य से राम की अद्भुत वीरता प्रदर्शित होती है, क्योंकि राम ने ब्राह्मण धर्म के प्रतिकूल आचरण करने वाले परशुराम को मर्यादा का उपदेश किया था। फलतः परशुराम शस्त्र त्याग कर तपस्वी बन गये। अपने अद्भुत तेज से परशुराम को धर्षित कर मर्यादा का उपदेश करने के समय राम ने पहले से कोई तैयारी न की थी, वे पूरे गंभीर ही बने रहे, उतावलापन उनमें न था। इससे राम का समुचित प्रभाव अभिव्यक्त होता है। चाप द्वारा भ्रू-मङ्ग की बात कह कर औचित्य की रक्षा बड़े ही सुचारु रूप से की गई है, क्योंकि भ्रू-मङ्ग एक क्रोधजन्य विकार है और वीरजनों के कोप विकारशून्य हुआ करते हैं। वीरों का व्यवहार प्रसन्न, मधुर एवं धीर हुआ करता है। इन सब के अनुकूल वर्णन यहाँ है। परशुराम के पराभव से प्रधान नायक राम का उत्कर्ष यहाँ प्रतिपादित हुआ है।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, 'सोऽयं राम' इति=इत्थं कथनेन, रावणाग्रे=रावणस्य समक्षम्, शुकसारणाभ्याम्=तत्तन्नामकाभ्यामनुचराभ्याम्, दूरात्=विप्रकृष्टात्, निर्दिश्यमानस्य=अङ्गुल्या निर्दिश्यमानस्य, रामस्य=रामचन्द्रस्य, निःसंरम्भेत्यादिः—निःसंरम्भः=वेगविहीनः ('संरम्भो वेगहर्षयोः' इत्यमरः) गम्भीरः=विकारादिरहितो गम्भीरश्च योऽवष्टम्भः=उद्योगस्तेन संभाव्यमानः=अनुमीयमानो यः प्रभावस्तदुचितायाम्=तदनुरूपायाम् भार्गवस्य =पवित्रभृगुकुलोद्भूतस्य ब्राह्मणस्य, तत्रापि मुनेः=मुनिवृत्तीकस्य, तथापि शस्त्रसंग्रहोन्मार्गगामिनः=शस्त्रग्रहणरूपकुमार्गप्रस्थितस्य, ब्राह्मणः सन्नपि भार्गवः शस्त्रं गृह्णातीति तस्य कुमार्गगामिता सुस्पष्टैव, परशुरामस्य, स्वजातिसमुचितस्थित्युपदेशे—स्वजातिः=ब्राह्मणजातिस्तस्याः समुचिता=योग्या या स्थितिः= मर्यादा तस्या उपदेशे=शिक्षणे सति, प्रभविष्णुतायाम्=प्रभावशक्तितायाम्, चापरूपभङ्ग्या=धनुःस्वरूपशैलीविशेषेण, भ्रूभङ्गः=भ्रुकुटिभङ्गता, प्रदर्शितः= प्रकटीकृतः, न तु स्वाभाविको भ्रूभङ्गः प्रदर्शितः, यतो वीरस्य=शूरस्य क्रोधे= कोपे, विकारासम्भवात्=विकृतेरनुत्पादात्, वीराणां शौर्यकाले कोपादिकृतविकारा नोत्पद्यन्त इति भावः। हि=यतः, वीरवृत्तिः=शूरव्यवहारः, प्रसन्न-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुरा—प्रसन्ना=प्रसादयुक्ता मधुरा=स्पृहणीया, भवतीतिशेषः। तदुचितम्=तदनुरूपम्, अत्र=अस्मिन् पद्ये, अभिहितम्=कथितम्। अत्र भार्गवाभिभवेन=पराजयेन, प्रधाननायकस्य=मुख्यनायकस्य रामस्य, उत्कर्षः=वैशिष्ट्यम् प्रतिपादितः=उक्तः॥

यथा वा राजशेखरस्य—

स्त्रीणां मध्ये सलीलं भ्रमितगुरुगदाघातनिर्नष्टसंज्ञः,
सद्यो वध्योऽभवस्त्वं पशुरिव विवशस्तेन राज्ञाऽर्जुनेन।
तस्य च्छेत्तापि योऽसौ सकलनृपरिपुर्जामदग्न्यो भुजानां,
जित्वोच्चैः सोऽपि येन द्विज इति न हतस्तापसस्त्वेष रामः॥

अर्थ :—यहाँ पर रस के औचित्य का दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते हुए क्षेमेन्द्र ने राजशेखर के इस पद्य का उल्लेख किया है—जिस राजा सहस्रार्जुन ने स्त्रियों के बीच अनायास ही अपनी विशाल गदा को घुमाकर प्रहार किया था और उस प्रहार से आप वेहोश हो गये थे। इतना ही नहीं, पशु की तरह बाँधकर आपको जिसने मरने के लिए विवश भी कर दिया था। उस सहस्रार्जुन की भुजाओं को काटने वाले, सकल राजाओं के विजेता जो यह भगवान् परशुराम हैं उनको भी भली प्रकार जीतकर जिसने ब्राह्मण होने के कारण जान से नहीं मारा, तापसवेशधारी वही यह पुरुषोत्तम राम हैं।

टीका—वीररसस्य द्वितीयमौचित्यपूर्णमुदाहरणमुपस्थापयितुमाह—स्त्रीणामिति। युद्धाङ्गणे रावणं प्रत्युक्तिरियम् तेन=जगतिविदितेन, राज्ञा=नृपतिना, अर्जुनेन=सहस्रबाहुना, स्त्रीणाम्=वनितानाम्, मध्ये=समवाये, स्त्रीणां समक्षं न कोऽपि स्वपराभवं सति श्वासे वाञ्छति, सर्व एव यथाशक्ति पुरुषार्थं कुर्वन्त्येव, सलीलम्=अनायासम्, भ्रमितगुरुगदाघातनिर्नष्टसंज्ञः—भ्रमिता=भ्रामिता या गुर्वी=विशाला गदा तस्या आघातः प्रहारस्तेन निः=नितराम् नष्टा=अपगता संज्ञा=चेतना यस्य तादृशस्त्वं पशुरिव विवशः=असक्तः सन्, सद्यः=कालक्षेपं विनैव, वध्यः=घातयितुं योग्यः, अभवः=सञ्जातः। तस्य=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तादृशस्य सहस्रार्जुनस्य, भुजानाम् = बाहूनाम्, छेत्ता = कर्तकः, सकलनृपरिपुः— सकलानाम् = समग्राणाम् नृपाणाम् = राज्ञाम् रिपुः = शत्रुः, यो ऽसौजगति विदित इत्यर्थः, जामदग्न्यः = परशुरामः, सोऽपि = परशुरामोऽपि, उच्चैः = सम्यक्, जित्वा = विजित्य, येन रामेण, द्विजः = ब्राह्मणः, इति कृत्वा = इति मत्वा, न हतः = न मारितः। तापसः = तपस्वी वेषधारी, सैष रामः = रामचन्द्रस्त्वां योद्धुमुपस्थितोऽस्तीति भावः ॥

अत्र रावणकार्तवीर्यजामदग्न्योत्कर्षोत्कर्षतरसोपानपरम्पराधिरोहणक्रमेण प्रधाननायकस्य प्रतापः परां कोटिमारोपितः।

अर्थ :—इस पद्य में रावण कार्तवीर्य और परशुराम के क्रमिक उत्कर्ष की, जो परम्परा प्रदर्शित की गई है उससे प्रधान नायक राम का प्रताप सर्वोच्च शिखर पर ले जाकर बैठा दिया गया है।

टीका—अत्रेति। अत्र = एतस्मिन् पद्ये, रावणकार्तवीर्यजामदग्न्योत्कर्षोत्कर्षतरसोपानपरम्पराधिरोहणक्रमेण = रावण-कार्तवीर्य—जामदग्न्य-रामाणामुत्कर्षस्य क्रमश उत्कृष्टोत्कृष्टतरोत्कृष्टतमेति क्रमेण, प्रधाननायकस्य = मुख्यनायकस्य रामस्येत्यर्थः, प्रतापः = प्रभावः, परां कोटिम् = चरमामुन्नतिश्रेणीमारोपितः = संस्थापितः ॥

ननु यथा भवभूतेः—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तताम्,
युद्धं स्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

अर्थ :—वीररस के अनौचित्यपूर्ण उदाहरण को दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—न कि जैसा भवभूति का यह पद्य है :—

लव और चन्द्रकेतु के विवाद के अवसर पर लव कह रहे हैं :—

वे (राम) वयोवृद्ध हैं, अतः उनके चरित की आलोचना नहीं करनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए। वे वैसे ही रहें। उनके विषय में क्या कहा जाय। सुन्द की पत्नी ताड़का का वध करने पर भी अप्रतिहत कीर्तिवाले वे महान् ही हैं। 'खर' के साथ युद्ध करने में यद्यपि मुख पीछे की ओर नहीं फेरा किन्तु तीन पदक्षेप तो किया ही था (अर्थात् खर के साथ युद्ध करने के समय वे तीन पग पीछे हटे थे), अथवा इन्द्र के पुत्र (बालि) के वध में जो नैपुण्य था उससे भी लोग परिचित हैं।

टीका—वृद्धा इति। ते=स राम इत्यर्थः, अत्रादरार्थे सोत्प्रासं बहुवचनम्, वृद्धाः=वयोवृद्धाः, अतः विचारणीयचरिताः—विचारणीयानि=पर्यालोचनीयानि चरितानि=चरित्राणि कार्याणीत्यर्थः येषां तथाविधाः, न भवन्तीति शेषः। अतः तिष्ठन्तु=आस्ताम्, अविचारणीयचरिता एव वर्तन्तामित्यर्थः। किं वर्ण्यते=तेषां विषये किं कथ्यते। न किमपीत्यर्थः। सुन्दस्त्रीमथनेऽपि=ताडकावधेऽपि,अकुण्ठयशसः–अकुण्ठम्=अप्रतिहतम् यशः=कीर्तिर्येषांते तादृशाः, ते लोके=जगति, महान्तो हि=महान्त एव, पूज्या एवेत्यर्थः। खरायोधने=खरेण सह युद्धे, यानि अपराङ्मुखान्यपि=अपरावृत्तवदनान्यपि, त्रीणि पदानि=पदक्षेपाः, आसन्=अभवन्, वा=अथवा, इन्द्रसूनोः=शक्रपुत्रस्य, वालिनः निधने=हनने, यत्=यादृशम्, कौशलम्=नैपुण्यम्, तत्रापि=तेषु सर्वेषु, जनः=लोकः, अभिज्ञः=ज्ञाता। सर्वं तत् लोके विदितमिति भावः॥

अत्राप्रधानस्य रामसूनोः कुमारलवस्य परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोर्वीररसोद्दीपनाय सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधाननायकगतस्य वीररसस्य ताडकादमनखररणापसरणान्यरणसंसक्तबालिव्यापादनादिजनविहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृत इत्यनुचितमेतत्।

अर्थः—इस पद्य में दूसरे के प्रताप को बर्दाश्त न कर सकने वाले अप्रधान पात्र, रामपुत्र, कुमार लव की वीरता को बढ़ावा देने के लिए सकल प्रबन्ध के प्राणस्वरूप, प्रधान नायक में वर्तमान वीर रस का, स्त्री (ताड़का) के वध, खर युद्ध में तीन पग पीछे हटना तथा सुग्रीव के साथ युद्धरत बालि की छल से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हत्या करना आदि लोक-लाञ्छन के प्रतिपादन से, कवि ने स्वयं अपने ही शब्दों के द्वारा विनाश कर दिया है। अतः यह अनुचित है॥

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् श्लोके, अप्रधानस्य=गौणपात्रस्य, परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोः—परस्य=शत्रोः प्रतापः=पराक्रमस्तस्योत्कर्षः=उन्नतिस्तत्रासहिष्णुः=असहनशीलस्तस्य, रामसूनोः=रामपुत्रस्य, कुमारलवस्य=कुमारस्य लवस्य, वीररसोद्दीपनाय=वीररसस्योत्कर्षाय, सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य—सकलः=समग्रो यः प्रबन्धः=काव्यं तस्य जीवितम्=जीवनम् तस्य सर्वभूतस्य=जीवनाधायकस्येत्यर्थः, प्रधाननायकगतस्य—प्रधानः=मुख्यश्चासौ नायकः=नेता तद्गतस्य=तत्स्थितस्य, वीररसस्य, ताडकादमनेत्यादि—ताडकादमनम्=ताडकावधः खरयुद्धापसरणम्—खरयुद्धात्, अपसरणम्=पश्चाद्गमनम् अन्येन=अपरेण सुग्रीवेण यो रणः=युद्धम् तत्र संसक्तः=संलग्नो यो वालिः=इन्द्रसूनुस्तस्य व्यापादनम्=हननम् इत्यादेर्जनविहितापवादस्य=लोकापवादस्य प्रतिपादनेन=कथनेन, कविना=उत्तररामचरितकर्त्रा भवभूतिना, स्ववचसा=स्वैरेव वचनैः, विनाशः कृत इत्यनुचितम्=अयुक्तमेतत्=इदमिति॥

भयानके यथा श्रीहर्षस्य—

> कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्षन्
> क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालः।
> दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः,
> प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः॥

अर्थ :—भयानक रस के औचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—भयानक रस के औचित्य के लिए जैसे श्रीहर्ष के ये पद्य हैं :—

गले में टूटने से बची हुई सुवर्णनिर्मित जञ्जीर को नीचे (जमीन पर) घसीटता हुआ, उछल-कूद के कारण चञ्चल चरणों में बजते हुए घुंघुरुओं के समूह वाला, दरवाजों को पारकर, (अन्तःपुर की) स्त्रियों को आतङ्कित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाला, हड़वड़ा कर अश्वरक्षकों के द्वारा पीछा किया जाता हुआ, घुड़साल से छूटकर भागा हुआ यह बन्दर राजमहल में प्रवेश कर रहा है ॥

टीका—प्लवङ्गमनुसरन्तो जना: उद्घोषयन्त आहु:—कण्ठ इति। कण्ठे= ग्रीवायाम्, कृत्तावशेषम्—कृत्तस्य=छिन्नस्य, दाम्न:, अवशेषम्=अवशिष्टम्, कनकमयम्=सुवर्णनिर्मितम्, स्वर्णविकृतिमित्यर्थ:, 'तस्य विकारे' इति मयट्, शृङ्खलादाम=बन्धनरज्जुम् ('शृङ्खला पुस्कटी काञ्च्यां लोहरज्जौ च बन्धने' इति हैम:), अध: = अधोभागे, भूमावित्यर्थ:, कर्षन्=आकर्षन्, हेलाचलचरण-रणत्किङ्किणीचक्रवाल:—हेलया=तज्जात्यानुरूपलीलया चलौ=चञ्चलौ यौ चरणौ=पादौ तयो: रणत्=शब्दायमानम्, किङ्किणीनाम्=स्वल्पघण्टि-कानाम् ('किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका' इत्यमर:) चक्रवालम्=मण्डलम् यस्य स:, द्वाराणि=तत्तत्कक्ष्यानिर्गमान् ('द्वारं निर्गमेऽभ्युपाये' इति हैम:) क्रान्त्वा= अतिक्रम्य, अङ्गनानाम्=सुन्दरीणाम्, 'विवक्षात: कारकाणि भवन्ति' इत्युक्त्वा सम्प्रदानत्वविवक्षायां सम्बन्धसामान्ये शेषषष्ठी, दत्तातङ्क:—दत्त: = समर्पित: आतङ्क: येन तथाविध:, सम्भ्रमात्=आतङ्कजन्यवेगात्, अश्वपालै:=वाजि-शालारक्षिभि:, अनुसृतसरणि:—अनुसृता=अनुगता सरणि:=पद्धति: यस्य स: मन्दुराया:=वाजिशालाया:, ('वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमर:), प्रभ्रष्ट:= बन्धनान्निर्गत:, अयम्=एष:, प्लवङ्ग:=वानर:, नृपते:=राज्ञ:, उदयनस्ये-त्यर्थ:, मन्दिरम्=भवनम्, प्रविशति ॥

अपि च—

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-
मन्त:कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामन: ।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्न: किरातै: कृतं,
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किन: ॥

अर्थ :—और भी—

मनुष्य में (वस्तुत: पुरुषों में) गणना न होने के कारण लज्जा को छोड़कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नपुंसक भाग कर छिप गये हैं। यह बौना भयवश कञ्चुकी के जामे में घुस रहा है। (अन्तःपुर के) प्रान्तभाग में रहने वाले किरातों के द्वारा अपने नाम के अनुरूप किया गया है (अर्थात् वे भी भाग कर अन्तःपुर के बाहर खड़े हुए हैं)। अपने को देख लिये जाने की आशंका करने वाले कुबड़े चुपके से झुककर ही जा रहे हैं॥

टीका—वानरभयात् अन्तःपुररक्षिणामाकुलतामाह—नष्टमिति। मनुष्यगणनाभावात्—मनुष्येषु = मानवेषु, वस्तुतः पुरुषेषु, या गणना = संख्या तस्या अभावात् = विरहात्, त्रपाम् = लज्जाम्, अपास्य = विहाय, वर्षवरैः = नपुंसकैः, नष्टम् = अन्तर्हितम्, पलाय्यान्यत्र गतमित्यर्थः। अयम् = एषः, वामनः = खर्वः, त्रासात् = भयवशात्, कञ्चुकिकञ्चुकस्य—कञ्चुकिनः = सौविदल्लस्य ('सौविदल्लाः कञ्चुकिनः' इत्यमरः) कञ्चुकस्य = चोलकस्य, अन्तः = अभ्यन्तरे, विशति = प्रविशति। पर्यन्ताश्रयिभिः—पर्यन्तम् = प्रान्तभूमिम्, अन्तःपुरप्रान्तभूमिमित्यर्थः, आश्रयन्ते = स्वकर्तव्यतया समाश्रयन्तीति तैः, अन्तःपुररक्षणार्थं किराताः सततमन्तःपुरस्य सीमाभूमौ पर्यटन्तः आसन्निति, किरातैः—किरम् = प्रान्तभूमिम् अतन्ति = गच्छन्तीति किराताः—म्लेच्छभेदास्तैः, निजस्य नाम्नः = स्वकीयस्याभिधानस्य, किरातेति संज्ञाया इत्यर्थः, सदृशम् = अनुरूपम्, कृतम् = विहितम्। आत्मेक्षणाशङ्किनः—आत्मनः = स्वस्य यत् वानरेण ईक्षणम् = अवलोकनम् तदाशङ्किनः = तद्विचाराक्रान्ताः, कुब्जाः = कुब्जदेहाः, शनकैः = तूष्णीम्, नीचतया = अनुच्चतया, एवं, यान्ति = व्रजन्ति, अपगच्छन्तीत्यर्थः॥

अत्राङ्गनानां निशितदशननखशिखोल्लेखातङ्कदानेन प्रचुरतरवानराभिसरणभयसंभ्रान्तान्तःपुरिकवृद्धवामनकिरातकुब्जादीनां पुरुषगणनाविहीनतयां धैर्यविरहकातराणामुचितचेष्टानुभाववर्णनया भयानकरससंवादिरुचिरौचित्यमाचकास्ति।

अर्थ—इन पदों में स्त्रियों को आतङ्कित करने के लिए वानर के तीखे दाँत और नख के नुकीले अग्रभाग के आघात के आतङ्क का उल्लेख किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वानर के तीव्र आक्रमण से धैर्य न होने के कारण भयभीत होकर इधर भागने वाले तथा अपने को पुरुषों की श्रेणी में न समझने वाले बूढ़ों, बौनों, कुबड़ों और किरातों के चेष्टा स्वरूप (भागना, छिपना तथा झुक कर चलना आदि) अनुभावों का जो वर्णन किया गया है वह भयानक रस के अनुरूप अत्यन्त मनोहर औचित्य को प्रकट करता है। अतः यहाँ भयानक रस के औचित्य का सुन्दर समावेश किया गया है।

टीका—अत्राङ्गनानामिति। अत्र = अस्मिन् पद्यद्वये, अङ्गनानाम्=अन्तःपुरसुन्दरीणाम्,निशितेत्यादिः–निशितानाम् = तीक्ष्णानाम् दशनानाम्=दन्तानाम् नखानाञ्च शिखाः = अग्रभागास्ताभिर्यं उल्लेखस्तस्मादातङ्कम्=भीतिस्तस्य दानेन=प्रदानेन, प्रचुरतरेत्यादिः—प्रचुररम्=तीव्रमित्यर्थो यत् वानरस्याभिसरणम्=वेगेनानुवर्तनम् तस्माद्भयम्=भीतिस्तेन संभ्रान्तानाम्=इतस्ततः पलायितानाम् अन्तःपुरिकाणाम्=अन्तःपुरस्थानाम्, वृद्धवामनकिरातकुब्जादीनाम्, पुरुषगणनाविहीनतया—पुरुषेषु या गणना तद्विहीनतया = तद्विरहतया, धैर्यविरहकातराणाम्=धैर्याभावाद्भयभीतानाम्, अन्तःपुरिकादीनां विशेषणमिदम्, उचिता=योग्या या चेष्टा=उद्योगस्तद्रूपो योऽनुभावस्तस्य वर्णनया=कथनेन, भयानकरससंवादिरुचिरौचित्यम्=भयानकरसपरिपोषमनोहरौचित्यम्, आचकास्ति=सम्यक् प्रकाशते।

नतु यथा राजपुत्रमुक्तापीडस्य—

नीवारप्रसराग्रमुष्टिकवलैर्यो वर्धितः शैशवे,
पीतं येन सरोजपत्रपुटके होमावशेषं पयः।
तं दृष्ट्वा मदमन्थरालिवलयव्यालोलगल्लं गजं,
सानन्दं सभयञ्च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः।

अर्थ—भयानकरस के अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—

न कि जैसा राजपुत्र मुक्तापीड का निम्न श्लोक है:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपस्वी ने नीवार (तिन्नी धान) के कोमल अग्र भाग की एक-एक मुट्ठी ग्रास खिलाकर जिस गज-शावक को बड़ा किया था तथा कमल-लता के पत्र (पुरइन) के दोने में भर-भर कर जिसे हवन-कार्य से वचे हुए जल को पिलाया था, आज उसे ही मद के कारण मन्थर चाल से मँडराते हुए भ्रमर-समूह के कारण चञ्चल गण्डस्थल वाले गज को वह आनन्द एवं भय के साथ दूर से ही देख रहा है।

टीका—भयानक रसानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—नीवारेति। यः=गजः, शैशवे=बाल्यावस्थायाम्, नीवारप्रसराग्रमुष्टिकवलैः—निवाराणाम्=मुनिधान्यानाम् प्रसरस्य=समूहस्य ये अग्राः=अग्रभागास्तेषां या मुष्टयः तासां कवलैः=ग्रासैः, वर्धितः=वृद्धि प्रापितः तथा येन=येन गजशावकेन, होमावशिष्टम्=हवनकार्यावशिष्टम्, पयः=सलिलम्, सरोजपत्रपुटके=कमललतापर्णनिर्मिते, पुटके, पीतम्=आचान्तम्; तमेव गजं, मदमन्थरेत्यादिः—मदेन=दानवारिणा, मन्थराः=मन्दगतयो ये अलयः=भ्रमरास्तेषां वलयेन=मण्डलेन व्यालोलम्=चञ्चलम् गल्लम्=गण्डम् यस्यतादृशम्, गजम् हस्तिनम्, दृष्ट्वा =अवलोक्य, भयवशाद् दूरे स्थितः=वर्तमानः तापसः=तपस्वी, सानन्दम् =साह्लादम्, सभयञ्च = भयपूर्वकञ्च, मुहुः = बारम्बारम्, पश्यति =अवलोकयति ॥

अत्र गजस्यांघातकविकृतचेष्टानुवर्णनाविरहिततया स्थायिभावस्य भयानुभाववर्जितस्य केवलं नाममात्रोदीरणेन च भयानकरसोचितसंभ्रमाभावादुपचितमौचित्यं न किञ्चिदुपलभ्यते।

अर्थ—इस पद्य में गज के आघातक तथा विकृत चेष्टाओं का अभाव होने कारण भय का केवल नामतः कथन होने पर भी (भय के) उपयुक्त अनुभाव आदि का अभाव होनें से वह (भय) रसरूपता को प्राप्त नहीं हो सका है। अतः यह भयानक रस के अनौचित्य का उदाहरण कहा जा सकता है।

टीका—अत्र गजस्येति। अत्र एतस्मिन् पद्ये, गजस्य=हस्तिनः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आघातकविकृतचेष्टानुवर्णनाविरहिततया—आघातकविकृतचेष्टानाम् = व्याघातकमनोविकारग्रस्तव्यापाराणाम् वर्णनायाः = कथनस्य विरहिततया = अभावेन, भयानुभाववर्जितस्य = भयजन्यकार्यरहितस्य, स्थायिभावस्य भयरूपस्य, केवलं नाममात्रोदीरणेन = केवलं नामतः कथनेन, भयानकरसोचितसम्भ्रमाभावात् = भयानकरसानुकूलसंवेगविरहात्, न किञ्चिदौचित्यमुपचितम् = वृद्धिगतम् प्रवृद्धमिति यावत्, उपलभ्यते = प्राप्यते ॥

बीभत्से यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

सर्वापायचयाश्रयस्य नियतं कुत्सानिकायस्य किं,
कायस्यास्य विभूषणैः सुवसनैरानन्दनैश्चन्दनैः।
अन्तर्यस्य शकृद्यकृत्क्रिमिकुलक्लोमान्त्रमालाकुले,
क्लेदिन्यन्तदिने प्रयान्ति विमुखाः कौलेयकाका अपि।

अर्थ—बीभत्स रस के औचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं कि इसका उचित उदाहरण मेरी 'मुनिमतमीमांसा' में है—

समस्त पापों के आश्रय, निन्दा के निधान, अस्थायी इस शरीर को आभूषणों, बहुमूल्य वस्त्रों एवं आनन्ददायक चन्दन आदि लेपों से अलङ्कृत करने का क्या प्रयोजन ? क्योंकि मृत्यु के अनन्तर मल, मूत्र, यकृत्, क्लोम, कीट और अँतड़ियों के समूह से क्लिन्न इस मनुष्यशरीर को निर्घृण्यभोजी कुत्ते एवं कौवे भी तो नहीं पूछते हैं ॥

टीका—बीभत्सरसौचित्यमुदाहर्तुमाह—सर्वापायेति। सर्वापायचयाश्रयस्य—सर्वेषाम् अपायानाम् = विनाशानाम् चयस्य = समूहस्य आश्रयः = निधानम्, नियतम् = निश्चितम्, कुत्सानिकायस्य—कुत्सायाः = निन्दायाः निकायस्य = समूहस्य, घृणास्पदस्येत्यर्थः, अस्य = एतादृशस्य नश्वरस्य दुष्टस्य च, शरीरस्य = कायस्य, विभूषणैः = अलङ्कारैः, सुवसनैः = बहुमूल्यैर्वस्त्रैः, आनन्दनैः = आनन्ददायकैः, चन्दनैः = मलयादिलेपनैः, किम् = किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः। शरीरस्य कृत एतत् सर्वं निरर्थकमिति यावत्। शकृत्=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलस्य यकृतः=पाचनयन्त्रस्य कृमिकुलस्य—श्वेतरक्तकीटाणुसमूहस्य क्लोम्नः=उदकवाहिस्रोतोमूलस्य आन्त्रयोः—स्वल्पसूक्ष्मवृहदन्त्रयोः मालया=स्रजा आकुले=व्याप्ते, अत। क्लेदिनि=क्लिन्ने, यस्यैतस्य कायस्येत्यर्थः, विषये, विमुखाः=उदासीनाः, अन्तदिने=मृत्युकाले, कौलेयकाकाः=कुक्कुरकाकादयः, विमुखाः=पराङ्मुखाः सन्तः, प्रयान्ति=अपगच्छति ।

अत्र वैराग्यवासनाच्छुरितबीभत्सरसस्य जुगुप्सास्थायिभावोचितकायगतकुत्सिततरान्त्रतन्त्रादिसमुदीरणेन परा परिपुष्टिर्निःसारशरीराभिमानवैरस्यजननी प्रतिपादिता ।

अर्थ :—इस पद्य में जुगुप्सारूप स्थायी भाव के अनुरूप शरीर के घृणित आँत आदि के वर्णन से वैराग्य-वासना से सहकृत बीभत्सरस का, निःसार शरीर के अभिमान में वैराग्य उत्पन्न करने वाला, अच्छा परिपोष चित्रित किया गया है। अत। बीभत्सरस के औचित्य का यह एक बड़ा ही उचित उदाहरण बन पड़ा है।

टीका—अत्रेति। अत्र—एतस्मिन् पद्ये, वैराग्यवासनाच्छुरितवीभत्सरसस्य—वैराग्यवासनया=वितृष्णाभावनया छुरितस्य=सहकृतस्य वीभत्सरसस्य, जुगुप्सेत्यादि।=जुगुप्सारूपो य। स्थायिभावस्तस्योचितम्=योग्यं कायगतम्=शरीरस्थम् कुत्सितम्=निन्दितं घृणितमिति यावत्, यदान्त्रतन्त्रम्=आन्त्रसमवायस्तस्य समुदीरणम्—कथं तेन, निःसारशरीराभिमानवैरस्यजननी—निःसारम्=तत्त्वरहितं यत् शरीराभिमानम्=शरीरसम्बन्ध्यहङ्कारः तत्र वैरस्यस्य=वैरागस्य नीरसताया इति यावत् जननी=उत्पादयित्री, परा=उत्कृष्टा, परिपुष्टिः=परिपोषः, प्रतिपादिता=जनितेति यावत् ॥

नतु यथा चन्दकस्य—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलः,
क्षुधाक्षामो रूक्षः पिठरककपालार्दितगलः ।
व्रणैः पूतिक्लिन्नैः कृमिपरिवृतैरावृततनुः,
शुनीमन्वेति श्वा तमपि मदयत्येष मदनः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—बीभत्स रस के अनौचित्य का उदाहरण प्रदर्शित करने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा चन्दनक का निम्न पद्य है—

अत्यन्त क्षीण; काना, लँगड़ा, बहरा, पूछकट्टा, भूख से पीड़ित; रूक्ष, शिर एवं गले के रोग से ग्रस्त, सड़े तथा रिसते हुए, कीड़ों से भरे हुए घावों से व्याप्त शरीरवाला यह कुत्ता कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ रहा है और कामदेव इसे भी कामान्ध बना रहा है। (अतः धन्य है काम की महिमा) ॥

टीका—बीभत्सरसानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—कृशः काण इति। कृशः = दुर्बलः, काणः = अक्षिविकलः, खञ्जः = पादविकलः, श्रवणरहितः = कर्णशक्तिविहीनः, पुच्छेन = लाङ्गूलेन, विकलः = हीनः, क्षुधाक्षामः—क्षुधया = बुभुक्षया क्षामः = कृशः, शक्तिहीन इति यावत्, रूक्षः = स्निग्धताविरहितः, पिठरककपालार्दितगलः = पीड़ितशिरःकण्ठः, पूतिक्लिन्नैः = दुर्गन्धियुक्तस्रावसहितैः, कृमिव्याप्तैः, व्रणैः = स्फुटितस्फोटकादिभिः, आवृततनुः = व्याप्तशरीरः, अपि = च, श्वा = कुक्कुरः, शुनीम् = कुक्कुरीम्, अन्वेति = अनुगच्छति, तमपि = तादृशं संभोगसामर्थ्यादिरहितमपि श्वानम्, एषः = अयम्, मदनः = कामः, मदयति = कामाधीनं करोति, कामान्धं विदधातीत्यर्थः ॥

अत्राशुचिचर्वणरुचेरुपचितविचिकित्सकुत्सानिकायस्य स्वभावजुगुप्सितयोनेः शुनकस्य किमेतैर्बीभत्सविशेषणैरतिशयनिर्बन्धानुबद्धैरधिकमुद्भासितम्। एतैरेव पुरुषगतैर्जुगुप्सापरं गौरवमावहति।

अर्थः—इस पद्य में अपवित्र भक्षण करनेवाले अति समृद्ध कुत्सा के आश्रय कुत्ते में अत्यन्त आग्रहपूर्वक जोड़े गये इन बीभत्स विशेषणों से क्या विशेष भाव उद्भासित किये गये हैं। अर्थात् कुछ भी तो नहीं, क्योंकि घृणितों की घृणायोग्यता तो स्वाभाविक ही होती है। यदि ये सभी विशेषण किसी पुरुष के साथ जोड़े गये होते तो बीभत्सरसपोषक होने के कारण अत्यन्त स्पृहणीय माने जाते। अतः यह पद्य तथा ये सभी विशेषण बीभत्सरस के अनौचित्य को ही सूचित करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अत्राशुचीति। अत्रास्मिन् पद्ये, अशुचिचर्वणरुचेः—अशुचेः= अपवित्रस्य चर्वणम्=भक्षणम् तत्र रुचिः=प्रेम यस्य तादृशस्य, उपचितविचिकित्सकुत्सानिकायस्य—उपचिता=वृद्धिङ्गता विचिकित्सा=आश्चर्यं यस्यां सा तादृशी कुत्सा=निन्दा तस्याः निकायस्य=निधानस्य, स्वभावजुगुप्सितयोनेः—स्वभावेन=जात्या जुगुप्सिता=घृणास्पदा योनिः=जन्म यस्य तादृशस्य, शुनकस्य=कुक्कुरस्य, अतिशयनिर्बन्धानुबद्धैः—अतिशयो यो निर्बन्धः=आग्रहस्तेनानुबद्धाः=विरचितास्तैः, एतैः=श्लोकनिबद्धैः, बीभत्सविशेषणैः=बीभत्ससूचकैरवच्छेदकैः, किमुद्भासितम्=किं प्रकटितम्। पुरुषगतैः=मानवविशेषणोपनिबद्धैः, एतैरेव, यद्येतानि पुरुषविशेषणभूतानि स्युस्तदा जुगुप्सा परमुत्कृष्टम् =विशिष्टम्, गौरवम्=वैशिष्ट्यम्, आवहति=धारयति॥

अद्भुते यथा चन्दकस्य—

कृष्णेनाम्ब ? गतेन रन्तुमधुना मृद् भक्षिता स्वेच्छया,
सत्यं कृष्ण ? क एवमाह मुसली, मिथ्याम्ब ? पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने दृष्ट्वा समस्तं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः॥

अर्थ :—अद्भुत रस के औचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—अद्भुत रस के औचित्य के विषय में जैसे चन्दनक का यह पद्य है :—

बलराम—माँ, खेलने गये हुए कृष्ण ने इच्छापूर्वक आज मिट्टी खाई है।
यशोदा—सच, कृष्ण, तुमने सचमुच मिट्टी खाई है ?
कृष्ण—किसने यह कहा कि कृष्ण ने मिट्टी खाई है ?
यशोदा—बलराम ने कहा है।
कृष्ण—माँ सब झूठा है। मेरे मुँह को तो देखो।
यशोदा—ठीक है, मुख फैलाओ।

ऐसा कहने पर कृष्ण ने जब अपना मुँह फैलाया तब उसमें समस्त विश्व को देख कर जिसकी माँ यशोदा आश्चर्य चकित हो गई वह कृष्ण आपकी, हमारी और श्रोताजनों की रक्षा करे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अद्भुतरसौचित्यमुदाहर्तुमाह—कृष्णेनेति । कृष्णबाल्यलीलाया वर्णनमिदम् हे अम्ब हे मातः, रन्तुम् = क्रीडितुम्, गतेन = यातेन, कृष्णेन, अधुना = सम्प्रत्येव, स्वेच्छया = यथेच्छम् निरोधाभावादिति भावः, मृद = मृत्तिका, भक्षिता = खादितेति बलरामे कथयति माता कृष्णं पृच्छति—हे कृष्ण, सत्यं त्वया मृद्भक्षिताऽस्ति, कृष्णः—मातः, एवम् = इत्थम्, क आह = कः कथितवान्, यशोदा—मुसली = बलरामः कथितवान्, कृष्णः—मातः, कथनमिदं मिथ्या = असत्यमेव, आननम् = मुखम्, पश्य = अवलोकय; मात्रया व्यादेहि = विकशय, इति = इत्थं कथितः, अथ = अनन्तरम्, विकासिते = प्रसारिते सति, वदने = मुखे, समस्तम् = समग्रम्, जगत् = संसारम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, माता = यशोदा विस्मयपदम् = आश्चर्यं प्राप, सः = एतादृशः, केशवः = कृष्णः, वः = सर्वान्, पायात् = अव्यात् ॥

अत्र पाण्डुराङ्गकरसाक्षिलक्षितमृद्भक्षणाक्षेपोद्यतजननीभयचकितस्यापह्नवकारिणः शिशोर्विकासितास्यस्यान्तः समस्तजगद्दर्शनेन मातुश्च तत्प्रभावानभिज्ञतया वात्सल्यविह्वलाया विस्मयगमनेनात्युचितोऽयमद्भुतातिशयः ।

अर्थः—इस पद्य में धूलिधूसरित अङ्गों तथा हाथ आदि के प्रमाण से प्रतीत होने वाले मिट्टी के खाने के आक्षेप से जननी यशोदा के भय से चकित अतः मिट्टी खाने की बात को छिपाने वाले, बच्चे के फैलाये गये मुख के भीतर समस्त जगत् के दर्शन से, और उस बालक के प्रभाव से अनभिज्ञ, वात्सल्यवश विह्वल जननी के विस्मय के औचित्य से सहृदयों के हृदय में अद्भुतरस का साम्राज्य सा स्थापित हो जाता है ॥

टीका—अत्रेति । अत्र = एतस्मिन् पद्ये, पाण्डुरेत्यादि—पाण्डुरैः = धूसरैः अङ्गैः = अवयवैः करैः = हस्तैश्च तद्रूपैरित्यर्थः, साक्षिभिः = प्रमाणैः लक्षितस्य = प्रतीतस्य मृदः = मृत्तिकायाः भक्षणस्य = चर्वणस्य आक्षेपे = भर्त्सने उद्यता = तत्परा या जननी = माता तस्या भयेन = आतङ्केन चकितस्य = भीतस्य, अतोऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पह्लवकारिण। = अपलापप्रवृत्तस्य, शिशोः = बालकस्य, विकासितस्य = विस्फारितस्य वाननस्य = मुखस्य अन्तः = मध्ये, समस्तस्य = निखिलस्य जगत। = संसारस्य, दर्शनेन = अवलोकनेन, तत्प्रभावानभिज्ञतया—तस्य = तादृशस्य बालकस्य प्रभावात् = महत्त्वात् अनभिज्ञतया = अज्ञाततया, वात्सल्यविह्वलायाः— वात्सल्येन = स्नेहेन विह्वलायाः = आह्लादितायाः, मातुः = जनन्याश्च, विस्मयगमनेन = आश्चर्यान्वितत्वेन, अयम् = प्रकृत श्लोकाभिव्यक्तः, अद्भुतातिशयः = अद्भुतरसाधिक्यम्, अत्युचितः = परमौचित्यं वहतीत्यभिप्राय। ॥

न तु यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

समस्ताश्चर्याणां जलनिधिरपारः स वसति-
स्ततोऽप्याश्चर्यं यत्पिबति सकलं तं किलमुनिः।
इदं त्वत्याश्चर्यं लघुकलशजन्मापि यदसौ,
परिच्छेत्तुं को वा प्रभवति तवाश्चर्यसरणिम् ॥

अर्थ :—अद्भुतरस के अनौचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा मेरे द्वारा रचित मुनिमतमीमांसा में है—

एक तो जगद्विदित अपार वह समुद्र ही समग्र आश्चर्यों का स्थान है; किन्तु इससे भी बड़ी आश्चर्य की बात है कि मुनि अगस्त्य ने उसे पूरा का पूरा ही पी लिया और इससे भी महत्तम आश्चर्य यह है कि वे घट जन्मा हैं अर्थात् उनका जन्म एक घड़े से हुआ है। हे जगत्प्रभो! आपकी आश्चर्य-परम्परा की सरणि को कौन जानने में समर्थ हो सकता है ?

टीका—अद्भुतरसानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—समस्ताश्चर्याणामिति। प्रथमतः = सर्वप्रथम्, सः = जगद्विदितः अपारः = अनन्तः, जलनिधिः = समुद्रः, समस्ताश्चर्याणाम् = निखिलाश्चर्याणाम्, अखिलविस्मयानामित्यर्थः, वसतिः = वासस्थानमस्तीति क्रिया शेषः। किन्त्वतोऽप्याश्चर्यमिदमस्ति यन्मुनिः = ऋषिरगस्त्यः, तम् = समुद्रम्, सकलम् = निःशेषं यथा स्यात्तथा, किलेति निश्चये, यत्पिबति = आचामति, किन्तु = परन्त्विदम् = एतत्, तु, अत्याश्चर्यम् =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्याश्चर्यंकरम्, यदसौ=अयं मुनिरगस्त्योऽपि, लघुकलशजन्मा=स्वल्पघटसम्भूतोऽस्ति। अतः तव=ईश्वरस्य, आश्चर्यसरणिम्=आश्चर्यपद्धतिम्, परिच्छेत्तुम्=पूर्णतो ज्ञातुम्, को वा प्रभवति=कः समर्थो भवति, न कोऽपीत्यर्थः ॥

अत्रापारसरित्पतिप्रभावेण मुनिना तस्यैकचुलकाचमनेन मुनेश्च लघुकलशजन्मना क्रमाक्रान्तिसमारूढोऽप्यसमविस्मयमयोऽयमद्भुतप्रसरः संसारस्यैवंविधैवाश्चर्यसरणिरपरिच्छिन्ना न किंचिदेतत्कौतुकमित्यर्थान्तरन्याससामर्थ्येन सहसैवावरोपित इव तिरोभूततामुपगतः।

अर्थ :—अद्भुतता इस पद्य में अपार समुद्र के प्रभाव की वर्णित की गई है, फिर एक चुल्लू के द्वारा समुद्र का पान करने वाले मुनि की घट से उत्पत्ति की विचित्रता बतलाई गई है। इस तरह क्रमशः एक के वाद एक की महत्ता को खण्डित कर आश्चर्यमूलक अद्भुत रस का जो अङ्कुर उत्पन्न किया गया है वह—यह समग्र संसार इसी प्रकार की आश्चर्यजनक परम्पराओं से भरा पड़ा है, इसमें आश्चर्यजनक की कोई वात नहीं है—ऐसा कह कर अर्थान्तरन्यास (पहले वर्णित किए गये अर्थ के समानार्थ वर्णित अर्थ) के द्वारा हठात् तिरोहित हो जाता है। कहने का भाव यह है कि यह संसार ऐसी ही विचित्रताओं से भरा पड़ा है, इसे भला कौन माप सकता है ? ऐसे भाव के व्यक्त कर देने से अद्भुतरस की महत्ता ही नष्ट हो जाती है। इस तरह यहाँ हम देखते हैं कि अनौचित्य के कारण अद्भुतरस का समुचित परिपाक ही नहीं हो पाता।

टीका—अत्रापारेत्यादिः-अत्र=अस्मिन् पद्ये, अपारसरित्पतिप्रभावेण—अपारः तर्तुमशक्यो यः सरित्पतिः=सागरस्तस्य प्रभावेण=महत्त्वेन, मुनिना=अगस्त्येन,तस्य=सागरस्य, एकचुलुकाचमनेन=एकचुलुकपानेन, तथा मुनेः=ऋषेरगस्त्यस्य च, लघुकलशे जन्मना—लघोः=स्वल्पात् कलशात्=घटात् जन्मना=उत्पत्त्या, क्रमाक्रान्तिसमारूढः=क्रमशो वृद्धिङ्गतोऽपि, असम—विस्मयमयः=अत्यन्ताश्चर्यपूरितः, अद्भुतप्रसरः=विचित्रोदयः, संसारस्य=जगतः, आश्चर्यसरणिः=विस्मयपद्धतिः, एवंविधा=एवंप्रकारा, अतोऽत्र न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंचित् कौतुकम्=नास्ति किञ्चिदाश्चर्यंकरम्, इति=इत्याकारकस्यार्थान्तरन्यायस्य सामर्थ्येन=महत्त्वेन, सहसैव=हठात्, एवं, अवरोपितः=उन्मूलितः, इव, तिरोभूतताम्=अन्तर्हितताम्, उपगतः=प्राप्तः ॥

शान्ते यथा मम चतुर्वर्गसंग्रहे—

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं,
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम् ।
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं नाम भये भवेद्भयमहो वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थः—शान्तरस के औचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—शान्तरस के उदाहरण के लिए मेरे 'चतुर्वर्गसंग्रह' नामक ग्रन्थ का निम्न पद्य उद्धृत किया जा सकता है :—

भोग में रोग का भय है, सुख में उसके समाप्त होने का भय है, धन में अग्नि एवं राजा से भय है, नौकरी में स्वामी से भय है, गुणों में निन्दकों से भय है, कुल में कुलटा स्त्रियों से भय है, सम्मान में उसके मलिन होने से भय है, विजय में शत्रुओं से भय है, शरीर में मृत्यु से भय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ससार की कोई भी वस्तु भयरहित नहीं है, अहा! केवल वैराग्य ही भय की सीमा से बाहर है, अतः सब को वैराग्य का ही सेवन करना चाहिए—यह कवि का भाव हुआ ॥

टीका—शान्तरसस्योदाहरणमुदाहर्तुमाह—भोग इति। भोगे=इन्द्रियानन्द सेवने, रोगभयम्–रोगात्= आमयात् भयम्=भीतिः, सुखे=लौकिकानन्द सेवने, क्षयभयम्=विनाशभीतिः, वित्ते=धने, अग्निभूभृद्भयम्=वह्निराजभयम्, दास्ये=सेवाकर्मणि, स्वामिभयम्–स्वामिनः=प्रभोः भयम्=भीतिः, गुणे=दयादाक्षिण्यादौ, खलभयम्–खलात्=दुष्टाद्भयम्, वंशे=कुले, कुयोषितः=कुलटायाः भयम्, माने=सम्माने, म्लानिभयम्=मालिन्यभीतिः, जये=विजये, रिपोः=शत्रोः भयम्, काये=शरीरे, कृतान्तात्=यमात्, भयम्=भीतिरस्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्थं भवे=संसारे, सर्वम्=निखिलम्, भयम्=भयाक्रान्तमित्यर्थः। भवेत्=स्यात्; केवलम्=एकम्, वैराग्यम्=सांसारिके वस्तुन्यनासक्तिरेव, अभयम्=भयरहितम्, अस्तीति क्रियाशेषः ॥

अत्र सकलजनाभिमतभोगसुखवित्तादीनां भयमयतया हेयतां प्रतिपाद्य वैराग्यमेव सकलभयायासशमनमुपादेयतया यदुपन्यस्तं तेन शान्तरसस्य निरर्गलमार्गावतरणमुचिततरमुपदिष्टं भवति।

अर्थ :—इस पद्य में सभी व्यक्तियों के लिये अभिप्रेत भोग, सुख तथा धन आदि को, भयमय होने के कारण; त्याज्यता बतलाकर एवं वैराग्य को सकल भय तथा आयास का शमनकर्ता होने के कारण उसकी जो उपादेयतया प्रतिपादित की गई हैं उससे शान्तरस का मार्ग बाधारहित अथच अधिक प्रशस्त हुआ सा प्रतीत हो रहा है। सत्य तो यह है कि यहाँ शान्तरस बड़े ही मार्मिक ढंग से समावेश किया गया है ॥

टीका—अत्रसकलेत्यादिः—अत्र=उक्तेपद्ये, सकलजनाभिमतभोगसुख—वित्तादीनाम्–सकलानाम्=निखिलानाम् जनानाम् =प्राणिनाम् अभिमतानि=अभिप्रेतानि यानि भोगसुखवित्तादीनि=भोगानन्दधनादीनि तेषाम्,भयमयतया=भीतिपरिपूर्णतया, हेयताम्=तिरस्कारताम्, प्रतिपाद्य=वर्णयित्वा, वैराग्य—मेव=सांसारिके वस्तुनि रागाभाव एव, सकलानाम्=समस्तानाम् भयानाम्=भीतीनाम् आयासानाम्=चिन्तादीनाम् शमनम्=शामकम्, अतः उपादेयतया=ग्राह्यतया, यदुपन्यस्तम्=यत् कथितम्, तेन=तेन हेतुना, शान्तरसस्य, निर—र्गलमार्गावतरणम्—निर्गलम्=बाधारहितम् यन्मार्गे=अध्वनि अवतरणम्=आगमनम्, तदुचिततरम्=समुचितरूपेण, उपदिष्टम्=प्रतिपादितम्, भवति=जायते ॥

यथा वा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

कुसुमशयनं पाषाणो वा प्रियं भवनं वनं,
प्रतनु, मसृणस्पर्शं वासस्त्वगप्यथ तारवी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरसमशनं कुल्माषो वा धनानि तृणानि वा,
शमसुखसुधापानक्षैव्ये समं हि महात्मनाम् ॥

अर्थ :—शान्तरस के औचित्यपूर्ण दूसरे उदाहरण को प्रदर्शित करने के लिये कह रहे हैं—अथवा जैसे मेरे 'मुनिमतमीमांसा' नामक काव्य का निम्न-लिखित श्लोक है—

शयन के लिए पुष्प-शय्या हो अथवा पत्थर, निवास के लिये महल हो अथवा जङ्गल, अत्यन्त महीन तथा सुकोमल वस्त्र हो अथवा पेड़ की छाल, खाने के लिये सरस सुकोमल भोजन हो अथवा नीरस कोदो आदि, घर में धन भरा हो या तृण—शान्तिसुख रूप अमृत के पान से मतवाला रहने पर महात्माओं के लिये ये समान ही हैं ॥

टीका-शान्तरसौचित्यस्यापरमुदाहरणमवतारयितुमाह—कुसुमशयनमिति । कुसुमशयनम्=पुष्पनिर्मितशय्या, वा अथवा पाषाणः=प्रस्तरखण्डः प्रियम्=मनोहरम्, भवनम्=गृहम्, वा अथवा, वनम्=अरण्यम्, प्रतनु=सुसूक्ष्मम्, मसृणस्पर्शम्=सुकोमलस्पर्शम्, वासः=वस्त्रम्, अथ=वा, तारवी=वृक्षसम्बन्धिनी, त्वक्=वल्कलम्, सरसम्=सुस्वादु, अशनम्=भोजनम्, वा कुल्माषः=नीरसं कोद्रवादि, धनानि=वित्तानि, वा तृणानि=घासानि, भवन्त्विति शेषः, किन्तु, शमसुखसुधापानक्षैव्ये—शमसुखमेव=शामानन्दमेव सुधापानम्=अमृतास्वादस्तेन क्षैव्ये=मत्ततायां सत्याम्, महात्मनाम्=जितेन्द्रियाणाम्, हीति निश्चये समम्=तुल्यमेव ॥

अत्र सकलविकल्पतल्परहिताभेदावभाससमानात्मतत्त्वविश्रान्तिजनितसर्वसाम्यसमुल्लसितशमसुखपीयूषपानोदितनित्यानन्दघूर्णमानमानसानां प्रियाप्रियसुखदुःखादिषु महतां सदृशी प्रतिपत्तिरिति जीवन्मुक्तिसमुचितमभिहितम् ।

अर्थ :—इस पद्य में जो संशय-विहीन समता के ज्ञान से ओत प्रोत आत्मतत्त्व में विहार करने से प्राप्त शान्तिसुधा के पान से मदमस्त महात्माओं को प्रिय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा अप्रिय सुख-दुःख आदि के विषय में समतावुद्धि का प्रतिपादन किया गया है, वह पूर्णरूप से जोवन्मुक्तावस्था के अनुकूल है। कहने का भाव यह है कि इस श्लोक में महात्माओं को उद्देश्य करके जो इस प्रकार समबुद्धि की सृष्टि की गई है, इस औचित्य से शान्तरस भली भाँति पुष्ट होता हुआ सा प्रतीत होता है ॥

टीका—अत्र सकलेत्यादिः—अत्र=एतस्मिन् पद्ये, सकलेन=समस्तेन विकल्पतल्पेन=संशयास्पदेन, रहितम्=विहीनमत एवाभेदेन=अद्वैतबुद्धया योऽवभासः=प्रतीतिर्ज्ञानं वा, तत्समानम्=तत्तुल्यं यदात्मतत्त्वं तत्र या विश्रान्तिः =वर्तमानता तज्जनितम्=तज्जातं यत् सर्वसाम्यम्=सर्वसाधारण्यं तेन समुल्लसितम्=प्रकाशितं यत् शमसुखम्=शान्तिजन्यानन्दस्तदेवपीयूषम्=सुधा तत्पानेन=तदास्वादेन उदितः=प्रादुर्भूतः यो नित्यानन्दः=शाश्वतिकासुखानुभूतिः तेन घूर्णमानम्=भ्रमत् मानसम्=चेतो येषान्तेषाम्, महताम्=महापुरुषाणाम्, प्रियाप्रियसुखदुःखादिषु=अनुरागवैराग्यकारणेष्विति भावः, सदृशी=समाना, प्रतिपत्तिः=ज्ञानम्, जीवन्मुक्तिसमुचितम्=जीवन्मुक्तावस्थानुरूपम्, अभिहितम्=प्रतिपादितम् ॥

नतु यथा श्रीमदुत्पलराजस्य—

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृशदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः,
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥

अर्थ :—शान्त रस के अनौचित्य के उदाहरण को प्रदर्शित करने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा कवि उत्पलराज का यह पद्य है—

विषधर सर्प हो अथवा शीतल पुष्पमाला, प्रबल शत्रु हो अथवा परम प्रिय मित्र, बहुमूल्य मणि हो अथवा मिट्टी का ढेला, सुकुमार पुष्प-शय्या हो अथवा कठोर पत्थर की चट्टान, तुच्छ तृण हो अथवा स्त्रियों का आकर्षक समूह—सब

Dr. Urmila Sharma Collection; Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में समान भाव रखने वाले मेरे दिन कहीं पवित्र निर्जन जंगल में शिव-शिव कहते हुए व्यतीत होते हैं ॥

टीका—शान्तरसानौचित्योदाहरणमुपस्थापयितुमाह—अहावीति । अहौ = विषधरे सर्पे, वा = अथवा, हारे = माल्ये; बलवति = बलशालिनि, रिपौ = शत्रौ, वा = अथवा, सुहृदि = मित्रे; मणौ = पद्मरागादिरत्ने, वा = अथवा, लोष्टे = मृत्पिण्डे; कुसुमशयने = पुष्पशय्यायाम्, वा = अथवा, दृषदि = कर्कशे शिलाखण्डे; तृणे = घासादौ, वा = अथवा, स्त्रैणे = सुन्दरीसमूहे; समदृशः = तुल्यदृष्टेः, क्वचित् = कुत्रचित्, पुण्यारण्ये = पवित्रेनिर्जने जंगले, शिवशिवेति, प्रलपतः = उच्चारयतः, दिवसाः = दिनानि, यान्ति = अतिगच्छन्ति । यान्तीत्यत्र यान्त्विति समीचीनः पाठः ॥

अत्र जीवन्मुक्तोचितं प्रियाप्रियरागद्वेषोपशमलक्षणमोक्षक्षमं सर्वसाम्यमहिहारसुहृदरिसमदृष्टिरूपमभिदधता क्वचित्पुण्यारण्ये यदभिहितं तद्विकल्पप्रतिपादकमभेदवासनाविरुद्धमनुचितमवभासते । धाराधिरूढसर्वसाम्यविगलितभेदाभिमानग्रन्थेर्हि सर्वत्र सर्वं शिवमयं पश्यतस्तपोवने नगरावस्करकूटे च विमलात्मलाभतृप्ततया समानदृशः क्वचित्पुण्यारण्यादिवचनमनुचितोच्चारणमेव ॥ १६ ॥

अर्थ :—इस पद्य में जीवन्मुक्त दशा के अनुरूप, प्रिय-अप्रिय और राग-द्वेष के प्रशमरूप मोक्ष के योग्य, सर्प एवं पुष्पमाला, मित्र और शत्रु में साम्य भाव का प्रतिपादन करके 'कहीं पावन निर्जन जंगल में' यह जो कहा गया वह द्वैतभावना का प्रतिपादक है अतः अभेद भावना का विरोधी होने से अनुचित प्रतीत होता है । क्योंकि अविच्छिन्न समभाव के कारण जिनके भेदाभिमान की गाँठ खुल चुकी है अतः सम्पूर्ण जगत् को जो शिवमय देख रहे हैं ऐसे महात्माओं के लिये निर्मल तपोवन एवं नागरिक भू-भाग का मूल्य समान होना चाहिए । फिर उनके द्वारा 'क्वचित्पुण्यारण्ये' इस वचन का उच्चारण सर्वथा अनुचित ही है । क्योंकि समदृष्टि के लिए क्या पावन और क्या अपावन है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः इस कथन से शान्त रस का पोषण न होकर दुर्बलीकरण ही होता है। अतः यह पूर्णतया शान्तरस के अनौचित्य का ही उदाहरण कहा जा सकता है।

टीका—अत्र जीवन्मुक्तोचितमिति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, जीवन्मुक्तोचितम्—जीवनकालेऽपि यो संसारबन्धरहितः स जीवन्मुक्त उच्यते तदुचितम्=तद्योग्यम्, प्रियाप्रियेत्यादिः—प्रियाप्रिययोः=अनुकूल प्रतिकूलयोः रागद्वेषयोश्च य उपशमः=निवृत्तिः तल्लक्षणो यो मोक्षस्तत्क्षमम्=तद्योग्यम्, अहिहारेत्यादिः—अहौ=सर्पे हारे=माल्ये सुहृदि=मित्रे अरौ=शत्रौ समदृष्टिरूपम्=तुल्यभावरूपम्, सर्वसाम्यम्=सर्वत्र समानताम्, अभिदधता=प्रतिपादयता, क्वचित्पुण्यारण्ये यदभिहितम्=कथितम्, विकल्पप्रतिपादकम्=द्वैतावबोधकम्, अतएव अभेदवासनाविरुद्धम्=अभेदधारणाविपरीतम्, तत्=कथनमित्यर्थः, अनुचितम्=अयोग्यम्, प्रतिभासते=प्रतीयते। तत्र हेतुमाह—धारेति। धाराधिरूढेत्यादिः—धाराधिरूढम्=अविच्छिन्नं प्रवहमानं यत् सर्वसाम्यम्=सर्वसमता तेन विगलितः भेदाभिमानग्रन्थिर्यस्य तादृशस्य, हीति निश्चये, सर्वत्र=चतुर्दिक्षु, सर्वम्=निखिलम्, शिवमयम्=कल्याणरूपम्, पश्यतः=अवलोकयतः, तपोवने=पवित्रे कानने, नगरावस्करकूटे=नगरापवित्रपदार्थसमवाये, च, विमलात्मलाभतृप्ततया=निर्मलतत्त्वज्ञानप्राप्त्या सन्तुष्टिभावात् समानदृशः=समबुद्धेः, क्वचित्पुण्यारण्यादिवचनम्=क्वचित्पुण्यारण्यादिकथनम् अनुचितोच्चारणमेव=अयोग्यकथनमेव॥

> यथा मधुरतिक्ताद्या रसाः कुशलयोजिताः।
> विचित्रास्वादतां यान्ति शृङ्गाराद्यास्तथा मिथः॥ १७॥
> तेषां परस्पराश्लेषात्कुर्यादौचित्यरक्षणम्।
> अनौचित्येन संस्पृष्टः कस्येष्टो रससङ्करः॥ १८॥

अन्वयः—यथा, कुशलयोजिताः, मधुरतिक्ताद्याः, रसाः, विचित्रास्वादताम्, यान्ति, तथा, मिथः, कुशलयोजिताः, शृङ्गाराद्याः, विचित्रास्वादताम्, यान्ति। (परन्तु), तेषाम्, परस्पराश्लेषात्, औचित्यरक्षणम्, कुर्यात्; हि, अनौचित्येन, संस्पृष्टः, रससंकरः, कस्य, इष्टः? ॥ १७–१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थः—यथा = जैसे, कुशलयोजिताः = पाकक्रिया के विशेषज्ञों के द्वारा मिलाये गये, मधुरतिक्ताद्याः = मीठे-कड़वे आदि, रसाः = रस, विचित्रास्वादताम् = विलक्षण आस्वाद को, यान्ति = प्राप्त होते हैं, तथा = वैसे ही, मिथः = आपस में, एक-दूसरे से, कुशलयोजिताः = निपुण साहित्य-रचनाकार के द्वारा मिलाये गये, शृङ्गाराद्याः = शृङ्गार आदि रस, विचित्रास्वादताम् = अपूर्व आनन्दभाव को, यान्ति = प्राप्त होते हैं। (परन्तु = किन्तु), तेषाम् = उन रसों के, परस्पराश्लेषात् = परस्पर मिश्रण के समय, औचित्यरक्षणम् = औचित्य की रक्षा, कुर्यात् = करनी चाहिए, करे, हि = क्योंकि, अनौचित्येन = अनौचित्य से, संस्पृष्टः = किञ्चित् भी मिला हुआ, रससंकरः = रसों का संकर, कस्य = किस सहृदय को, इष्टः = प्रिय होगा ?

अर्थः—जैसे पाकक्रिया के विशेषज्ञों के द्वारा मिलाये गये मीठे-कड़वे आदि रसों के सम्मिश्रण से अपूर्व आस्वाद की उत्पत्ति होती है वैसे ही निपुण साहित्य-रचनाकार के द्वारा परस्पर मिश्रित किये गये शृङ्गार आदि रसों से अपूर्व आनन्दानुभूति की सृष्टि होती है। किन्तु उन रसों के परस्पर मिश्रण के समय औचित्य की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि अनौचित्य से थोड़ा भी संश्लिष्ट रसों का सम्मिश्रण भला किस सहृदय को प्रिय होगा ? अर्थात् किसी को भी नहीं ॥

टीका—स्वतन्त्रतया व्युत्पादितानां रसानामौचित्यमनौचित्यं प्रदर्श्याधुना तेषां संकर औचित्यं परिभाषयितुं कारिकामवतारयति—यथा मधुरेति। यथा = येन प्रकारेण, कुशलयोजिताः—कुशलैः = पाकक्रियाविशेषज्ञैः योजिताः = प्रयुक्ताः, मधुरतिक्ताद्या रसाः, विचित्रास्वादताम् = अपूर्वास्वादभावम्, यान्ति = गच्छन्ति, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः, तथा = तेनैव प्रकारेण, मिथः = परस्परम्, कुशलैः = रसभावविशेषज्ञैः साहित्यकारैः योजिताः = गुम्फिताः, शृङ्गाराद्याः रसाः, विचित्रास्वादतां यान्ति। किन्तु = परन्तु, तेषाम् = शृङ्गारादीनां रसानाम्, परस्पराश्लेषात् = परस्परं सम्मिश्रणकाल इत्यर्थः, औचित्यरक्षणम्—औचित्यस्य रक्षणम् = पालनम्, कुर्यात् = कुर्वीत, यतो हि, अनौचित्येन संस्पृष्टः = सम्मिलितः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रससङ्करः=रसानां सम्मिश्रणम्, कस्य=कस्य सहृदयस्य, इष्टः=अभिमतः, न कस्यापीत्यर्थः ॥

रसाः कटुकमधुराम्ललवणाद्याः कुशलसूदेन वेसवारपानादिषु योजिता विचित्रास्वादतामुपयान्ति तथैव परस्परमविरुद्धाः शृङ्गारादय इति तेषामन्योन्यमङ्गभावयोजनायामौचित्यस्य जीवितसर्वस्वभूतस्य रक्षां कुर्यात् । अनौचित्यरजसा रससंयोगः स्पृष्टो न कस्यचिदभिमत इत्यर्थः ।

अर्थः—जैसे निपुण रसोईये के द्वारा वेसवार (सोंठ आदि से मिश्रित विशेष प्रकार का पानक) के पान में मिश्रित कड़वा, मधुर, खट्टा तथा नमकीन आदि रस अपूर्व स्वाद प्रदान करते हैं वैसे ही परस्पर अविरुद्ध शृङ्गार आदि रस भी मिलकर अपूर्व साहित्य रस की सृष्टि करते हैं। किन्तु उन रसों के परस्पर अङ्गाङ्गि भाव की योजना में प्राणस्वरूप औचित्य की रक्षा करनी चाहिए । अनौचित्य के कणमात्र से भी स्पृष्ट रसों का सम्मिश्रण किसी को भी अभिमत नहीं है, क्योंकि अनौचित्य के संसर्ग में आकर रससंकर अपना महत्त्व समाप्त कर देता है ।

टीका—रसा इति । कुशलसूदेन—कुशलाः=निपुणाश्च ते सूदाः=पाककर्तारस्तैः, एकेन वा पानकर्त्रा, वेसवारपानादिषु=शुण्ठ्यादिचूर्णनिर्मितपेयविशेषेषु, योजिताः=सम्मेलिताः, यथा=येन प्रकारेण, विचित्रास्वादताम्=अद्भुतस्वादभावम्, उपयान्ति=व्रजन्ति, तथैव=तेनैव प्रकारेण, परस्परम्=अन्योन्यम्, अविरुद्धाः=विरोधमनुपगताः, शृङ्गारादयो रसाः, विचित्रतास्वादताम् यान्ति, इति=इत्थम्, तेषाम्=रसानाम्, अन्योन्यम्=परस्परम्, अङ्गभावयोजनायाम्=प्रधानगौणरूपेण गुम्फने, जीवितसर्वस्यभूतस्य=प्राणाधायकतत्त्वस्य, क्षेमेन्द्रमत औचित्यमेव काव्यजीवितभूतमस्ति, रक्षाम्=पालनं पोषणञ्च कुर्यात् । अतः अनौचित्यरजसा=अनौचित्यकणेनापि, स्पृष्टः=संसर्गतां गतः, रससंयोगः=रससंकरः, न कस्यचिदभिमतः=न कस्यचित्प्रियः, इत्यर्थः= इति भावः ॥

७ औ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रससङ्करौचित्ये शान्तशृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावो यथा भगवतो महर्षेर्व्यासस्य—

सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गिलोलं हि जीवितम्॥

अर्थ :—शान्त रस एवं शृङ्गार रस के अङ्गाङ्गिभाव से सम्पन्न रससंकर का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—जैसे भगवान् महर्षि व्यास का यह श्लोक है—

यद्यपि यह बात सत्य है कि मनोहारिणी स्त्रियाँ चित्त को आनन्द प्रदान करती हैं और यह भी सत्य है कि धन-सम्पत्ति का संचय भी बड़ा सुखदायक होता है। किन्तु इतना सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि यह जीवन मदिरा से मतवाली सुन्दरी के कटाक्षपात की तरह चञ्चल (अस्थायी) है। अतः मनुष्य को अध्यात्म-साधना की ओर उन्मुख होना चाहिए॥

टीका—रससंकरौचित्ये प्रस्तुते प्रथमं तावत् शान्तशृङ्गाररसयोः संकरस्योदाहरणं दर्शयितुमाह—सत्यमिति। सत्यम्=वस्तुतः रामाः=नार्यः, मनोरमाः चित्ताकर्षकाः, भवन्तीतिक्रियाशेषः, तथैतदपि सत्यमस्ति यद्विभूतयः=सम्पत्तयः, रम्याः=चित्ताकर्षकाः, भवन्ति। किन्तु=परन्तु, हीति निश्चये, जीवितम्= मनुष्याणां जीवनम्, मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गिलोलम्—मत्ता=क्षीबा या अङ्गना= सुन्दरी तस्या अपाङ्गम्=नेत्रोपान्तभागस्तस्य भङ्गिवत्=कटाक्षवत् लोलम्= चलम्, वर्तत इति शेषः। अतोऽध्यात्मसाधनमेव सर्वदा सर्वथा च कर्तव्यमित्यभिप्रायः॥

अत्र भगवता जन्तुहिताभिनिविष्टेन मोक्षक्षमोपदेशेऽङ्गिनः शान्तरसस्य रागिजनानिष्टत्वात्सकलजनमनःप्रह्लादने बालगुडजिह्विकया शृङ्गारेऽङ्गभावमुपनीते पर्यन्ते शान्तस्यैव लोलं जीवितमित्यनित्यताप्रतिपादनपरिनिर्वाहिण परमौचित्यमुच्चैः कृतम्।

अर्थ :—इस पद्य में प्राणियों का कल्याण चाहने वाले भगवान् व्यास ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोक्षप्रद उपदेश में शान्तरस को अङ्गी (प्रधान) रूप से उपस्थित किया है। किन्तु संसारी व्यक्तियों को तो शान्तरस प्रिय है नहीं। अतः जैसे बालकों को गुड़ की डली खिलाकर उनका कान छेद दिया जाता है, उसी प्रकार लोगों को अपनी बात की ओर उन्मुख करने के लिये सम्पूर्ण व्यक्तियों के मन को प्रसन्न करनेवाले शृंगार रस को शान्त रस के अङ्ग (सहायक) के रूप में चित्रित कर के अन्त में "जीवन चंचल है" ऐसा कह कर जीवन की अनित्यता के प्रतिवाचन से शान्त रस की ही पुष्टि की गई है। अतः इस श्लोक में शान्त रस एवं शृङ्गार रस का अत्यन्त स्पृहणीय संकर है।

टीका—अत्रेति। जन्तुहिताभिनिविष्टेन—जन्तूनाम्=प्राणिनाम् हिते=कल्याणे अभिनिविष्टेन=कृताग्रहेण, भगवता=व्यासेनेत्यर्थः, मोक्षक्षमोपदेशे—मोक्षे=मोक्षदाने क्षमः=समर्थः, उपदेशः=हितकथनं तत्र, अङ्गिनः=प्रधानभूतस्य, शान्तरसस्य, रागिजनानिष्टत्वात्=सांसारिकजनानभिलषितत्वात्, सकलजनमनःप्रह्लादने—सकलानाम्=समस्तानाम् जनानाम्=प्राणिनाम् मनसाम्=चेतसाम् प्रह्लादने=प्रह्वीकरणे, आनन्ददानेन इत्यर्थः। बालगुडजिह्विकया=यथा बालका गुडं भक्षयित्वा कर्णौ छेदयितुं प्रवृत्ता भवन्ति तथैवेत्यर्थः, शृङ्गारे=शृङ्गाररसे, अङ्गभावम्=प्रधानभावम्, प्रधानां स्थितिमित्यर्थः; उपनीते=प्रापिते, वर्णित इति यावत्, पर्यन्ते=अवसाने, जीवितम्=जीवनम्, लोलम्=चञ्चलम्, अचिरस्थायीति रीत्या, अनित्यताप्रतिपादनपरिनिर्वहेण—अनित्यतायाः=क्षणभङ्गुरतायाः प्रतिपादनस्य=कथनस्य परिनिर्वहेण=परिनिर्हरणेन, शान्तस्यैव=शान्तरसस्यैव, परमौचित्यम्=अतिसमीचीनताम्, उच्चैः=सम्यक्, कृतम्=विहितम्। एतेन ग्रन्थकृन्मते शान्तशृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावरूपेणावस्थानं समर्थितम्। अस्मिन् पद्ये तयोर्निर्वाहः सम्यक् कृत इति ॥

बीभत्सशृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावो यथा मम बौद्धावदानकल्पलतायाम्—

क्षीबस्येवाचलस्य द्रुतहृतहृदया जम्बुकी कण्ठसक्ता,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्ताभिव्यक्तकामा कमति नखमुखोल्लेखमासूत्रयन्ती ।
आस्वाद्यास्वाद्य यूनः क्षणमधरदलं दत्तदन्तव्रणाङ्कं,
लग्नानङ्गक्रियायामियमतिरभसोत्कर्षमाविष्करोति ॥

अर्थं :—बीभत्स एवं शृङ्गार के संमिश्रण के औचित्य को प्रदर्शित करने के लिए कह रहे हैं—बीभत्स एवं शृङ्गार रस के अङ्ग अङ्गी भाव के उदाहरण के लिये मेरी "बौद्धावदानकल्पलता" का निम्न पद्य उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है—

सियारिन बड़े वेग से मृतक युवक के कलेजे को निकालकर, खून पीने की लालच से उसका गला पकड़ कर नख एवं दाँत के प्रहार से घावों का निर्माण करती हुई, दन्तक्षत से चिह्नित ओठ को बार-बार नोच कर खा रही है। इस प्रकार उस (मृत) युवक को अंगरहित करने में अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करती हुई ठीक वैसी ही लग रही है जैसे कोई कामिनी मदमत्त पड़े हुए युवक के ऊपर आसक्त होकर अपना अनुराग प्रकट करने के लिए, कण्ठ पकड़कर चुम्बन एवं नखक्षत अंकित कर रही हो, और दन्तव्रण से अंकित उस (युवक) के अधर का बार-बार आस्वादन करके अपनी कामकला को प्रकट करने वाली क्रियाओं को सम्पन्न करने में अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्तकर रही हो ॥

टीका—बीभत्सशृङ्गारयोः सङ्करस्यौचित्योदाहरणमुपास्थापयितुमाह—क्षीबस्येवाचलस्येति—क्षीबस्य=मदिरोन्मत्तस्य,इव=यथा, अचलस्य=निश्छलस्य, वस्तुतस्तु गतप्राणस्येति यावत्, यूनः=युवकस्य, द्रुतहृतहृदया–द्रुतम् =शीघ्रम्,हृतम्=खादितं निःसारितम् हृदयम्=वक्षोभ्यन्तरभागो यया सा,शृङ्गार-पक्षे–कामोद्रेकेण झटित्याकृष्टचित्ता कण्ठासक्ता कण्ठे=गले आसक्ता=संलग्ना, बीभत्सेमांसं भक्षयितुं रक्तञ्च पातुम्, शृङ्गारपक्षे—अमन्दं कामानन्दं प्राप्तुमिति यावत्, रक्ताभिव्यक्तकामा–रक्ते=शोणिते अभिव्यक्तः=प्रकटीकृतः कामो यया सा तादृशी, पक्षान्तरे—रक्ता=अनुरक्ता, अनुरागवतीति यावत्, अत एवाभिव्यक्त-कामा अभिव्यक्तः=प्रकटीकृतः कामः=मनसिजो यया सा तादृशी, नखमुखोल्ले-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खम्—नखमुखयोः=नखदन्तानामित्यर्थः उल्लेखम्=क्षतम् आसूत्रयन्ती=रचयन्ती, भोक्तुं नखदन्तप्रहारेण मांसं निःसारयन्तीत्यर्थः, शृङ्गारपक्षे—रतिक्रियाकलानुसारं नखक्षतं दन्तक्षतञ्चकुर्वतीत्यर्थः, एवंभूतासती, कमति=चकास्ति, कमु कान्तौ, तथा तस्यैव युवकस्य, दत्तदन्तव्रणाङ्कम्-दत्तम्=अर्पितम् दन्तव्रणानाम्=दन्तक्षतानाम् अङ्कम्=चिह्नम् यस्मिन् तत्, पक्षद्वयेऽपि समानमेतत्, अधरदलम्=ओष्टपुटम्,क्षणम्=निमेषमात्रम् आस्वाद्य आस्वाद्य=मुहुर्मुहुर्भुक्त्वा, शृङ्गारपक्षे मुहुर्मुहुश्चुम्बनंकृत्वा, अनङ्गक्रियायाम्–भक्षणेनाङ्ग–विनाशकार्ये, पक्षान्तरे=कामक्रीडायाम्, लग्ना=संसक्ता, इयम्=एषा, जम्बुकी=शृगाली, अतिरभसोत्कर्षम्=अतिहर्षप्रकर्षम्, अथवा अवयवानामूर्ध्वं कर्षम् पक्षे कामकलाकौशलं आविष्करोति=प्रकटयति ॥

अत्र श्लेषोपमया तुल्यकक्षाधिरूढयोरपि परस्परविरुद्धयोरर्थयोर्वीभत्सशृङ्गाराङ्गाङ्गिभावयोजनायां जम्बुकी तरुणशवस्य क्षीबस्येव निश्चलस्थितेः सहसैव हृतहृदयपद्माकृष्टचित्ता वा, कण्ठे लग्ना शोणिते भृशमभिव्यक्तस्पृहा रक्ताभिव्यक्तकामा वा, नखोल्लेखमासूत्रयन्ती दत्तदन्तव्रणमधरमास्वाद्याङ्गच्छेदक्रियायामनङ्गभोगक्रियायां वा, लग्ना गात्राणामूर्ध्वगतं कर्षणं रतकौशलोत्कर्षं वा, प्रकाशयतीति समानयोर्बीभत्सशृङ्गारयोः कामिनीपदपरित्यागेन केवलं जम्बुक्याः कर्तृत्वेन बीभत्सस्यैव प्राधान्ये शृङ्गारेऽङ्गतामुपगते वक्तुर्बोधिसत्त्वस्यान्तर्गतगाढवैराग्यवासनाधिवासितचेतसः कुत्साहंजुगुप्सया नितम्बिनीरतिविडम्बनमौचित्यरुचिरतामादधाति। यद्यप्यत्र महावाक्ये शान्तस्यैव प्राधान्यं तथाप्युदाहरणश्लोकवाक्ये बीभत्सस्यैव।

अर्थः— इस पद्य में श्लेष गर्भ उपमा के द्वारा समान स्तर पर अभिव्यक्त किये गये परस्पर विरुद्ध दोनों अर्थों के द्वारा वीभत्स एवं शृङ्गार के अङ्गाङ्गिभाव की योजना करने पर यद्यपि शृगाली मत्त के समान निश्चेष्ट पड़े हुये मृत युवक के शव का कलेजा निकालकर, पक्षान्तर में—स्वयम् आकृष्ट होकर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्तपान की अत्यधिकस्पृहा से, पक्षा०—अनुरक्त होने के कारण कामवासना प्रकट करने की कामना से, नखक्षत करती हुई, दन्तक्षत से चिह्नित अधर का बारम्बार आस्वादन करके अंगच्छेद क्रिया में, पक्षान्तर—कामोपभोग की क्रिया में लगी हुई, अवयवों को ऊपर की ओर नोच–नोचकर खींचने की क्रिया को, पक्षान्तर में—रतिकला के उत्कर्ष को प्रकट कर रही है! इस प्रकार बीभत्स और शृङ्गार—ये दोनों ही अर्थ समान रूप से यहाँ अभिव्यक्त होते हैं। किन्तु श्लोक में कामिनीपद का परित्याग करके कर्ता के रूप में केवल जम्बुकी का ही ग्रहण करने के कारण बीभत्स रस ही प्रधान हो जाता है और शृंगार गौण होकर उसका अङ्ग बन जाता है। इस अवस्था में भीतर हृदय में स्थित प्रबल वैराग्य-वासना से प्रभावित चित्तवाले वक्ता बोधिसत्त्व (भगवान् बुद्ध) की कुत्सित जुगुप्सा के द्वारा 'कामिनी-रतिक्रीडा एक विडम्बना है' ऐसा भाव अत्यन्त रुचिरता और औचित्य पूर्णता को धारण कर लेता है। यद्यपि इस काव्य में (अर्थात् बौद्धावदान-कल्पलता में) शान्त रस की ही प्रधानता है, किन्तु उदाहरण के इस श्लोक में बीभत्स रस की ही प्रधानता है ॥

टीका—अत्रश्लेषोपमयेति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, श्लेषोपमया=श्लेषगर्भेणोपमालङ्कारेण, तुल्यकक्षाधिरुढयोः तुल्यायाम्=समानायाम् कक्षायाम्=भूमौ अधिरूढयोः=स्थितयोः, अपि,परस्परविरुद्धयोः=अन्नयोन्यविपरीतयोः, अर्थयोः = मृततरुणजम्बुकीवृत्तान्तरूपकामिनीवृत्तान्तरूपयोरर्थयोरित्यर्थः, बीभत्सशृङ्गाररसयोरङ्गाङ्गिभाववर्णनायाम्, जम्बुकी=शृगाली, क्षीवस्य=मदिरोन्मत्तस्येव, निश्चलस्थितः—निश्चला=निश्चेष्टा स्थितिः—अवस्थानं यस्य तादृशस्य, तरुणशवस्य=युवकमृतशरीरस्य, सहसैव=हठादेव, हृतहृदयपद्मा—हृतम्=निःसारितम् हृदयपद्मं=हृदयकमलं यया सा, आकृष्टचित्ता—आकृष्टम्=वशीकृतं चित्तम्=चेतो यया सा तादृशी, वेति पक्षान्तरे, कण्ठे=गले, लग्ना=सक्ता, शोणिते=रुधिरे, भृशम्=अत्यन्तम्, अभिव्यक्तस्पृहा—अभिव्यक्ता=प्रकटीकृता स्पृहा=वाञ्छा यया सा, वेति पक्षान्तरे, अभिव्यक्तकामा—अभिव्यक्त, प्रकटीकृतः कामो यया सा तादृशी, रक्ता=अनुरक्ता, नखोल्लेखम्=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नखाघातम्, आसूत्रयन्ती=विदधती, दत्तदन्तव्रणम्=कृतदन्तच्छदम्, अधरम्=अधरोष्ठम्, आस्वाद्यास्वाद्यं=आस्वादतामानीय, अङ्गच्छेदक्रियायाम्=अवयवोत्पाटनकर्मणि, वा, अनङ्गभोगक्रियायाम्=कामोपभोगव्यापारे, लग्ना=तत्परा, गात्राणाम्=अंगानाम्, ऊर्ध्वंगतं कर्षणम्=आकर्षणम्, वा=अथवा, रतकौशलोत्कर्षम्—रतिकलाकौशलम्, प्रकाशयति=प्रकटयति, इति, समानयोः=तुल्ययोः, बीभत्सशृंगारयोः=उभयोः रसयोरित्यर्थः, कामिनीपदपरित्यागेन=अंगनापदानुपादानेन, केवलम्=एकमात्रम्, जम्बुक्याः=शृगाल्याः, कर्तृत्वेन, बीभत्सस्यैव प्राधान्ये=मुख्यत्वे, शृंगरेऽअङ्गताम्=गौणताम्, उपगते=प्राप्ते, वक्तुः=कथयितुः, बोधिसत्त्वस्य=भगवतो बुद्धस्य, अन्तर्गता=हृदयस्थिता, गाढा=प्ररूढा या वैराग्यभावना=विरक्तिस्तया अधिवासितम्=रञ्जितम् चेतः=अन्तःकरणं यस्य तादृशस्य, कुत्साऽर्हजुगुप्सया=निन्दनीयघृणया, औचित्यरुचिरताम्=औचित्यसौन्दर्यम्, आवहति=धारयति। यद्यप्यत्र महावाक्ये=काव्ये, शान्तस्यैव=शान्तरसस्यैव, प्राधान्यम्=मुख्यत्वम्, तथाप्युदाहरण श्लोकवाक्ये=अस्मिन् श्लोके, बीभत्सस्यैव प्राधान्यमस्तीति शेषः॥

वीरकरुणयोर्यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

गाण्डीवस्रुवमार्जनप्रणयिनः स्नातस्य बाष्पाम्बुभि-
श्चण्डं खाण्डवपावकादपि परं शोकानलं बिभ्रतः।
जिष्णोर्नूतनयौवनोदयदिनच्छिन्नाभिमन्योश्चिरं,
हा वत्सेति बभूव सैन्धववधारब्धाभिचारे जपः॥

अर्थः—वीर एवं करुण रस के संकर (मिश्रण) के उदाहरण को देने के लिए कह रहे हैं—वीर-करुण के संकर के उदाहरण के लिये मेरी मुनिमतमीमांसा का यह श्लोक है—

गाण्डीव नामक अपने धनुषरूप स्रुवा के मार्जन के प्रेमी (अर्थात् गांडीव धनुर्धारी), अश्रुजल से स्नान किये हुए, खाण्डव वन को जलानेवाली आग से भी प्रचण्ड शोकाग्नि को धारण करने वाले, नई तरुणाई के आने के समय ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिमन्यु से वञ्चित किये गये अर्जुन का (अभिमन्यु के लिये) हाय बेटा! हाय बेटा!! ऐसा कह कर किया गया विलाप जयद्रथ के वध रूप प्रारम्भ किये गये अभिचार कर्म (मारणक्रिया रूप अनुष्ठान) में जप है। (अर्थात् अर्जुन जयद्रथ के वध के लिये कृतसंकल्प हैं)॥

टीका—वीरकरुणयोः सङ्करस्योदाहरणमुपस्थापयितुमाह—गाण्डीवेत्यादिः। गाण्डीवः=अर्जुनस्य धनुषः संज्ञाऽऽसीद् गाण्डीव इति, सः स्रुवः=घृताहुतिं दातुं कल्पितः पात्रविशेषस्तस्य मार्जने=परिशुद्धौ, प्रणयिनः=प्रेमवतः, गाण्डीवधन्वन इति भावः, वाष्पाम्बुभिः=अश्रुजलैः, स्नातस्य=कृताभिषेकस्य, खाण्डवपावकादपि=खाण्डववनाग्नेरपि, परम्=श्रेष्ठम्, चण्डम्=दाहकम्, शोकानलम्=शोकाग्निम्, बिभ्रतः=धारयतः, नूतनेत्यादिः=नूतनम्=नवोद्गतं यद्यौवनम्=तारुण्यम्, तस्योदयदिने=आगमनसमये छिन्नः=आच्छिद्य दूरीकृतः अभिमन्युः=अभिमन्युनामा पुत्रो यस्य तादृशस्य, जिष्णोः=अर्जुनस्य, चिरम्=बहुकालम्, हा वत्सेति विलाप एव, सैन्धववधारब्धाभिचारे—सैन्धवस्य=जयद्रथस्य वध एव आरब्धः=प्रवर्तितोऽभिचारः=मारणकर्म तस्मिन्, जपः=मन्त्रजप इत्यर्थः, बभूव=सञ्जातः॥

अत्र त्रिगर्तसंग्रामगतस्य गाण्डीवधन्वनः शत्रुभिर्नवयौवनोदयसमयनिहततनयस्य कार्मुकस्रुवमुन्मार्जयतः प्रसरदश्रुस्नातस्य शोकाग्निमुद्वहतश्चिरं हा पुत्रेति जयद्रथवधारब्धाभिचारे जपो बभूवेति यदुपन्यस्तं, तेनारिक्षये दीक्षासमुचितव्रतवर्णनया शोकाग्नेश्चण्डत्वेन खाण्डवपदोदीरणेन वीररसस्याङ्गिनः सहसैवागन्तुके करुणरसे प्रज्वलिते सैन्धववधारब्धाभिचाराभिधानेन पर्यन्ते शौर्यनिर्वाहेण परममौचित्यमुज्जृम्भते।

अर्थ:—इस श्लोक में त्रिगर्तों के साथ संग्राम में संलग्न, शत्रुओं के द्वारा चढ़ती जवानी के समय में ही मारे गये पुत्र वाले, धनुष रूप स्रुवा को मार्जन करने वाले, गिरने वाली अश्रुधारा में स्नान किये हुए, शोकाग्नि को अपने भीतर धारण किये हुए अर्जुन का हाय बेटा! यह कह कर किया गया विलाप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयद्रथ के वधरूप प्रारम्भ किये गये अभिचार कर्म में जप बन गया।" यह जो कहा गया है उससे शत्रुविनाश की दीक्षा के योग्य ही व्रत का विधान उपस्थित हो जाता है और इसके साथ ही शोकाग्नि की प्रचण्डता और खाण्डव पद के कथन से वीर रस की अङ्गिता (प्रधानता) भी सिद्ध हो जाती है। इसका 'सैन्धववधारब्धाभिचारे जपः' इस कथन से अन्त तक निर्वाह भी हो जाता है। यद्यपि 'वाष्पाम्बुभिः स्नातस्य' 'शोकानलं बिभ्रतः' इन विशेषणों के द्वारा करुण-रस भी संकेतित प्रतीत होता है, किन्तु वह वीररस का अङ्गमात्र बनकर रह गया है। इस प्रकार यहाँ वीर और करुण के संकर का औचित्य बड़े ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है॥

टीका—अत्र त्रिगर्तसंग्रामगतस्येति। अत्र=उक्ते पद्ये, त्रिगर्तसंग्राम-गतस्य=त्रिगर्तयुद्धसंलग्नस्य, शत्रुभिः=रिपुभिः, नवयौवनोदयसमयनिहततन-यस्य=तारुण्योदयकाल एव हृतपुत्रस्य, कार्मुकस्रुवम्=धनुःस्रुवम्, उन्मार्जयतः=सम्फेटयतः, प्रसरदश्रुस्नातस्य=निर्गलदश्रुकृताभिषेकस्य, शोकाग्निम्=पुत्र-वियोगानलम्, उद्वहतः=धारयतः, गाण्डीवधन्वनः=अर्जुनस्य, चिरम्=बहु-कालम्, हा पुत्रेति कथयित्वा यो विलापः जातः स एव, जयद्रथवधारब्धाभिचारे=सिन्धुराजहननारब्धमारणक्रियायाम्, जपो बभूवेति यदुपन्यस्तम्=यत्कथितम् तेन=उपन्यासेनेत्यर्थः, अरिक्षये=शत्रुविनाशे, दीक्षासमुचितव्रतवर्णनया—दीक्षायाः=अनुष्ठानस्य यत् समुचितम्=योग्यं व्रतं तस्य वर्णनया=कथनेन, शोकाग्नेः=शोकवह्नेः चण्डत्वेन=तीक्ष्णत्वेन, खाण्डवपदोदीरणेन=खाण्डव-पदोपन्यासेन, अङ्गिनः=प्रधानस्य, वीररसस्य, सहसैव=हठादेव, आगन्तुके=उपस्थिते, करुणरसे, प्रज्वलिते=उपचिते, पर्यन्ते=अवसाने, सैन्धववधारब्धा-भिचाराभिधानेन, परम्=निरतिशयम्, औचित्यमुज्जृम्भते=उपचीयते॥

शान्तशृङ्गारकरुणबीभत्सानां यथा मम तत्रैव—

तीक्ष्णान्तस्त्रीकटाक्षक्षतहृदयतया व्यक्तसंसक्तरक्ताः,
क्रोधादिक्रूररोगव्रणगणनातीततीव्रव्यथार्ताः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेहक्लेदातिलग्नैः क्रुमिभिरिव सुतैः स्वाङ्गजैर्भक्ष्यमाणाः,
संसारक्लेशशय्यानिपतिततनवः पश्य सीदन्ति मन्दाः ॥

अर्थ :—शांत, शृंगार, करुण और बीभत्स रसों के संकर के औचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं कि—शान्त, शृंगार, करुण और बीभत्स रसों के संकर के उदाहरण के लिये मेरी मुनिमतमीमांसा का यह श्लोक देखा जा सकता है—

देखिये, स्त्रियों के तीखे कटाक्षों से विद्ध हृदय होने के कारण स्पष्टतः रक्त से सने हुए अथवा अत्यधिक अनुरक्त, क्रोध आदि क्रूर रोग रूपी घावों की गणनातीत तीव्र व्यथा से व्यथित, स्नेहरूपी पङ्क के कारण कसकर चिपके हुए, कीड़ों की तरह, अपने औरसपुत्रों से काटे जाते हुए, संसार की दुःखरूपी शय्या पर गिरी हुई शरीर वाले मन्दमति व्यक्ति क्लेश भोग रहे हैं ॥

टीका-शान्त-शृङ्गार-करुण-बीभत्सरसानां संकरस्यौचित्यमुपस्थाप—यितुमाह—तीक्ष्णेत्यादिः । तीक्ष्णः=निशितोऽन्तः=अग्रभागः परिणामो वा येषान्तैः स्त्रीणाम्=कामिनीनां कटाक्षैः=भ्रूविलासैः क्षतानि=विद्धानि हृदयानि=चेतांसि येषां तेषां भावस्तत्ता तया, व्यक्तसंसक्तरक्ताः—व्यक्तम्=स्पष्टं संसक्तम्=लग्नं रक्तम्=रुधिरं येषां ते, क्षताद्रक्तप्रवाहस्तूचित एवेति, अथवा स्पष्टं दृढानुरागा इत्यर्थः, क्रोधादिरित्यादिः—क्रोधादयः=कोपादय एव क्रूराः=भीषणारोगाः=व्याधयस्तेषां यो व्रणगणः=व्रणसन्ततिः तस्य या गणनातीताः=वक्तुमशक्यास्तीव्राः=दुःसहाः व्यथाः=पीडास्ताभिरार्ताः=पीडिताः, तथा स्नेहक्लेदातिलग्नैः=स्नेह एव क्लेदः=पङ्कस्तेन अतिलग्नैः=भृशं संसक्तैः, अतः क्रुमिभिः=क्षुद्रकीटैरिव वर्तमानैः, स्वाङ्गजैः=औरसैः, सुतैः=पुत्रैः भक्ष्यमाणाः, इवेति शेषः, संसारेत्यादिः संसारस्य=जगतः दुःखमेव=कष्टमेव शय्या=तल्पं तत्र निपतिताः तनवः=शरीराणि येषान्ते तथाभूताः, मन्दाः=कुन्दबुद्धयो जनाः, सीदन्ति=क्लेशमनुभवन्तीति, पश्य=अवलोकयेति ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र मुख्यस्याङ्गिनः शान्तरसस्यैवोद्दीपने कारणीभूतास्तीक्ष्णान्त-स्त्रीकटाक्षक्षतहृदयव्यथार्त्तस्नेहक्लेदातिलग्नकृमितुल्यतनयादिपदोपादानेन शृङ्गारकरुणबीभत्साः शान्तमुखप्रेक्षिणः, संलीनतया स्तिमित-वृत्तयो भृत्या इव परममौचित्यं दर्शयन्ति ।

अर्थः—इस श्लोक में मुख्य होने के कारण अङ्गी शान्तरस के ही उद्दीपन में कारणभूत 'तीक्ष्णान्त, स्त्रीकटाक्ष'—'तीव्रव्यथार्त'—'स्नेहक्लेदेत्यादि'—पदों के उपन्यास से प्रतीत होने वाले शृङ्गार, करुण और बीभत्स रस शान्त रस के अधीन होने से उसी की अपेक्षा करने वाले हैं, अतः वे सर्वात्मना समर्पित एवं स्वव्यापारशून्य स्वामिमुखापेक्षी सेवक के समान औचित्य का परम पोषण कर रहे हैं। कहने का भाव यह है कि इस पद्य में शान्त, शृंगार, करुण और बीभत्स रस का संकर सर्वथा समीचीन है ॥

टीका—अत्रेति । अत्र = अस्मिन् पद्ये, मुख्यस्य = प्रधानस्य, अतः अङ्गिनः शान्तरसस्य, उद्दीपने = प्रोत्साहने, कारणीभूताः = हेतुतामुपगताः, तीक्ष्णन्तेत्यादिपदोपादानेन = इत्यादिपदोपन्यासेन, प्रतीयमानाः शृंगारकरुणबीभत्साः, अत्र शृङ्गारानुभूतिः स्त्रीकटाक्षादिना, करुणरसप्रतीतिस्तीव्रव्यथार्तत्वेन तथा बीभत्सानुभूतिः कृमितुल्यतनयभक्ष्यमाणत्वेनेति ज्ञेयम्, शान्तमुखप्रेक्षिणः = शान्त-रसस्य मुखम् = आननं प्रेक्षन्ते इति तादृशाः, शान्तरसानुगामिनः, संलीनतया = शान्त एव लीनस्वसत्तया, स्तिमितवृत्तयः—शान्तान्यव्यापाराः, भृत्याः = सेवकाः, इव, परमौचित्वं दर्शयन्ति = उपस्थापयन्ति ॥

रससङ्करस्यानौचित्यमुद्भावयितुमाह । शृङ्गारशान्तयोर्यथा-

अमरुकस्य—

गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा,
द्वित्राण्येव पदानि तिष्ठतु भवान्पश्यामि यावन्मुखम् ।
संसारे घटिकाप्रणालविगलद्वारा समे जीविते,
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद्वा न वा सङ्गमः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थः—रसों के संकर के अनौचित्य की उद्भावना के लिये कहा जा रहा है। शृङ्गार तथा शान्त रसों के संकर का अनौचित्य जैसे कवि अमरुक के इस पद्य में है —

हे प्राणनाथ, यदि आप का जाना निश्चित है तो चले ही जाना, ऐसी शीघ्रता क्या है ? आप दो चार क्षण तो ठहरें सही, जिससे मैं अच्छी तरह आप का मुख देख सकूँ। इस संसार में प्राणियों का जीवन नाली में बहते हुये जल के समान अस्थिर अथ च द्रुतगामी है। ऐसी स्थिति में कौन जानता है कि आपका और हमारा फिर से मिलन होगा अथवा नहीं होगा ।।

टीका—शृङ्गारशान्तयोः संकरस्यानौचित्यमुदाहर्तुमाह—गन्तव्यमिति। अत्र प्रवासतत्परं प्रियं काचिन्नायिका कथयति–हे प्रिय, यदि नामेति निश्चये संभावनायां वा, गन्तव्यम्=व्रजितव्यम्, निश्चतम्=दुर्निवारम्, अस्तीति क्रियाशेषः, अहो इति खेदे' गन्तासि=गमिष्यस्येव, इयम्=सम्प्रत्यङ्गीकृता, का=कीदृशी, त्वरा=शीघ्रता ? भवान् द्वित्राण्येव पदानि=कतिपयानि चरणानि, कतिपयानि क्षणानीत्यर्थः, तिष्ठतु=अत्र स्थितो भवतु, यावत्=यावत्समयमहं ते मुखम्=आननम्, पश्यामि=अवलोकयामि। यतो हि, घटिकाप्रणालविगलद्वारासंसारे=जगति, घटिकाप्रणालानि—कूपाद् घटिकाजालेनोद्धृतजलं क्षेत्रे प्रापयितुं भूमौ निर्मितानि प्रणालानि–तैस्तद्वारा विगलत्=प्रवहमानं यद् वारि=जलम् तेन, समे=तुल्ये, जीविते=जीवने, अतिक्षणभङ्गुरे जीवन इत्यभिप्रायः; त्वया=भवता सह, मम=तव प्रेयस्या इत्यर्थः, पुनः=मुहुः, सङ्गमः=सहवासः, स्यान्न वा=भवेन्न वा, इति को जानाति=को वेत्ति, न कोऽपीति भावः ।।

अत्र प्रकरणवर्तिनः शृङ्गाररसस्य पश्यामि यावन्मुखमित्यकुण्ठोत्कण्ठासमुज्जृम्भमाणस्य स्वभावविरोधिनि शान्तेऽङ्गभावमुपनीते विस्तीर्णतरानित्यतावर्णनया वैराग्येण रतेर्व्यभिचारिभावमापादयन्त्या प्रधानरससम्बन्धेनाधिकमनौचित्यमुत्साहितम्। निःसारसंसाराचारुताश्रव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

णेन हि कठिनक्रियाक्रूरचेतसामप्युत्साहभङ्गादङ्गान्यलसोभवन्ति, किमुत कुसुमसुकुमारश्रृङ्गाररसकोमलमनसां विलासवताम्। प्रान्ते च शान्तपरिपोषनिर्वाहेण रागवैरस्यमेव पर्यवस्यति।

अर्थः—इस पद्य में 'पश्यामि यावन्मुखम्' इत्यादि पदों के द्वारा प्रतीत होने वाली उद्दाम उत्कण्ठा से समृद्ध प्राकरणिक शृङ्गार रस का अङ्ग बनाया गया है शान्त रस जो श्रृंगार का स्वभावतः विरोधी है अतः अनित्यता के अत्यन्त विस्तृत वर्णन से वैराग्य के द्वारा रति (शृङ्गार रस के स्थायी भाव) को दवा देने वाले प्रधान रस श्रृंगार का सम्बन्ध पूर्णरूप से अनुचित मालूम पड़ने लगता है। क्योंकि असार संसार की अशोभनता के सुनने से कठिन क्रियाओं के करने से क्रूर हृदय वाले व्यक्तियों के भी अंग उत्साह के भंग हो जाने के कारण शिथिल हो जाते हैं, तो फिर फूल की तरह सुकुमार तथा श्रृंगार रस से कोमल हृदय वाले विलासी लोगों का क्या कहना ? (अर्थात् उनका हृदय तो अति शीघ्र शिथिल हो जायेगा)। और अवसान में शान्त रस की परिपुष्टि से राग की विसरता ही हाथ लगती है।

टीका—अत्रप्रकरणवर्तिन इति। अत्र =एतस्मिन् पद्ये, प्रकरणवर्तिनः= प्रसंगप्राप्तस्य, "पश्यामि यावन्मुखम्" इति=इत्युक्त्या, अकुण्ठा=अप्रतिहता उत्कण्ठा तया समुज्जृम्भमाणस्य=वृद्धिगतस्य, श्रृंगाररसस्य, स्वभावविरोधिनि= प्रकृत्या विपरीते, शान्ते=शान्तरसे, अंगभावम्,=अंगताम् उपनीते=प्रापिते सति, वैराग्येण, रतेः=श्रृंगाररसस्थायिभावस्य, न्यग्भावम्=तिरस्कारम्, आपादयन्त्या=सम्पादयन्त्या, विस्तीर्णतरानित्यतावर्णनया=प्रचुरतरानित्यता-वर्णनेन, प्रधानरससम्बन्धेन=प्रधानो यः श्रृंगाररसस्तस्य संसर्गेण, अधिकम्= पर्याप्तम् अनौचित्यम्=औचित्याभावम्, उत्साहितम्=प्रेरितम्। अत्र कारणमाह—निःसारेत्यादिना। निःसारस्य=सारविहीनस्य संसारस्य=जगतः अचारुतायाः=असुन्दरतायाः श्रवणेन=आकर्णनेन, हीति निश्चये, कठिनक्रिया-क्रूरचेतसाम्—कठिनाभिः=कठोराभिः, क्रूराभिरित्यर्थः, क्रियाभिः=कार्यैः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रूरम् = निर्दयम् चेतः = हृदयं येषां तेषाम्, अपि = च, उत्साहभङ्गात्-उत्साहनाशात्, अंगानि = शरीरावयवाः, शिथिलीभवन्ति = अलसीभवन्ति, कार्यं सम्पादयितुं नोत्सहन्ते इत्यर्थः। कुसुमसुकुमारश्रृंगाररसकोमलमनसाम्–कुसुमानि = पुष्पाणि इव सुकुमाराणि = कोमलानि श्रृंगाररसेन कोमलानि = मृदूनि मनांसि येषां तेषाम्, विलासवताम् = श्रृंगारलीलाविदग्धानां जनानां विषये, किमुत = किं वक्तव्यम्? तेषामङ्गानां शैथिल्यन्तु नितरां सुलभमेव। च = तथा, प्रान्ते = अवसाने, शान्तपरिपोषनिर्वाहेण—शान्तस्य = शान्तरसस्य परिपोषः = पुष्टिस्तस्य निर्वाहेण = सिद्धया, रागवैरस्यमेव = रागविरसतामेव, पर्यवस्यति = फलति॥

तदुक्तमानन्दवर्धनेन—

विरोधी वाऽविरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे।
परिपोषं न नेतव्यस्तेन स्यादविरोधिता॥

तदेवात्र वैपरीत्येनावलोक्यते—

अर्थ :—इसी अभिप्राय को आनन्दवर्धन ने कहा है—

विरोधी अथवा अविरोधी कोई भी रस यदि किसी दूसरे रस का अंग हो जाय तो अन्त तक उस अंगभूत (अप्रधान) रस का परिपोष नहीं होना चाहिये, ऐसा करने से विरोध नहीं होने पाता है।

किन्तु यहाँ की अवस्था कुछ विपरीत है, क्योंकि अन्त तक अंगभूत विरोधी रस शान्त का निर्वाह किया गया है। यही कारण है कि यहाँ औचित्य का हनन हुआ है।

टीका—स्वकथनं समर्थयितुं ध्वनिकृत आनन्दवर्धनस्यापि मतमुपस्थापयति—तदुक्तमानन्दवर्धनेनेति—अङ्गिनि = प्रधाने, रसान्तरे = अन्यस्मिन् रसे, विरोधी = विपरीतः, वा = अथवा, अविरोधी = अविरुद्धः, रसः, परिपोषम् = पुष्टिम्, न नेतव्यः = न आनेयम्, तेन = इत्थङ्करणेन, अविरोधिता = विरोधाभावः, स्यात् = भवेत्। अवसाने मुख्यरसस्यैव पुष्टिः कर्तव्येति भावः॥

अत्र = एतस्मिन् पद्ये, तदेव = अङ्गभूतरसस्य परिपोषाभाव एव, वैपरीत्येन प्रतिकूलस्थित्या, अवलोक्यते = दृश्यते॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिपोषविपरीते स्वभावविरोधिन्यपि प्रधानानुपरोध एव। यथा राजशेखरस्य—

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठि तरंगुत्तरं,
तारुण्णं दिअहाइँ पञ्च दह वा पीणत्थणत्थंभणं।
इत्थं कोइलिमंजुसिंजिणमिसाद् देवस्स पंचेसुणो,
दिण्णा चित्तमहूसवेण सहसा आणव्व सव्वंकसा॥

[मानं मुञ्चत दत्त वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गोत्तरां,
तारुण्यं दिवसानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम्।
इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जितमिषाद्देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन सहसाऽऽज्ञेव सर्वङ्कषा॥] इति च्छाया॥

अर्थ :—अंगभूत रस का यदि अन्त तक परिपोष नहीं होता हो तो स्वभाव विरोधी रस का वर्णन वर्तमान होने पर भी अंगीभूत (प्रधान) रस का रोध नहीं होता। इसी भाव को ध्यान में रखकर राजशेखर का पद्य उद्धृत कर रहे हैं—

हे मानिनियो, मान छोड़ो। प्रिय जनों पर अपनी चञ्चल दृष्टि डालो। क्योंकि विशाल स्तनों को कड़ा रखने वाली जवानी पाँच, दस दिनों की है—ऐसी सबसे प्रबल कामदेव की आज्ञा, कोकिला की मधुर कूक के बहाने से चैत्र महोत्सव ने मानो सहसा दे दी है॥

टीका—रसयोरेकत्र समावेशेऽपि सामञ्जस्यं दर्शयितुमुपक्रमते—तमुपक्रमेत परिपोष-विपरीते=परिपोषाभावे, स्वभावविरोधिनि=प्रकृत्या प्रतिकूलेऽपि; रसे समावेशिते इति शेषः, प्रधानानुपरोध एव=मुख्यस्य रसस्याव्याघात एव भवतीति ज्ञेयम्॥

पूर्वोक्तमेवाभिप्रायं लक्ष्ये दर्शयितुमुपक्रमते—यथा राजशेखरस्येति। मान-मिति। हे मानिन्यः, मानम्=प्रियं प्रत्यकृत्रिमं क्रोधमित्यर्थः, मुञ्चत=त्यजत,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वल्लभजने = प्रियजने, तरङ्गोत्तराम् = चञ्चलामिति यावत्, दृष्टिम् = नेत्रम्, दत्त = अर्पयत । यतः पीनस्तनस्तम्भनम्—पीनयोः = स्थूलयोः स्तनयोः = कुचयोः स्तम्भनम् = उत्थापकम्, तारुण्यम् = यौवनम्, पञ्च दश वा दिवसानि तिष्ठतीति शेषः । यौवनं नितरामस्थायीति भावः । इत्थम् = एवंरूपा, कोकिलेत्यादिः— कोकिलानाम् = परभृताम् मञ्जूनि = मधुराणि यानि शिञ्जितानि = आरावोः तन्मिषात् = तद्व्याजात्, चैत्रमहोत्सवेन = मधुमहोत्सवेन, कर्त्री, सहसा = हठात्, पञ्चेषोः = कामस्य, देवस्य = सर्वत्र व्याप्तस्य शासकस्येति भावः, सर्वङ्कषा = सर्वैरनुल्लङ्घनी, आज्ञा = आदेशः, दत्ता = वितरितेव ॥

अत्र 'मानं मुञ्चत दत्त वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गितां तारुण्यं दिनानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनमित्थं कोकिलमधुरध्वनिव्याजेन देवस्य पञ्चेषोश्चैत्रमहोत्सवेनाज्ञेव सर्वङ्कषा दत्ता" इति वाक्ये मुख्यः शृंगार-प्रारम्भपर्यन्तव्याप्तिशाली कतिपयदिवसस्थायि यौवनमित्यनित्यता-रूपशान्तबिन्दुना मध्यबुडितेनेव विरसतां न नीतः, विरुद्धस्य परिपोषा-भावात् । विरुद्धवर्णनोदितेन ह्यनौचित्येन स्थायी कुञ्जर इव श्वभ्र-पातितः पुनरुत्थातुं नोत्सहत इत्यलं विस्तरेण । अनया दिशा रस-सङ्करे भेदप्रपञ्चौचित्यं विपश्चिद्भिः स्वयं विचार्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ :—इस पद्य में शृङ्गार रस प्रमुख है । वह पद्य में आदि से अन्त तक व्याप्त है । यहाँ "कतिपय दिवसस्थायि यौवनम्" इस कथन से यद्यपि शान्त रस का यहाँ समावेश किया गया है, तथापि वह उसी तरह शृङ्गार रस में डूब गया है जैसे जल-समूह में एक बूंद डूब जाती है । यही कारण है कि वह मुख्य रस शृङ्गार में विरसता को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो पाता । अंगभूत, प्रधान रस के विरोधी शान्त रस का अन्त तक यहाँ परिपोष नहीं हो सका है । जहाँ पर वर्णन इसके विपरीत होता है, वहाँ औचित्य विनष्ट हो जाता है, जिससे मुख्य रस, खाई में ढकेल कर गिरा दिये गये हाथी के समान, फिर ऊपर उठने का साहस नहीं कर पाता है । इसी पद्धति से रस-संकर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य-अन्य भेद-प्रभेदों की विवेचना विद्वानों को स्वयं कर लेनी चाहिए अतः यहाँ अब इसके बारे में और विचार नहीं किया जा रहा है ॥ १८ ॥

टीका—अत्रेति । अत्र='मुञ्च मानम्' इति पद्ये, मुख्यः=प्रधानः, शृङ्गाररसः, प्रारम्भपर्यन्तव्याप्तिशाली=आद्यन्तव्याप्तः, "कतिपयदिवसस्थायि यौवनम्" इति कथयित्वा, अनित्यतारूपशान्तबिन्दुना=नश्वरताकथनरूपशान्त-रसकणेन, मध्यन्त्रुडितेनेव=शान्तरसाभ्यन्तरे मज्जितेनेव, विरसताम्=वैरस्यम्, न नीतः=न प्रापितः । अत्र कारणमाह—विरुद्धेति । विरुद्धस्य=शृङ्गार-विरोधिनः शान्तस्य, परिपोषाभावात्=सम्यङ्निर्वाहाभावात् । विरुद्धवर्णनो-दितेन=विपरीतकथनोत्पन्नेन, अनौचित्येन=औचित्याभावेन, स्थायी=प्रधानो रसः, श्वभ्रपातितः=गर्तपातितः, हस्तीव=करीव, पुनरुत्थातुं नोत्सहते=न समर्थो भवति, इत्यलम्=इति पर्याप्तम्, विस्तरेण=विस्तारेण । अलमति-विस्तारेण कथनमिति यावत् । अनया=एतया, दिशा=पद्धत्या, रससंकरे=रससम्मिश्रणे, भेदप्रपञ्चौचित्यम्=भेदविस्तारौचित्यम्, विपश्चिद्भिः, स्वयं विचार्यम्=स्वयमूह्यम् ॥ १८ ॥

रसौचित्यविचारानन्तरमुद्देशानुसारक्रमेण क्रमोपगतं क्रियापदौ-चित्यं दर्शयितुमाह—

सगुणत्वं सुवृत्तत्वं साधुता च विराजते ।
काव्यस्य सुजनस्येव यद्यौचित्यवती क्रिया ॥ १९ ॥

अर्थः —रस के औचित्य-विचार के अनन्तर अब उद्देश्य के अनुसार क्रम से क्रम-प्राप्त क्रियापद के औचित्य को दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—

अन्वयः—यदि, क्रिया, औचित्यवती, (अस्ति, तदैव), काव्यस्य, सगुण-त्वम्, सुवृत्तत्वम्, च, साधुता, सुजनस्य, सगुणत्वम्, सुवृत्तत्वम्, च, साधुता, इव, विराजते ॥ १९ ॥

शब्दार्थ :—यदि=यदि, क्रिया=क्रिया-पद, औचित्यवती=औचित्यपूर्ण, (अस्ति=है, तदैव=तभी), काव्यस्य=काव्य के, सगुणत्वम्=माधुर्य आदि

८ औ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुण, सुवृत्तत्वम्=अच्छे-अच्छे छन्द, च=और, साधुता=व्याकरण की दृष्टि से शब्दों की शुद्धि, सुजनस्य=सज्जनव्यक्ति के, सगुणत्वम्=दया, दाक्षिण्य आदि गुण, सुवृत्तत्वम्=सदाचरण, च=और, साधुता=सज्जनता की, इव=तरह, विराजते=अधिक शोभित होते हैं ॥ १९ ॥

अर्थ :—यदि क्रिया-पद औचित्यपूर्ण है तभी काव्य के माधुर्य आदि गुण, अच्छे-अच्छे छन्द और व्याकरण की दृष्टि से शब्दों की शुद्धि, सज्जन व्यक्ति के दया, दाक्षिण्य आदि गुण, सदाचार और सज्जनता की तरह अधिक शोभित होते हैं ॥ १९ ॥

टीका—रसौचित्यविवेचनानन्तरं "पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे" इत्याद्युद्देशक्रमप्राप्तं सप्तमं क्रियापदौचित्यं विवेचयितुमुपक्रमते—रसगुणत्वमिति। यदि क्रिया=क्रियापदमित्यर्थः, औचित्यवती=औचित्यपूर्णा, अस्ति तदैवेति शेषः, काव्यस्य=कविकर्मणः, सगुणत्वम्=माधुर्यादिगुणयुक्तत्वम्, सुवृत्तत्वम्—सु=सुष्ठु, वृत्तम्=छन्दः शिखरिण्यादिकं यस्मिन् तत् तस्य भावस्तत्त्वम्, साधुता=व्याकरणसिद्धता, च=अपि, सुजनस्य=सज्जनपुरुषस्य, सगुणत्वम् = दयादाक्षिण्यादिगुणयुक्तत्वम्, सुवृत्तत्वम्=सदाचरणम्, च=तथा, साधुता=सज्जनता, इव=यथा, विराजते= शोभते क्रियापदौचित्येनैव गुणादीनां काव्ये चारुता भवतीति भावः ॥ १९ ॥

काव्यस्य माधुर्यादिगुणवत्ता वसन्ततिलकादिसुवृत्तता परिपूर्णलक्षणसाधुता च विराजते, यद्यौचित्ययुक्तं क्रियापदं भवति सुजनस्येवेति तत्तुल्यत्वं स्पष्टार्थमेव।

अर्थ :—कारिका के आशय को स्पष्ट कर रहे हैं :—

यदि औचित्य युक्त क्रियापद है तभी काव्य की माधुर्य आदि गुणवत्ता, वसन्ततिलका आदि छन्द से युक्तता और व्याकरण की दृष्टि से शब्दों की साधुता अथवा अलङ्कारशास्त्र की दृष्टि से सर्वलक्षणसम्पन्नता सुशोभित होती है। "सुजनस्येव" इस कथन से सत्पुरुष के साथ ज्ञात होने वाली काव्य की समानता स्पष्ट ही है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—काव्यस्येति । यद्यौचित्यपूर्णं क्रियापदं भवति तदैव माधुर्यादयः काव्ये शोभन्ते नान्यथेति भावः । सुजनेन सह काव्यस्य साम्यं तु स्पष्टमेति । शेषं सुस्पष्टमेव ॥

क्रियापदौचित्यं यथां मम नीतिलतायाम्—

> यः प्रख्यातजवः सदास्थितिविधौ सप्ताब्धिसंध्यार्चने,
> दोर्दर्पेण निनाय दुन्दुभिवपुर्यः कालकङ्कालताम् ।
> यः पातालमसृङ्मयं प्रविदधे निष्पिष्य मायाविनं,
> सुग्रीवाग्रयविभूतिलुण्ठनपटुर्बाली स किं स्मर्यते ॥

अर्थ :—क्रियापद के औचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—क्रियापद के औचित्य के उदाहरण के लिये मेरी "नीतिलता" का निम्न पद्य देखा जा सकता है—

इस पद्य में शुक्र एवं सारण नामक चारण रावण से कह रहे हैं—

महाराज, सातों समुद्रों में एक साथ संध्या करने के लिये जो बालि उन (सातों समुद्रों) की यात्रा अतिवेग से कर लिया करता था, जिसने अपने बाहुबल से (महिष रूपधारी) दुन्दुभि नामक राक्षस के शरीर को मृत्यु के द्वारा कङ्कालमात्र बना दिया (अर्थात् जिसे मार डाला) तथा मायावी नामक राक्षस को पीसकर (अर्थात् मसलकर चूर्ण बना के) पाताल को रक्तरञ्जित बना डाला था, एवं जो अपने ही लघु-बन्धु सुग्रीव के धन-दारादि का अपहरण कर लिया था, भला उस बालि की याद किसलिये करनी चाहिये ?

टीका—क्रियापदौचित्यमुदाहर्तुमाह—यः प्रख्यातजव इति । शुकसारण-नामकयोश्चारणयो रावणं प्रत्युक्तिरियम् । सप्ताब्धिसंध्यार्चने—सप्तसु=सप्त-संख्याकेषु अब्धिषु=समुद्रेषु संध्यायाः अर्चने=पूजने, सम्पादन इति यावत्, स्थितिविधौ=वर्तमानतायाम्, यः=यो बालिः, सदा=सर्वदा, प्रख्यातजवः—प्रख्यातः=प्रसिद्धो जवः=वेगो यस्य स तादृश आसीदिति शेषः । तस्यैवं प्रसिज्ञाऽऽसीद्यदहमेकस्मिन्नेव काले, सूर्योदयावसरे सूर्यास्तकाले च, सप्तसु समुद्रेषु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्ध्यां करिष्यामि । तां निर्वोढुं सोऽतिवेगेन सप्तसु सागरेषु गमनप्रवृत्त, आसीदिति । यो दोर्दर्पेण=भुजबलाभिमानेन, दुन्दुभिवपुः = दुन्दुभेः=महिषरूपधारिणो दुन्दुभिराक्षसस्य वपुः=शरीरम्, कालकङ्कालताम्—कालेन=मृत्युना कङ्कालताम्=अस्थिपञ्जरताम्, निनाय=प्रापितवान् । यो मायाविनम्=मायावीनामानं राक्षसम्, निष्पिष्य=चूर्णयित्वा, पातालम्=पाताललोकम्, असृङ्मयम्=रुधिरबहुलम्, प्रविदधे=कृतवान्, तथा यः सुग्रीवाग्र्यविभूतिलुण्ठनपटुः—सुग्रीवस्य=स्वानुजस्य सुकण्ठस्य अग्र्यविभूतेः=उत्तमधनदारादिसम्पत्तेर्लुण्ठने पटुः=प्रवीणः, आसीदिति क्रियाशेषः, सः=तादृशो बालिः, किम्=किमर्थम्, स्मर्यते=शोच्यते ?

अत्र सप्ताब्धिसंध्यार्चनप्रख्यातजवो महिषरूपदुन्दुभिदानवोन्माथी मायाविदानवनिष्पेषोद्भूतशोणितपूरितपातालतलः स किं बाली स्मर्यत इति क्रियापदेन शुकसारणाभ्यां रावणस्य दुर्नयाभिनिवेशिनस्तद्विरामाय हितोपदेशेन भवान्वसनकोणनियमिततनुः कक्षायां निःक्षिप्त इत्युचितयुक्तियुक्तमुक्तं भवति ।।

अर्थः—इस पद्य में सातो समुद्रों में संध्या-वन्दन के लिए अतिवेग से जाने के लिए प्रसिद्ध, महिष रूपधारी दुन्दुभि नामक दैत्य को मारने वाला, मायावी दानव को पीस देने से बहे रुधिर से पाताल लोक को भर देने वाला बालि क्यों याद किया जा रहा है ? (अर्थात् उसका स्मरण करना उचित नहीं है) । इस वाक्य में क्रियापद के द्वारा शुक एवं सारण ने कुमार्गगामी रावण को कुमार्ग या दुर्नीति से रोकने के लिये जो हितोपदेश दिया है, उससे "आपको भी उसने अपने दुपट्टे के कोने में बाँधकर काँख में अथवा झोली में रख लिया था" यह उचित, युक्तियुक्त भाव भी यहाँ स्पष्ट होता है ।

कहने का भाव यह है कि यहाँ जैसा बालि का वर्णन किया गया है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह नगण्य था अथवा स्मरण करने के योग्य न था । ऐसी स्थिति में निषिध्यमान स्मरण क्रियावाचक पद के द्वारा यह सिद्ध होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य है। यह रहस्य यही हो सकता है कि बालि ने रावण को भी काँख या झोली में रख लिया था। यह रहस्य क्रियापद के द्वारा ही प्रकट होता है। अतः इसे क्रियापद के औचित्य का स्पष्ट उदाहरण कहा जा सकता है।

टीका—अत्र सप्ताब्धीत्यादि। अत्र=उक्ते पद्ये, "सप्ताब्धीत्यारभ्य स किं वाली स्मर्यते" इति समापनवचनेन 'स्मर्यते' इति क्रियापदेन, शुकसारणाभ्याम्=तन्नामकरावणसेवकाभ्यांम्, दुर्नयाभिनिवेशिनः—दुर्नये=दुर्नीतौ अभिनिवेशः=आग्रहोऽस्त्यस्य तादृशस्य, रावणस्य=दशकण्ठस्य, तद्विरामाय—ततः=दुर्नीतिः विरामाय = निषेधाय, हितोपदेशेन = कल्याणवचनशिक्षया, "भवान्=स्वयं रावण इत्यर्थः, वसनकोणनियमिततनुः—वसनस्य=वस्त्रस्य कोणेन=अञ्चल-प्रान्तेन नियमिता=यन्त्रिता तनूः=शरीरं यस्य तादृशः सन्, कक्षायाम्=हस्त-मूलाभ्यन्तरे, निक्षिप्तः=स्थापितः, इत्युचितयुक्तियुक्तम्=समुचिततर्कसम्मतम्, उक्तम्=कथितम्, भवति=अस्ति। इदमत्राकूतं—वर्णनेऽस्मिन्नास्ति किमपि येन वाली प्रसंशितो न भवति न चास्ति बालिस्मरणमसंगतं तथापि निषिध्य-मानया स्मरणक्रिययेदं निश्चीयतेऽस्त्यत्र निषेधेऽपि किञ्चिद्रहस्यं यद्रावणस्य बालिकुक्षिनिवासमन्तरा नान्यद्भवितुं शक्नोति। एतच्चवैशिष्ट्यं क्रियापदेनैवाव-गम्यते॥

न तु यथा श्रीप्रवरसेनस्य—

सग्गं अपारिजाअं कोत्थुहलच्छिरहिअं महुमहस्सउरं।
सुमिरामि महणपुरओ समुद्धअन्दं हरअडापब्भारं॥

क्रियापदानौचित्यस्यादोहरणमुपस्थापयितुमाह—न तु यथेति।

'सग्गं इति।'

स्वर्गमपारिजातं कौस्तुभलक्ष्मीभ्यां विरहितं मधुमथनस्योरः।
स्मराम्यमृतमथनपुरोप्यबालचन्द्रं . हरजटाप्राग्भारम्॥

इति छाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—क्रियापद के अनौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा श्रीप्रवरसेन का निम्नलिखित पद्य है। इस पद्य में "मैं कितना पुराना हूँ" वह इसी भाव को प्रकट कर रहा है—

पारिजात जब नहीं था उस समय के स्वर्ग को, कौस्तुभमणि तथा लक्ष्मी से शून्य विष्णु के वक्षःस्थल को तथा अमृत-मन्थन के पूर्व बालचन्द्र से विहीन शंकर के जटाजूट का मैं स्मरण कर रहा हूँ॥

विशष—अमृतमथनपुरतः—सागर-मन्थन से पारिजात, कौस्तुभमणि, लक्ष्मी तथा चन्द्रमा निकले थे। जाम्बवान् का कहना है कि मैं इनके पूर्व की अवस्था जानता हूँ। अर्थात् समुद्र-मन्थन मेरे जीवन की घटना है।

टीका—क्रियापदानौचित्यस्योदाहरणमुपस्थापयितुमाह— स्वर्गमपारिजात-मिति। अमृतमथनपुरतः=सागरमथनात् प्राक्, अपि = च, अपारिजातम्= परिजातविरहितम्, स्वर्गम्=नाकम्,कौस्तुभलक्ष्मीभ्याम्=कौस्तुभमणिश्रीभ्याम्, विरहितम्=शून्यम्, मधुमथनस्य=मधुसूदनस्य विष्णोरिति यावत्, उरः= वक्षस्थलम्, अबालचन्द्रम्=बालचन्द्ररहितम्, हरजटाप्राग्भारम्=शिवकेश-कलापम्, स्मरामि=जानामीत्यर्थः। एते सर्वे मथनकाले समुद्रान्निःसृताः सन्ति। समुद्रमन्थनात् पूर्वमप्यहमासमिति भावः॥

अत्र जाम्बवताऽभिधीयमाने "स्वर्गमपारिजातं कौस्तुभलक्ष्मीभ्यां विरहितं मधुमथनस्योरः, स्मराम्यमृतमथनपुरतोऽप्यबालचन्द्रं हर-जटाप्राग्भारम्" इति प्रगुणगुणाख्यानप्रसङ्गे क्रियापदेन जराजर्जर-शरीरत्वमात्रमेव प्रतिपादितम् न तु पौरुषोत्कर्षविशेषातिशयः कश्चि-दुचितः संसूचितः॥ १९॥

अर्थः—इस पद्य में जाम्बवान् ने "स्वर्गमपारिजातम्" इत्यादि के द्वारा अपने उत्कृष्ट गुणों के प्रकाशन के प्रसंग में 'स्मरामि' इस क्रियापद का जो प्रयोग किया है, उससे उसका शरीर जरा (वृद्धावस्था) से जर्जर हो गया है—केवल इतना भर ही सूचित है। इससे उसके किसी अति विशिष्ट पौरुष की सूचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं मिलती। और वस्तुतः वह इसे अपने पौरुष के वर्णन के प्रसंग में ही कह रहा है। अतः यहाँ यह क्रियापद औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता ॥ १९ ॥

टीका—अत्र जाम्बवतेति। अत्र स्वपौरुषख्यापनचिकीर्षुणा वक्तुस्तस्य केवलं जराजर्जरशरीरत्वमात्रम् = वार्धक्यकम्पितगात्रमात्रम्, कथितम् = समर्थितं भवति, न तु पौरुषोत्कर्षविशेषातिशयः = सामर्थ्याधिक्यवैशिष्ट्यम्, संसूचितः = प्रकाशितो जायते। अतोऽत्रौचित्यविरहितमेव स्मरामीति क्रियापदमिति ॥ १९ ॥

कारकौचित्यं दर्शयितुमाह—

सान्वयं शोभते वाक्यमुचितैरेव कारकैः।
कुलाभरणमैश्वर्यमौदार्यचरितैरिव ॥ २० ॥

अर्थ :—क्रियापद के औचित्य और अनौचित्य को दिखलाकर अब क्रम प्राप्त अष्टम कारकौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कहा जा रहा है—

अन्वयः—औदार्यचरितैः, कुलाभरणम्, ऐश्वर्यम्, इव, उचितैः, कारकैः, एव, सान्वयम्, वाक्यम्, शोभते ॥ २० ॥

शब्दार्थः—औदार्यचरितैः = औदार्य आदि सच्चरित्रों से, कुलाभरणम् = सद्वंश से अलंकृत, ऐश्वर्यम् = धन-सम्पत्ति की, इव = तरह, उचितैः = योग्य, कारकैः = कारकों से, एव = ही, सान्वयम् = अन्वय से युक्त, वाक्यम् = वाक्य, काव्य, शोभते = सुशोभित होता है ॥ २० ॥

अर्थः—जैसे उत्तम कुल से सुशोभित होने पर भी ऐश्वर्य उदारता आदिसच्चरित्रों से ही सुशोभित होता है। उसी तरह अन्वय आदि से भली भाँति युक्त वाक्य (काव्य) कारकों से ही सुशोभित होता है ॥ २० ॥

टीका—क्रियापदौचित्यस्यानौचित्यस्य च प्रदर्शनानन्तरमधुना क्रमप्राप्तमष्टमं कारकौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—सान्वयमिति। औदार्यचरितैः = औदार्यादिसद्गुणैः, कुलाभरणम् कुलम् = सद्वंशः आभरणम् = आभूषणं यस्यैवंभूतम्, ऐश्वर्यम् = प्रभुत्वम्, धनसम्पत्तिर्वा, यथा शोभते तथैव, उचितैः = योग्यैः, कारकैः =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्तृकर्मादिरूपैः, एवेति दार्ढ्यें, सान्वयम्=अन्वयेन युक्तम्, वाक्यम्=काव्यमित्यर्थः, शोभते=शोभामधिगच्छति ।।

उचितैरेव कारकैः सदन्वयद्वाक्यं विराजते सद्वंशभूषितमैश्वर्यं सच्चरितैरिव ।

अर्थ :—कारिका के भाव को स्पष्ट करते हुए कहा जा रहा है—योग्य अन्वय से अलंकृत वाक्य (काव्य) कारकों से उसी तरह सुशोभित होता है, जैसे उत्तम वंश का ऐश्वर्य उत्तम आचरणों से सुशोभित होता है ।।

टीका—कारिकार्थं स्पष्टयति—उचितैरेवेति । सदन्वयत्=सदन्वयसमन्वितम्, वाक्यम्=काव्यमिति यावत्, उचितैः=अनुरूपैः, कारकैरेव, तथा विराजते=सुशोभते यथा सद्वंशविभूषितम्=उच्चकुलालङ्कृतम्, ऐश्वर्यम्=सम्पत्तिः, सच्चरितैः=सदाचरणैः, विराजते=शोभते ।।

कर्तृपदौचित्यं यथा भट्टबाणस्य—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः ।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ।।

अर्थ :—कारकौचित्य के प्रदर्शन-क्रम में सर्वप्रथम कर्तृपद का औचित्य दिखलाने के लिए कह रहे हैं—कर्तृपद के औचित्यपूर्ण प्रयोग के लिए बाणभट्ट का यह प्रयोग देखा जा सकता है—

आपके शत्रुओं की स्त्रियों का आँसूओं से स्नान किया हुआ (भींगा हुआ) हृदय स्थित शोकाग्नि के पास वर्तमान तथा मौक्तिक-माला से विहीन (पक्षांतर में—भोजन का परित्याग किया हुआ) स्तन-युगल मानो व्रत का आचरण कर रहा है ।

विशेष—व्रत, तपस्या में निरत व्यक्ति त्रिकाल स्नान करता है, पञ्चाग्नि तापता है तथा भोजन का परित्याग कर देता है । यहाँ राजा के शत्रु मारे गये हैं । अतः उनकी स्त्रियाँ निरन्तर रो-रो कर अपने स्तनों को सींचती रहती हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नान कराती रहती हैं, उन विधवा रानियों के हृदय में शोक की ज्वाला धधक रही है, पार्श्ववर्ती स्तन उस ज्वाला से झुलस रहे हैं, विधवायें श्रृङ्गार नहीं करती हैं, अतः उन लोगों ने भी हार पहनना छोड़ दिया है। इन सब कारणों से प्रतीत होता है कि राजा के शत्रुओं की विधवाओं के स्तन मानो तपस्या में लगे हुए हैं।

टीका—कारकपदौचित्यप्रदर्शनक्रमे क्रमप्राप्तं–प्रथमं कर्तृपदौचित्यमुपस्थापयितुमाह—स्तनयुगमिति। कादम्बर्यां राज्ञः शूद्रकस्याशीर्वचनरूपेणाऽयं श्लोकः पठितोऽस्ति शुकद्वारा। हे राजन्, भवतः=श्रीमतः, रिपुस्त्रीणाम्=शत्रु वनितानाम्, अश्रुस्नातम्–अश्रुभिः=नेत्रजलैः स्नातम्=कृताभिषेकम्, हृदयशोकाग्नेः=पतिमरणाद्धृदये जातो यो शोकः स एवाग्निस्तस्य, समीपतरवर्ति=निकटे वर्तमानम्, विमुक्ताहारम्=हारधारणरहितम्, स्तनयुगम्=कुचयुगलम्, व्रतमिव=तप इव, चरति=आचरति। अन्योऽपि तपसि संलग्नः स्नानं करोति, अग्निं तपति आहारञ्च विमुञ्चतीति साम्यम्॥

अत्र शत्रुस्त्रियो व्रतं चरन्तीति वक्तव्ये स्तनयुगं बाष्पसलिलस्नातं शोकाग्निसमीपवर्ति विमुक्तभोजनं विगतमुक्ताहारं च सद्व्रतं चरतीत्युक्ते कर्तृपदमौचित्यमुपचितं जनयति।

अर्थ:—इस पद्य में "शत्रु की स्त्रियाँ व्रत का अनुष्ठान कर रही हैं" ऐसा कहना था, किन्तु उसके स्थान पर "शत्रु स्त्रियों के कुच-युगल अश्रुजल से स्नान किये हुए; हृदय शोकाग्नि के समीपवर्ती तथा मौक्तिकहार (पक्षा०–भोजन) का परित्यागकर तपस्या-सा कर रहे हैं" यह कहा गया है। ऐसा करने से कर्तृपद उत्कृष्ट कोटि के औचित्य को प्रकाशित कर रहा है।

टीका—अत्रेति। अत्र उक्ते पद्ये, "शत्रुस्त्रियो व्रतं चरन्ति" इति वक्तव्ये =अभिधेये, "स्तनयुगं बाष्पसलिलस्नानं, शोकाग्निसमीपवर्ति, विमुक्तभोजनं विगतमुक्ताहारं च सद्व्रतं चरति" इत्युक्ते=इति कथने, कर्तृपदम्=औचित्यम्=उचितभावम्, जनयति=अभिव्यनक्ति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नतु यथा परिमलस्य

आहारं न करोति नाम्बु पिबति स्त्रैणं न संसेवते,
शेते यत्सिकतासु मुक्तविषयश्चण्डातपं सेवते।
त्वत्पादाब्जरजःप्रसादकणिकालोभोन्मुखस्तन्मरौ,
मन्ये मालवसिंह ! गुर्जरपतिस्तीव्रं तपस्तप्यते॥

अर्थ :—कर्तृ पद के अनौचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा परिमल कवि का निम्न पद्य है।

हे मालव देश के अधीश्वर, (आप से पराजित होकर) गुर्जराधिपति मरुकानन में प्रवेश कर, न तो भोजन करता है और न जल ही पीता है। वह स्त्री जनों का भी सेवन नहीं करता है। बालुओं पर तो वह सोता है। भोग-सामग्री का परित्याग कर प्रचण्ड सूर्य-किरणों का सेवन करता है। इस प्रकार मालूम पड़ता है कि आप के चरण-कमल की धूलि के कृपालेश को प्राप्त करने के लिए वह भीषण तप कर रहा है॥

टीका—कर्तृपदानौचित्यं प्रदर्शयितुं कवेः परिमलस्य पद्यमुदाहरते-आहारमिति। गुर्जरदेशे कृतविजयस्य मालवपतेः प्रशंसायां श्लोकोऽयं निर्मितः। हे मालवसिंह=हे मालवाधिराज, पराजितो गुर्जरपतिः मरुकानने प्रविश्य, आहारम्=भोजनम्, न करोति=न विदधाति, न च अम्बु=जलम्, पिबति=आचामति, न चापि, स्त्रैणम्=स्त्रीसमवायम्, न संसेवते=नाङ्गीकरोति. यत्=यतः, सिकतासु=वालुकासु, शेते=स्वपिति, मुक्तविषयः=परित्यक्तभोगसाधनः, चण्डातपम्=प्रतपन्तं सूर्यम्, सेवते=भजते, अतः, मन्ये=अनुमिनोमि, सः, त्वत्पादाब्जेति—तव=भवतः पादौ=चरणौ एव अब्जे=कमले तयोः-रजांसि=परागाः तेषां प्रसादः=प्रसन्नता, कृपेति यावत्, तस्य कणिका=लेशस्तस्य लोभेनोन्मुखः=तत्परः सन्, तीव्रम्=कठोरम्, तपः=तपस्याम्, तप्यते=विदधातीति॥

अत्र गुर्जरपतिर्विद्रुतो मरुगहनं प्रविष्टः प्ररित्यक्ताहाराविसमस्त-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयश्चण्डातपोपसेवी तपश्चरतीति. यदुक्तं तत्कर्तृपदस्य विशेषाभिप्रायोचितं न किञ्चिदुपलक्ष्यते शत्रुत्रासतरलतया मरुकान्तारान्तरावसन्नः सकलविषयसुखभोगपरिभ्रष्टः किमन्यत्कुरुताम्। स्तनयुगवत्कर्तृपदस्य चमत्कारोचितं न किंचिदभिहितम्।

अर्थः—इस पद्य में "पराजित गुर्जर नरेश मरुस्थल के घोर जङ्गल में प्रवेश कर गया है, आहार आदि समग्र विषयों का परित्याग कर सूर्य की प्रचण्ड किरणों को सहते हुए तपस्या कर रहा है।" इस कथन से कर्तृपद के विशिष्ट अभिप्राय के योग्य ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता जिससे उसका (कर्तृपद का) औचित्य हो सके, क्योंकि शत्रु से भयभीत अतः मरुस्थल के जंगल में शरण लिया हुआ, सम्पूर्ण विषय भोगों से वञ्चित वह बेचारा और कर ही क्या सकता है? पूर्वकथित "स्तनयुगमश्रुस्नातम्" इस पद्य में जैसा चमत्कार स्तनयुग के तप से प्रतीत होता है, उस तरह का चमत्कारिक अर्थ यहाँ कुछ प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार इस श्लोक में कर्तृपद का अनौचित्य स्पष्ट ही परिज्ञात होता है॥

टीका—अत्र गुर्जरपतिः=गुर्जरराजः, विद्रुतः=पलायितः सन्, मरुगहनम्=मरुस्थलकाननम्, प्रविष्टः=गतः, परित्यक्ताहारादिसमस्तविषयः=परित्यक्तनिखिलभोजनादिसाधनः चण्डातपोपसेवी—चण्डातपस्य=तीक्ष्णघर्मस्य उपसेवी=सहनशीलः, तपः=तपस्याम्, चरति=करोति—इति=एवं रूपेण यदुक्तम्=यत्कथितम्, तत्, कर्तृपदस्य=गुर्जरपतिरूपस्य कर्तृपदस्य, विशेषाभिप्रायोचितम्=विशिष्टतात्पर्यानुरूपम्, न किञ्चिदुपलक्ष्यते=न किञ्चिद्विज्ञायते, यतः शत्रुत्रासतरलतया शत्रोः=रिपोः त्रासेन=भयेन तरलतया=चञ्चलतया, मरुकान्तारावसन्नः—मरुकान्तारे=मरुकानने अवसन्नः=छुपितः, सकलविषयसुखभोगपरिभ्रष्टः=सकलसुखभोगवञ्चितः, अन्यत्=अपरम्, किं कुरुताम्=विधीयताम्। स्तनयुगवत्=स्तनयुगमिति पद्ये वर्तमानं स्तनयुगमिव, अत्र कर्तृपदस्य चमत्कारोचितम्=चमत्कारयोग्यम्, न किञ्चिदभिहितम्=न किञ्चित्क-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितम् । यथा चमत्कारजनकं स्तनयुगमिति पदं न तथा चमत्कारकारणमत्र कर्तृपदमिति । अतोऽत्र कर्तृपदस्यानौचित्यं सुस्पष्टमेव ॥

कर्मपदौचित्यं यथा मम लावण्यवत्याम्—

सदा सक्तं शैत्यं विमलजलधारापरिचितं,
घनोल्लासः क्ष्माभृत्पृथुकटकपाती वहति यः ।
विधत्ते शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः,
स चित्रं शत्रूणां ज्वलदनलतापं भवदसिः ॥

अर्थः—कर्मपद के औचित्य को दिखलाने के लिए कहते हैं कि—कर्मपद का औचित्य मेरे "लावण्यवती" नामक काव्य के इस पद्य में देखा जा सकता है—

हे राजन्, जो (आपका खड्ग) शत्रु की विशाल सेना पर प्रहार करने वाला, अत्यन्त स्फूर्ति-सम्पन्न अथवा मेघ की तरह उदित होने वाला, निर्मल जल की धारा की शीतलता को सदा धारण करने वाला, शौर्य-लक्ष्मी के कानों के नवीन नीलकमल की कान्ति से सम्पन्न है वही शत्रुओं के लिए धधकती हुई आग की तरह सन्तापदायक है—यह बड़ी विचित्र बात है ॥

विशेषः—खड्ग निर्मल जलधार की तरह शीतल है, शीतल मेघ की भाँति उदित होने वाला है, नील-कमल की शोभा से सम्पन्न है । अतः उसे शीतल होना चाहिए । किन्तु आग की तरह सन्तापक है—यही बड़ी विचित्र बात है—इसी बात को कवि यहाँ कह रहा है । कहने का भाव यह है कि आपके खड्ग से शत्रु सदा भयभीत रहते हैं ॥

टीका—कर्तृपदौचित्यप्रदर्शनान्तरं कर्मपदौचित्यमुदाहर्तुमाह—सदा सक्तमिति यो भवताम् असिः=खड्गः, क्ष्माभृत्पृथुकटकपाती—क्ष्माभृतः=राजानस्तेषां पृथुः=विशालो यः कटकः=सैन्यम् तस्मिन् पाती=पतनशीलः, घनोल्लासः=घनः=मेघ इव उल्लासः=उदयो यस्य सः, अथवा घनः=निबिड उल्लासः=स्फुरणं यस्य तादृशः, सक्तम्=संलग्नम्, विमलजलधारापरिचितम्—विमला=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्मला या जलधारा=सलिलधारा तस्याः परिचितम्=सम्बन्धि, शैत्यम्=शीतलताम्, सदा=सर्वदा, वहति=धारयति, तथा यः शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः—शौर्यस्य = पराक्रमस्य श्रीः=लक्ष्मीस्तस्याः श्रवणयोः = श्रोत्रयोः नवे=नवीने उत्पले = नीलकमले तयोः रुचिः=कान्तिरिव रुचिर्यस्य तादृशः, अस्तीति शेषः, सः शत्रूणाम्=अरीणाम्, ज्वलदनलतापम्=प्रज्ज्वलिताग्निसन्तापम्, विधत्ते=करोतीति, चित्रम्=आश्चर्यकरमेव। अनेन तव शत्रवः सदा तवखड्गेन भीताः सन्तीति सूचितम्। जलधारादितुल्यतया तस्य शैत्यकरत्वमेवोचितमिह तु सन्तापयतीति चित्रमेवेति ॥

अत्र निश्चलममलजलधारागतं शैत्यं तैक्ष्ण्यं शीतलत्वं च घनोल्लासो निविडोत्साहः पर्जन्यतुल्योदयश्च क्ष्माभृतां सानुसैन्यनिपाती वहति स शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलतुल्यस्त्वत्खड्गश्चित्रं शत्रूणां संतापं करोतीति यदुक्तं तत्कर्मभूतस्य तापस्य शिशिरतरसामग्रीजन्मनः परं वैचित्र्यं रुचिरमौचित्यमासूत्रितम्।

अर्थः—इस पद्य में खड्ग की समता निर्मल एवं शीतल जल की धार तथा शीतल नील कमल से दिखलाई गई है फिर उससे सन्तप्त करने की बात कही गई है। इस प्रकार अत्यन्त शीतल सामग्री से कर्मभूत ताप के जन्म की जो बात कही गई है, उससे अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण एवं मनोहारी औचित्य की सृष्टि होती है ॥

टीका—अत्र निश्चयमिति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, "यः विमलजलधारा परिचितं सक्तं शैत्यं सदा वहति" तथा "शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः' आद्यंशैरसैः शीतलताधारित्वं प्रतीयते कोमलत्वञ्चाभिधीयते, एवमतिशिशिरात्तापस्य विरुद्धत्वमप्युच्यमानं वैचित्र्यौचित्यविधायकमिति कर्मकारकौचित्यस्योदाहरणतां गच्छति पद्यमेतदिति ॥

न तु यथा ममैवावसरसारे—

भग्नाहितश्वसितवातविबोध्यमानः
काष्ठाश्रयेण सहसैव विवृद्धिमाप्तः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तापं तनोति निहतारिविलासिनीनां
वह्निद्युतिर्भुवननाथ ! भवत्प्रतापः ॥

अर्थ :—कर्मपद के अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा हमारे ही द्वारा निर्मित ग्रन्थ 'अवसर सार' में कहा गया है—

हे महाराज, भागे हुए शत्रुओं के निःश्वास वायु से जलाया गया, दिशाओं के आश्रय से झटिति अत्यन्त वढ़ा हुआ, अग्नि की तरह प्रकाशशील आपका प्रताप (संग्राम में) मारे गये शत्रुओं की सुन्दरियों के ताप को वढ़ा रहा है ॥

विशेष :—अग्नि भी वायु से प्रज्वलित किया जाता है, काष्ठ के सहारे बढ़ता है और ताप देता है ॥

टीका—कर्मपदानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—भग्नाहितेत्यादि। हे भुवननाथ= हे अखण्डभूमण्डलैकाधिपते, भग्नाहितश्वसितवातविबोध्यमानः—भग्नाः=संग्रामात् पलायिताः ये अहिताः=शत्रवस्तेषां श्वसितवातेन=श्वासवायुना विबोध्यमानः=प्रज्वाल्यमानः, काष्ठाश्रयेण—काष्ठानाम्=दिशाम् आश्रयेण=संसर्गेण, अन्यत्र काष्ठानाम्=इन्धनानाम् आश्रयेण=साहाय्येन, सहसैव=झटित्येव, विवृद्धिम्=सम्पन्नताम्,आप्तः=प्राप्तः, अत एव, वह्निद्युतिः=वह्निरिव=अग्निरिव द्युतिः=कान्तिर्यस्य तादृशः, अग्निरपि वायुसाहाय्येन प्रज्वलितः काष्ठाश्रयेण च वर्धते, भवत्प्रतापोऽपि तथैवास्तीत्युभयोस्तुल्यतेति भावः, एतादृशो भवत्प्रतापः=भवत्तेजः, निहतारिविलासिनीनाम्— निहताः=युद्धेषु हंता येऽरयः =शत्रवस्तेषां विलासिन्यः=सुन्दर्यस्तासां तथाभूतानाम्, तापम्=सन्तापम्, तनोति=विस्तारयतीति यावत् ॥

अत्र विद्रुतारिनिःश्वसितानिलप्रबोध्यमानः काष्ठाश्रयेण दिक्चक्रपूरणेन प्रौढतां प्राप्तः पावकतुल्यस्त्वत्प्रतापः शत्रुकान्तानां तापमात्रं
२० **तनोतीति तत्समुचितमाश्चर्यं न किंचित् ।**

अर्थ :—इस पद्य में संग्राम से भागे हुए शत्रुओं के निःश्वास वायु से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रज्वलित किया गया, दिशा के आश्रय से प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ, अग्नितुल्य आपका प्रताप शत्रुललनाओं को तापमात्र प्रदान कर रहा है"—यह कार्य अग्नि तुल्य उस प्रताप के अनुकूल ही है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बल्कि इसके विपरीत न जलाना ही आश्चर्यजनक होता।

टीका—अत्र पद्ये भग्नाहितेत्यारम्य तापं तनोतीति यदुक्तं तत्तु समुचितमेव = समीचीनमेव, अत्र न किञ्चिदाश्चर्यम् = नास्ति किञ्चिदप्याश्चर्यंकरम्। अग्नेस्तापस्तु जगद्विदित एव। तत्तुल्यस्य प्रतापस्यापि तथाविधत्वमेव सामान्यम्। शत्रुललनानां हृदि तापप्रदानेन वह्नितुल्यप्रतापेन यदाचरितं तत्तु स्वाभाविकमेव न किञ्चिद्वैशिष्ट्यं चमत्कारातिशयो दर्शितः इति सिद्धं कर्मपदानौचित्यमिति बोध्यम्॥

करणौचित्यं यथा गौडकुम्भकारस्य—

लाङ्गूलेन गभस्तिमान्वलयितः प्रोतः शशी मौलिना,
व्याधूता जलदाः सटाभिरुडवो दंष्ट्राभिरुत्तम्भिताः।
प्रोत्तीर्णो जलधिर्दृशैव हरिणा स्वैराट्टहासोर्मिभि-
र्लङ्केशस्य च लङ्घितो दिशि दिशि प्राज्यः प्रतापानलः॥

अर्थः—कर्मपद के औचित्य-अनौचित्य को दिखलाने के बाद अब करणपद के औचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं कि—करणपद के औचित्य के लिए गौडकुम्भकार का निम्न पद्य देखा जा सकता है—

(जिस समय माँ जानकी की खोज में हनुमान सागर को लाँघ रहे थे उस समय की स्थिति का वर्णन कवि कर रहा है) हनुमान् ने अपनी पूँछ से सूर्य को लपेट लिया, शिरोभाग से उन्होंने चन्द्रमा को व्याप्त कर लिया, सटा (गर्दन के बालों) से मेघ-मण्डल इधर-उधर बिखेर दिया। दाँतों (के भय) से नक्षत्र-मण्डली और ऊपर खदेड़ दी गई। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों उन्होंने आँख से ही सागर को पारकर लिया हो, उनके द्वारा किये गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अट्टहास की तरङ्गों से चतुर्दिक प्रसरित रावण का दुर्दान्त प्रतापानल लांघ लिया गया ॥

टीका—कर्मपदौचित्यानौचित्ये प्रदर्श्याधुना करणपदौचित्यमुदाहर्तुमाह—लाङ्गूलेनेति। समुद्रं लङ्घयतो हनुमतो वर्णनमिदम्। हरिणा=हनुमता, लाङ्गूलेन=पुच्छेन, गभस्तिमान्=सूर्यः, वलयितः=परिवेष्टितः; मौलिना=मस्तकेन, शशी=चन्द्रः, प्रोतः=अभिव्याप्तः, सटाभिः=गललोमभिः, जलदाः=मेघाः, व्याधूताः=इतस्ततो विस्तारिताः, दंष्ट्राभिः=दन्तैः, उडवः=ग्रहाः, नक्षत्राणि च, उत्तम्भिताः=अधिकमुपरि स्थापिताः, दृशैव=दृष्ट्यैव, जलधिः=सागरः, प्रोत्तीर्णः=लंघित इति यावत्, स्वैराट्टहासोर्मिभिः=स्वच्छन्द-हासलहरीभिः, लङ्केशस्य=रावणस्य, दिशि दिशि=प्रतिदिशम्, प्राज्यः=प्रभूतः, प्रतापानलः=प्रतापवह्निः, लघितः=शमितः, वशीकृत इति यावत्।

अत्र हरिणा हनुमता जलनिधितरणे तरणिर्लाङ्गूलेन वलयितः, किरीटप्रान्तेन शशी प्रोतः,सटाभिर्मेघा व्याधूतास्तारा दंष्ट्राभिराधासि-तास्तीर्णोऽब्धिर्दृष्ट्यैवाट्टहासतरङ्गैर्लङ्केशस्य विस्तीर्णः प्रतापाग्निः शमित इति बहुभिः करणपदैरुत्साहाधिवासितैर्विस्मयशिखरारोहण-सोपानैरिव रघुपतिप्रभावारम्भविजयध्वजायमानस्य पवनसूनोरौचि-त्यातिशयः प्रकाशितः।

अर्थ :—इस पद्य में वानर हनुमान् ने सागर लाँघते समय पूंछ से सूर्य को लपेटा, शिरो भाग से चन्द्र को व्याप्त किया, गलबालों से मेघों को तितर-बितर कर दिया, दाँतों से तारा गणों को ऊपर की ओर भगा दिया, आँखों से ही सागर लाँघ गये, अट्टहासों की तरङ्गों से लङ्काधिपति की विस्तीर्ण प्रतापाग्नि को शान्त कर दिया—इत्यादि उत्साहवर्द्धक एवं विस्मयकारक अनेक करणकारक बोधक पदों से रामचन्द्र के प्रभावरूपी कार्य के प्रारम्भ में विजय-ध्वज जैसा प्रतीत होनेवाले पवन-पुत्र हनुमान का अत्यन्त औचित्य सिद्ध हो जाता है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अत्र हरिणेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, हरिणा हनुमता=वानरेण हनुमता, जलनिधितरणे=सागरलङ्घने, लाङ्गूलेन=पुच्छेन, तरणिः=सूर्यः, वलयितः=वेष्टितः, किरीटप्रान्तेन=मुकुट भागेन, शशी=चन्द्रः, प्रोतः=परिव्याप्तः कृतः, सटाभिः=स्कन्धरोमराजिभिः, मेघाः=पयोदाः, व्याधूताः=इतस्ततः सञ्चालिताः, दंष्ट्राभिः=दन्तपंक्तिभिः, तारा:=नक्षत्राणि, आयासिताः खेदं प्रापिताः, ऊर्ध्वमपसारिता इत्यर्थः, अब्धिः=सागरः, दृष्टयैव=नेत्रेणैव, आस्तीर्णः=लङ्घितः, अट्टहासतरङ्गैः=स्वच्छन्दहास्यलहरीभिः, लङ्केशस्य=लङ्काधिपतेः, विस्तीर्णः=विस्तृतः, प्रतापाग्निः=तेजोवह्निः, शमितः=शान्ति प्रापितः, इति=इत्थम्, उत्साहाधिवासितैः=उत्साहपूर्णैः, विस्मयशिखरारोहणसोपानैरिव = आश्चर्यगिरिशिखरारोहणपदपंक्तिभिरिव, बहुभिः=अनेकैः, करणपदैः = करणकारकबोधकपदैः, रघुपतिप्रभावारम्भविजयध्वजायमानस्य =रघुपतेः—रामचन्द्रस्य प्रभावस्य आरम्भे=प्रारम्भे विजयध्वजायमानस्य= विजयपताकामिवाचरतः, पवनसूनोः=पवनपुत्रस्य हनुमतः, औचित्यातिशयः =औचित्यराशिः, प्रकाशितः=प्रकटीकृतः।

न तु यथा बाणस्य कादम्बर्याम्—

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥

अर्थ :—करणपद के अनौचित्य के उदाहरण को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा बाण की कादम्बरी में है—

भगवान् नृसिंह ने हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को फाड़ने की इच्छा से दूर से उसे अपनी कोपारुण दृष्टि का लक्ष्य बनाया। क्रोध के कारण उनकी लाल दृष्टि से उसका वक्षःस्थल लाल हो गया। उस समय वह ऐसा प्रतीत होता था मानो भय के कारण स्वयं फट गया हो और रुधिर से लाल हो गया हो ॥

टीका—करणपदानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—जयत्युपेन्द्र इति। स विख्यातः अनुजत्वेनेन्द्रमुपगत इत्युपेन्द्रः=नृसिंहरूपधारी विष्णुः जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यो नृसिंहो विभित्सया=भेत्तुमिच्छया, दूरतः = दूरात्, क्षणम् = क्षणकालम्, लब्धम् = प्राप्तम्, लक्ष्यम् = तदेव वक्षःस्थलं यया तया, क्षणं तदुरुस्थलमव—लोकयन्त्या इत्यर्थः, अत एव कोपेन=क्रोधेन अरुणया=लोहितया, दृशैव=दृष्ट्यैव, न तु नखद्वारा भेदनेनेत्येवकारार्थः, रिपोः=वैरिणो हिरण्यकशिपोः, उरः = वक्षस्थलम्, भयात्=नृसिंहत्रासात्, स्वयम् = आत्मना, भिन्नमिव= विदीर्णमिव, अजस्रपाटलम्=स्वीयारुणलोचनरश्मिनिपातेन शोणितवत् श्वेतरक्तम्, चकार=कृतवान् ॥

अत्र भगवतो नृसिंहस्य कोपरक्तया दृष्ट्यैव क्षणलब्धलक्ष्यया हिरण्यकशिपोर्वक्षः स्वयं भयाद्भिन्नमिवेति यदुक्तं तन्महोत्साहपराक्रमस्य प्रतिनायकस्य रिपोः प्रधाननायकप्रतापोद्दीपनोपकरणीभूताधिकधैर्यस्य स्वयं विह्वलतया हृदयस्फुटनमित्युपचितमनौचित्यं "दृशैव" इति करणपदस्य शिरसि विश्रान्तम् ।

अर्थ :—इस श्लोक में "क्षणभर अपने लक्ष्य (हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल) पर टिकने वाली, कोप से आरक्त, भगवान् नृसिंह की आँखों के द्वारा भयवश स्वयं विदीर्ण हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को" यह जो कहा गया है वह अत्यन्त अनुचित है। इसका कारण यह है कि अत्यन्त उत्साही एवं महान् पराक्रमी प्रतिनायक हिरण्यकशिपु का अधिक धैर्य ही प्रधान नायक नृसिंह के प्रताप का उद्दीपक हो सकता है, न कि भय-विह्वलतावश उसके हृदय का स्वयं फट जाना। इस प्रकार यह समृद्ध अनौचित्य "दृशैव" इस करणपद के द्वारा ही उपस्थित हुआ है। अतः इस अनौचित्य का उत्तरदायित्व इसी करणपद पर है ॥

टीका—अत्र भगवत इति। अत्र पद्ये, भगवतः = सकलैश्वर्यवतः, नृसिंहस्य =नृहरेः, कोपरक्तया=क्रोधपाटलया, 'क्षणलब्धलक्षया=निमेषमात्रं शत्रुवक्षसि [illegible], दृष्ट्यैव=नेत्रेणैव, हिरण्यकशिपोर्वक्षः=हृदयम्, स्वयं भयात्= [illegible], भिन्नम्=स्फुटितम्, इवेति, यदुक्तम्=यत्कथितम्, तत् =तत्कथनमित्यर्थः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महोत्साहपराक्रमस्य = उत्साहपराक्रमभरितस्य, प्रधाननायकेत्यादि—प्रधाननायकः=मुख्यो नायको भगवान् नृसिंहः, तस्य प्रतापस्य=तेजसः उद्दीपने=उद्बोधने, उपकरणीभूतम्=कारणीभूतम् प्रतिनायकस्य रिपोः=शत्रोः हिरण्यकशिपोरित्यर्थः, विह्वलतया=भीतिप्राचुर्येण, स्वयमेव हृदयस्फुटनम्=वक्षःस्थलविदीर्णत्वं यद्वर्णितं तेनानौचित्यं वृद्धिमेव गतम्। एतदनौचित्यं "इशैव" इति करणपदस्यैव भाले आपतितम्। वस्तुतस्तु प्रतिनायक महिम्नैव नायकस्य महत्त्वातिशयो व्यज्यते। किन्त्वत्र शूरस्य वीरस्य कृतविद्यस्य प्रतिनायकस्य हिरण्यकशिपोर्वक्षो भीत्या विदीर्णमिति कथनेन नायकस्यापि महत्त्वं तथा न वृद्धिङ्गमितं यथा भाव्यमासीदिति दिक्॥

सम्प्रदानौचित्यं यथा भट्ट प्रभाकरस्य—

दिङ्मातङ्गघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते,
सिद्धा सापि वदन्त एव हि वयं रोमाञ्चिताः पश्यत।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो,
यस्मादाविरभूत्कथाद्भुतमिदं यत्रैव चास्तं गतम्॥

अर्थ :—सम्प्रदान के औचित्य को दिखलाने के लिये कहा गया है कि=सम्प्रदान के औचित्य के उदाहरण के लिये भट्ट प्रभाकर का निम्न पद देखा जा सकता है—

व्यक्ति दिगन्त व्यापिनी पृथिवी की प्राप्ति के लिये प्रयास करते हैं। किन्तु भगवान् परशुराम ने उसे भी प्राप्त कर लिया और फिर उसे एक ब्राह्मण को दान भी कर दिया। इससे बड़ी बात क्या हो सकती है? देखो यह वर्णन करते ही हमें रोमाञ्च हो रहा है। अपूर्व त्यागी भगवान् परशुराम को प्रणाम है। ऐसी अद्भुत दानशीलता की कथा जिससे उत्पन्न हो कर फिर (ऐसा दूसरा उदाहरण न मिलने के कारण) उन्हीं में विलीन हो गई॥

टीका—सम्प्रदानस्यौचित्यमुदाहर्तुं भट्टप्रभाकरस्य पद्यं प्रस्तौति—दिङ्मातङ्गेत्यादि। दिङ्मातङ्गेति—दिङ्मातङ्गानाम्=दिग्गजानाम् या घटा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

=संमर्दस्तया विभक्ताः=विभज्य स्थिरीकृताश्चत्वार आघाटा=अवधिदेशा यस्याः सा तादृशी, मही=पृथिवी, साध्यते=स्वायत्तीकर्तुं प्रयत्यते, जनैरिति शेषः, सिद्धापि=स्वायत्तीकृताऽपि, सा=एतादृशी मही, विप्राय=ब्राह्मणाय कश्यपायेति भावः, प्रतिपाद्यते=दानेऽर्प्यते। किमतः परम्=किमस्मादधिकमाश्चर्यमित्यर्थः। पश्यत, वदन्त एव=कथयन्त एव, कथनसमकालमेवेत्यर्थः, वयम्=स्मरणकर्तारः सांसारिका जनाः, हि=अपि, रोमाञ्चिताः=सञ्जातरोमाञ्चा भवामः। तस्मै=तादृशायानुपमाय दानशीलायेति भावः, रामाय=परशुरामाय, भार्गवपुत्राय, नमः=प्रणामः, अस्त्विति शेषः। यस्मात्=यतो भार्गवात्, इदम्=एदत्, कथाद्भुतम्, आविरभूत्=उत्पन्नम्, यत्रैव=यस्मिन्नेव, चास्तङ्गतम्=विलयङ्गतम्, समानोदाहरणाभावादिति शेषः॥

अत्र दिग्गजचतुरस्रा भूः साध्यते, सा च सिद्धा हेलयैवान्नमुष्टिरिवैकस्मै विप्रमात्राय प्रतिपाद्यते इति निरतिशयौदार्याश्चर्यचमत्काररुचिरौचित्यचर्वणया वयं रोमाञ्चिताः पश्यत रोमाञ्चस्य प्रत्यक्षपरिदृश्यमानत्वात्, किमपरमपूर्वत्यागिने भार्गवाय तस्मै नम इति विप्रायेति सम्प्रदानपदगत एवोत्कर्षविशेषः प्रकाशते।

अर्थः—इस पद्य में "अखिल भू-मण्डल की प्राप्ति के लिये लोग प्रयास करते हैं, किन्तु उसे भी प्राप्त करके मुट्ठी भर अन्न की तरह एक ब्राह्मणमात्र को अनायास ही उसका दान कर दिया। यह जान कर अपूर्व औदार्य, आश्चर्यजनक चमत्कार एवं मोहक औचित्य की चर्वणा से हम लोग रोमाञ्चित हो रहे हैं। यह देख लो। रोमाञ्चप्रत्यक्ष दिखलाई पड़ रहा है। इससे अधिक और कोई क्या कर सकता है? ऐसे अपूर्व महादानी महामुनि भार्गव को नमस्कार है।" इस कथन में जो उत्कर्ष की विशेषता दृष्टिगोचर हो रही है वह एक मात्र "विप्राय" इस सम्प्रदान कारक बोधक पद की ही महिमा है। अतः इस पद्य को सम्प्रदानगत औचित्य के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में रक्खा गया है।

टीका—अत्र दिग्गजेत्यादि। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, दिग्गजचतुरस्रा=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अखण्डमण्डलरूपा, भूः=पृथिवी, साध्यते=आयत्तीकर्तुं प्रयत्यते, सिद्धा= आयत्तीकृता, सा=अखण्डमण्डलरूपा भूः, हेलयैव=अनायासेनैव, अन्नमुष्टिरिव= मुष्टिपरिच्छिन्नमिवेत्यर्थः, एकस्मै=एकाकिने, न तु बहुभ्यः, विप्रमात्राय= ब्राह्मणमात्राय, प्रतिपाद्यते=दीयते, इति=एतत् ज्ञात्वा, अनुपमौदार्यसमन्वितविलक्षणचमत्कारमोहकौचित्याऽऽस्वादनेन वयम्=श्रोतारो जनः रोमाञ्चिताः=सञ्जातरोमाञ्चा जाताः इति पश्यत=अवलोकयत, रोमाञ्चस्य= पुलकोद्गमस्य, प्रत्यक्षपरिदृश्यमानत्वान्मिथ्याऽऽशंङ्का न कार्येति भावः। तस्मै, अपूर्वत्यागिने=अनुपमत्यागशीलाय, भार्गवाय=परशुरामाय, नमः=नमस्कारः। इति=इत्थमत्र पद्ये, 'विप्रायेति'' सम्प्रदानगत एवोत्कर्षविशेषः=वैशिष्ट्यम्, प्रकाशते=प्रकटितो भवतीति ॥

न तु यथा राजशेखरस्य—

पौलस्त्यः प्रणयेन याचत इति श्रुत्वा मनो मोदते,
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति।
तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही,
तुभ्यं ब्रूहि रसातलत्रिदिवयोर्निर्जित्य किं दीयताम् ॥

अर्थ :—सम्प्रदानगत अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा राजशेखर का यह पद्य है—

प्रसंग—रावण ने परशु (फरसा) माँगने के लिये भगवान् परशुराम के पास अपना दूत भेजा था। रावण की याचना सुन कर परशुराम कह रहे हैं—

महर्षि पुलस्त्य के पवित्र वंश में उत्पन्न रावण प्रणयपूर्वक मेरा फरसा माँग रहा है —यह सुन कर मेरा मन फूला नहीं समा रहा है। किन्तु भगवान् शङ्कर के प्रसाद रूप में प्राप्त यह फरसा दिया नहीं जा सकता—अतः मेरा मन अत्यन्त खिन्न भी हो रहा है। तो दूत ! तुम मेरी ओर से उस पवित्रकुलोत्पन्न रावण से कहना कि मैंने समूची पृथिवी ब्राह्मणों को दान कर दी है। अब बतलाओ स्वर्ग एवं पाताल में से कौन जीत कर तुम्हें अर्पित करूँ ? ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—सम्प्रदानगतानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—पौलस्त्य इति। परशुं याचनाय रावणद्वारा प्रेषितं दूतं प्रति परशुरामस्योक्तिरियम्। पौलस्त्यः= पुलस्त्यवंशोद्भवो रावणः, प्रणयेन=प्रेम्णा, न तु हठात्, परशुमिति शेषः, याचते=अभ्यर्थयते, इति=एतत्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, मनः=चेतः, मोदते= प्रसीदति। किन्तु, एषः=अयम्, हरप्रसादपरशुः—हरस्य=शिवस्य प्रसादेन= कृपया प्राप्तः परशुः=फलकम्, देयः=दातुं योग्यः, न=नास्ति, अतस्तन्मनः, तेन हेतुना, अधिकम्=अत्यन्तम्, ताम्यति=खिद्यते। तत्=तस्मात्, स दशाननः=जगद्विदितो रावणः, मम गिरा=मम वचनेन, वाच्यः=वक्तव्यः यत्, मही=पृथिवी, द्विजेभ्यः=ब्राह्मणेभ्यः, दत्ता=अर्पिता, अत्र ब्राह्मणेभ्य इत्यादरसूचकं बहुवचनं काश्यपायेतिभावः। अत एव, रसातलत्रिदिवयोः= पातालस्वर्गलोकयोः, किम् कतरत्, निर्जित्य=जित्वा, तुभ्यम्=भवते रावणाय, दीयताम्=प्रदीयताम्, इति ब्रूहि=कथयेति॥

अत्र रावणदूतेन परशुं याचितो भार्गवो ब्रूते—नैष हरप्रसादलब्धः परशुर्दानयोग्यः। तत्तस्मादात्मद्वचसा स दशग्रीवो वाच्यः—पृथ्वी मया कश्यपाय प्रतिपादिता, तुभ्यं पातालत्रिदिवयोर्मध्यात्किं निर्जित्य दीयताम् इत्यनुचितं मुनेर्लोकहितप्रवृत्तस्य त्रैलोक्यकण्टकभूताय राक्षसाय भुवनप्रतिपादनम्।

अर्थः—इस पद्य में रावण के दूत के द्वारा फ़रसा माँगने पर भगवान् परशुराम कह रहे हैं कि—"शङ्कर के प्रसाद से प्राप्त यह फरसा देने योग्य नहीं है। अतः मेरी ओर से उस रावण से कहना—पृथिवी मैंने पहले ही कश्यप को दान में दे दी है। स्वर्ग एवं पाताल में से कौन जीत कर तुम्हें दिया जाय— बतलाओ।" जगत् के कल्याण के लिए प्रवृत्त मुनि भार्गव की, त्रिलोकी के लिए काँटे की तरह दुःखदायी राक्षस रावण को, भुवन दान की बात सर्वथा अनुचित है॥

टीका—अत्र रावणदूतेनेति। अत्र=उक्ते श्लोके, रावणदूतेन=दशाननसेवकेन, परशुं याचितः=अभ्यर्थितः, भार्गवः=परशुरामः ब्रूते=कथयति। हरप्रसाद-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लब्धः-हरस्य=शिवस्य प्रसादेन लब्धः=प्राप्तः, एषः=अयम्, परशुः, दान-योग्यः=दातुं योग्यः, न=नास्ति। तत्=तस्मात्, मद्वचसा=मम वचनेन, स=जगद्विदितः पवित्रकुलोत्पन्नः, दशग्रीवः=रावणः, वाच्यः=वक्तव्यः, मया=मया परशुरामेण, पृथिवी=भूमण्डलम्, कश्यपाय प्रतिपादिता=दत्ता, पातालत्रिदिवयोर्मध्ये, किम्=कतरत्, निर्जित्य=स्ववश आनीय, दीयताम्,=अर्प्यताम्, लोकहितप्रवृत्तस्य=जगत्कल्याणसंलग्नस्य, मुनेः=ऋषेः, त्रैलोक्य-कण्टकभूताय=त्रिलोकीसन्तापभूताय, राक्षसाय=न तु वस्तुतः सद्ब्राह्मणायेति भावः, भुवनप्रतिपादनम्=जगत्प्रदानम्, इति=इत्थम्, अनुचितम्=अयोग्यम् ॥

अपादानौचित्यं यथा मालवरुद्रस्य—

एतस्माज्जलधेर्मिताम्बुकणिकाः काश्चिद् गृहीत्वा ततः,
पाथोदाः परिपूरयन्ति जगतीं रुद्धाम्बरा वारिभिः।
भ्राम्यन्मन्दरकूटकोटिघटनाभीतिभ्रमत्तारकां,
प्राप्यैकां जलमानुषीं त्रिभुवने श्रीमानभूदच्युतः॥

अर्थ :—अपादान के औचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—अपादान के औचित्य के उदाहरण को दिखलाने के लिये जैसे मालव रुद्र का यह पद्य देखा जा सकता है—

इसी समुद्र से जल की कुछ परिमित बूँदों को लेकर आकाश को आच्छादित करने वाले मेघ जल-धाराओं से समूची पृथिवी को परिपूरित कर देते हैं। इसी तरह उसी समुद्र से भगवान् विष्णु मथानी बन कर घूमते हुए मन्दराचल के शिखर के अग्रभाग की रगड़ के भय से चञ्चल नेत्र-प्रान्त वाली एक जलस्त्री (लक्ष्मी) को पाकर त्रिलोकी में श्रीमान् (लक्ष्मीपति एव धनी) बन बैठे हैं॥

टीका—सम्प्रदानौचित्यप्रदर्शनान्तरमपादानौचित्यमुदाहर्तुमाह — एतस्मा-दिति। एतस्मात्=अस्मात् पुरो वर्तमानादित्यर्थः, जलधेः=समुद्रात्, काश्चित्=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कियत्यः, मिताम्बुकणिकाः—परिमिता एव जलकणिकाः, गृहीत्वा=आदाय, पाथोदाः=मेघाः, ततः=तदन्तरम्, रुद्धाम्बराः सन्तः–रुद्धम्=आच्छादितम् अम्बरम्=आकाशो यैरवंभूताः सन्तः, वारिभिः=जलधाराभिः, जगतीम्= भुवोमण्डलम्, परिपूरयन्ति=प्लावयन्ति, (एवमेव) तत एव, भ्राम्यदित्यादि– भ्राम्यतः=इतस्ततो गच्छतः, मन्दरस्य=मन्दराचलस्य कूटस्य=शृङ्गस्य कोटेः=अग्रभागस्य घटना=संघर्षणं तस्या भीतिः=भयं तया भ्रमन्त्यौ= चञ्चले तारके=कनीनिके यस्याः सा तादृशीम्,एका=केवलाम्, जलमानुषीम्= जलस्त्रीम्, प्राप्य=लब्ध्वा, अच्युतः=विष्णुः, त्रिभुवने=त्रिलोक्याम्, श्रीमान्= लक्ष्मीपतिः, श्रीसम्पन्नश्च, अभूत्=यातः ॥

अत्र यदुक्तमेतस्मान्महोदधेः परिमिताम्बुकणिकाः प्राप्य जलदा जगत्पूरयन्ति, तथा भ्रमन्मन्दरकूटकोटिसंघट्टत्रासतरलतारकामेकां जलमानुषीं श्रियं प्राप्य श्रीमानच्युतोऽभूदिति तेन सागरगतनिरतिशयोत्कर्षविशेषः प्रदर्शितः। तत्र एतस्माज्जलधेरित्येतपदमौचित्यस्य मूलभूमिः।

अर्थ :—इस पद्य में "इसी सागर से परिमित जल–कणों को लेकर मेघ संसार को पानी से भर देते हैं, तथा इसी से लक्ष्मी को प्राप्त कर भगवान् विष्णु श्रीमान् बने" इस कथन से सागर की महती महत्ता प्रदर्शित हो जाती है। और इस महत्ता की मूल भित्ति "एतस्माज्जलधेः" यह अपादान कारक बोधक पद ही है अतः अपादानगत औचित्य का यह मनोहर उदाहरण है॥

टीका—अत्रयदुक्तमिति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, एतत्मात्=पुरोवर्तमानात्, महोदधेः=महासागरात्, परिमिताः=स्वल्पाः अम्बुकणिकाः=जलबिन्दून्, प्राप्य=आदाय, जलदाः=मेघाः, जगत्=संसारम्, पूरयन्ति=प्लावयन्ति, तथा=अपरश्च, मन्थनसञ्चलन्मन्दरशृङ्गाग्रसंघर्षभयतरलनेत्राञ्चलामेकां जलजां श्रियं प्राप्य=लब्ध्वा भगवान् अच्युतः=भगवान् विष्णुः, श्रीमान्= लक्ष्मीपतिर्धनाढ्यो वा, संयातः=अभूत्, इति यत् प्रतिपादितम्=यन्निगदितम्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेन=तेन हेतुना, सागरगतः=सागरविषयकः, अविशयोत्कर्षविशेषः=उत्कर्षाधिक्यम्, प्रदर्शितः=प्रकटीकृतः। तत्र=तस्मिन् उत्कर्षबोधे, "एतस्माज्जलधे रित्येतत्पदमपादानकारकबोधकं जलधिपदमेवौचित्यस्य=परमौचित्ययुक्तस्य सौन्दर्यस्य, मूलभूमिः=आधारभित्तिरिति ॥

न तु यथा भट्टेन्दुराजस्य—

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं नाम साधितमनेन महार्णवेन।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च
पातालमूलकुहरे विनिवेशितं च ॥

अर्थ :—अपादान के औचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं- न कि जैसा भट्ट इन्दुराज का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग—अन्यायपूर्वक धन एकत्रित करने वाले किसी अधार्मिक व्यक्ति के प्रति अन्योक्ति रूप से कोई कह रहा है—

सरिताओं के मुखों से (उनके आहाररूप) जल को छीन कर इस महासागर ने क्या किया ? सर्व प्रथम इसने उस जल को खारा करके अपेय बना दिया और फिर वडवाग्नि के मुख में हवन कर जला दिया और शेष को पाताल में लेजाकर छिपा कर रख दिया, यही न !

श्लोक का भाव यह है कि अन्यायी व्यक्ति विना परिश्रम के कमाए धन का, दूसरे से छीने धन का अपव्यय एवं दुरुपयोग ही करते हैं। इसके लिये सागर प्रत्यक्ष उदाहरण है ॥

टीका—अपादानानौचित्यमुदाहर्तुमाह—आदाय वारीति। श्रमेणान्योपार्जितं वित्तं हठादादायापव्ययं कर्तुंनिन्दासूचिकेयमन्योक्तिरिति। सरिताम्=नदीनाम्, मुखेभ्यः=आननेभ्यः, धाराभ्य इति यावत् परितः=सर्वतः, वारि=जलम्, आदाय=गृहीत्वा, महार्णवेन=समुद्रेण, किं नामेति प्रश्ने, साधितम्=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादितम् ? न किमपि सुष्ठु कृतमपितु तस्य दुरुपयोग एव कृतः। तथा हि— प्रथमतस्तेन सागरेण तद्वारि, क्षारीकृतम्=लवणीकृतम्, मधुरं पेयञ्च जलं क्षारमपेयञ्च कृतमिति। ततः, वडवानले=वाडवाग्नौ, हुतम्=भस्मसात्कृतम्, नैतावतैवानर्थनिवृत्तिस्तेनावशिष्टं जलं, पातालमूलकुहरे—पातलस्य=अधोलोकस्य मूलमेव कुहरम्=गह्वरं तत्र, विनिवेशितञ्च=स्थापितञ्च। एवमेवान्येभ्य आच्छिद्य गृहीतं धनं जना अनुचितपद्धत्यैव व्ययं कुर्वन्ति। अत्र सागर एव निदर्शनमिति ॥

अत्र महार्णवव्यपदेशेनान्यायोपार्जितद्रविणदुर्व्ययकारिणः सत्संविभाग-विमुखस्य कस्यचिदुच्यते। सरितां मुखेभ्यः समन्तात्तोयमादायापात्रेभ्यः प्रतिपादितं दूषितम्। यत्त्वत्र सरिद्भ्यः समादायेति वक्तव्ये सरिन्मुखेभ्य इत्युक्तं तेन मुखशब्दस्य नैरर्थक्यादत्रानौचित्यमेव पर्यवस्यति।

अर्थ :—इस पद्य में महासागर के बहाने से अन्याय से उपार्जित धन का अपव्यय करने वाले, समुचित व्यय से विमुख किसी व्यक्ति-विशेष के प्रति कहा जा रहा है। सरिताओं के मुखों से (उनके आहार रूप) जल को छीनकर अपात्रों (वडवाग्नि आदि) को प्रदान करना दूषित कार्य है। यहाँ 'सरिताओं से जल लेकर' ऐसा न कह कर "सरिताओं के मुख से" ऐसा जो कहा गया है, उसमें मुख पद के निरर्थक होने के कारण पर्यवसान में अनौचत्य ही हाथ लगता है। इस प्रकार अपादान बोधक पद की निरर्थकता से तद्गत (अपादानगत) अनौचित्य स्पष्ट ही परिलक्षित होता है ॥

विशेषः—पता नहीं आचार्य क्षेमेन्द्र को "सरिन्मुखेभ्यः" इस पद की अपेक्षा "सरिद्भ्यः" इस पद में कैसे औचित्य की मात्रा अधिक दिखलायी पड़ती है। 'सरिन्मुखेभ्यः' पद से अर्थानुभूति की जो तीव्रता प्रतीत होती है वही तीव्रता क्या "सरिद्भ्यः" इस पद से भी प्रतीत होती है? किसी व्यक्ति के सामने आये भोजन को छीनना तथा किसी व्यक्ति के मुख में गये हुए ग्रास को निकाल लेना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या बराबर ही माने रखता है ? क्या पहले की अपेक्षा दूसरे में अर्थानुभूति की तीव्रता नहीं ज्ञात होती ? फिर आचार्य ने अपादान के अनौचित्य के रूप में इस पद को कैसे रक्खा ? मेरे मत से तो अपादान के औचित्य के लिए इस पद्य से अधिक उपयुक्त दूसरा उदाहरण शायद ही कोई मिले ।

टीका—अत्र महार्णवेत्यादि । अत्र=उक्ते पद्ये, महार्णवव्यपदेशेन—महार्णवस्य=महासागरस्य व्यपदेशः=व्याजस्तेन, अन्यायोपार्जितद्रविणदुर्व्यय-कारिणः—अन्यायेन=अनीत्या, उपार्जितम्=अर्जितम्, यद्द्रविणम्=धनम् तस्य दुर्व्ययकारिणः=अपव्ययकारिणः, सत्संविभागविमुखस्य—सद्भ्यः=पात्रेभ्यः संविभागः=विभज्य प्रदानं तस्माद्विमुखस्य=पराङ्मुखस्य, कस्यचित्=यस्मै कस्मै व्यक्तिविशेषायेत्यर्थः, उच्यते=कथ्यते । सरिताम्=नदीनाम्, मुखेभ्यः=आननेभ्यः, समन्तात्=सर्वतः, तोयम्=पवित्रं जलमित्यर्थः, आदाय=गृहीत्वा, अपात्रेभ्यः=अयोग्येभ्यः, प्रतिपादितम्=प्रदानम्, दूषितम्=गर्हितम् । यत्त्वत्र=यत्त्वस्मिन् पद्ये, सरिद्भ्यः=सरिताभ्यः, समादायेति=गृहीत्वेति, वक्तव्ये=कथयितव्ये, सरिन्मुखेभ्यः=सरिदाननेभ्यः, इत्युक्तम्=इति कथितम्, तेन मुखशब्दस्य नैरर्थक्यात्=अनपेक्षितत्वात्, अत्र=अस्मिन् पद्ये, अपादानो-दाहरण इत्यर्थः, अनौचित्यमेव=औचित्याभावमेव, पर्यवस्यति=परिणामे समापतति । मन्मते तु सरिद्भ्यः समादायेति वाक्यात् 'सरिन्मुखेभ्यः' अत्र वाक्ये अर्थानुभूतिकारकशक्तिप्रवणता सुष्ठुतरा दृश्यते । अत्र सुधियामनुभूतिरेव प्रमाणमित्यलम् ॥

अधिकरणौचित्यं यथा कुन्तेश्वरदौत्ये कालिदासस्य—

इह निवसति मेरुः शेखरः क्ष्माधराणा-
मिह विनिहितभाराः सागराः सप्त चान्ये ।
इदमहिपतिभोगस्तम्भविभ्राजमानं
धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम् ।

अर्थ :—कारकौचित्य के प्रदर्शन-क्रम में अधिकरणौचित्य का उदाहरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखलाने के लिये कह रहे हैं—अधिकरण के औचित्य के लिए कालिदास के कुन्तलेश्वरदौत्य का यह उदाहरण देखा जा सकता है—

प्रसङ्ग—महाराज विक्रमादित्य का दूत कुन्तेश्वर की राज-सभा में गया। वहाँ उसे समुचित सम्मान और आसन न मिला। अतः भूमि पर ही बैठते हुए वह कह रहा है—

इस भूमि पर ही पर्वतों का राजा सुमेरु निवास करता है। इसी पर अपने समग्र भार के साथ सातों सागर एवं उपसागर स्थित हैं। यह पृथिवी शेषनाग के फणरूप स्तम्भ पर विराजमान है। अतः इस भूतल पर ही मेरे जैसे जनों का बैठना उचित है॥

टीका—कारकौचित्यप्रदर्शनप्रस्तावेऽधिकरणौचित्यमुदाहर्तुमाह—इह निवसतीति। महाराजस्य विक्रमादित्यस्य दूतः कुन्तलेश्वरस्य सभायां समीचीनं समानमासनादिकञ्चनालभत। अतो भूमावेवोपविशन् स स्वोत्कृष्टतां प्रकटयति। इह=अत्रैव भूतले, पृथिव्यामेवेत्यर्थः, क्ष्माधराणाम्=पर्वतानाम्, शेखरः=मूर्धन्यभूतः, मेरुः=सुमेरुपर्वतः, निवसति=स्थीयते। विनिहितभाराः=विनिहितः=स्थापितः भारः=गुरुत्वं यैस्ते तादृशाः, सप्त=सप्तसंख्याकाः, सागराः=समुद्राः, अन्ये च=अपर उपसमुद्रा इत्यर्थः, इह=अस्मिन् पृथिवीतल एव, स्वकीयं भारं स्थापयन्ति। इदम्=एतत्, धरणितलम्=भूमण्डलम्, भूतलमिति यावत्, अहिपतिभोगस्तम्भविभ्राजमानम्—अहिपतिः=सर्पराजः शेषस्तस्य भोगः=फणा एव स्तम्भः=स्थूणा तत्र विभ्राजमानम्=शोभमानम्, अस्तीति शेषः। अतो महत्तायासभूतत्वाद्भूतलमेवास्मद्विधानां महतामासनस्य योग्यतां बिभर्ति॥

अत्र महाराजदूतोऽपि सामन्तास्थाने स्वप्रभुसमुचितगौरवपूजार्हमासनमनासाद्य कार्यवशेन भूमावेवोपविष्टः प्रागल्भ्यगाम्भीर्येणैवं ब्रूते—यथाऽस्मद्विधानां वसुधातल एव भुजगपतिभोगस्तम्भप्राग्भारनिष्कम्पे धरासने स्थानं युक्तं यस्मादिहैव मेरुरचलचक्रवर्ती समुपविष्टः सप्त-सागरा अब्धयश्च, तत्तुल्यतैवास्माकमित्यौचित्यमधिकरणपदसम्बद्धमेव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—इस पद्य में, महाराज कुन्तेश्वर का दूत सामन्त की राज-सभा में अपने प्रभु के योग्य गौरव के अनुरूप आदरपूर्ण आसन न पाकर कार्यवश भूमि पर ही बैठ गया तथा अपनी प्रगल्भता एवं गम्भीरता से इस प्रकार कह रहा है—हमारे जैसे गौरवशाली व्यक्तियों के लिये भुजगाधिपति शेषनाग के फणरूपी स्तम्भ के बल पर स्थित होने के कारण निष्कम्प श्रेष्ठ स्थान पर ही बैठना ठीक है, क्योंकि पर्वत-सम्राट् मेरु इसी भूतल पर स्थित हैं और सातों महासमुद्र भी इसी भूमण्डल पर टिके हैं। मेरी समता इन्हीं महान् वस्तुओं से की जा सकती है। अतः पृथिवी को छोड़कर मेरे लिये कोई दूसरा उचित आसन हो ही नहीं सकता। इस कथन से एक अद्भुत औचित्य की प्रतीति "इहैव" इस अधिकरण पद से ही सम्बद्ध है। अतः अधिकरणौचित्य का यह एक सुन्दर उदाहरण है॥

टीका—अत्र महाराजदूतोऽपीति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, महाराजदूतोऽपि—महाराजस्य=प्रभोः कुन्तेश्वरस्य दूतोऽपि=सन्देशहरोऽपि, सामन्तास्थाने—सामन्तस्य=अधीनस्य कस्यचिद् राज्ञः आस्थाने=समायाम्, ('आस्थानं राजपरिषद्' इति कोशः), स्वप्रभुसमुचितगौरवपूजार्हम्—स्वप्रभोः=स्वस्वामिनः कुन्तेश्वरस्य समुचितम्=योग्यं यद् गौरवम्=महत्त्वं तस्य पूजार्हम्=सम्मानयोग्यम्, आसनम्=पीठम्, अनासाद्य=अप्राप्य, कार्यवशेन = कार्यसम्पादनगौरवेण, भूमौ=पृथिव्यामेव, उपविष्टः=कृतासनपरिग्रहः सञ्जातः, तथा प्रागल्भ्यगाम्भीर्येण=धाष्ट्र्येन प्रौढ्या च, एवम्=इत्थम्, ब्रूते=कथयति—यथा अस्मद्विधानाम्=मादृशानां गौरवशालिनामित्यर्थः, भुजगपतिभोगस्तम्भप्राग्भारनिष्कम्पे—भुजगपतिः = सर्पराजः शेषः, तस्यभोगः = फणमण्डलम् एव स्तम्भः=स्थूणा तस्य प्राग्भारे=बले निष्कम्पे=निश्चले, वरासने=श्रेष्ठासने, वसुधातले=भूतले, एव, स्थानम्=स्थितिः, युक्तम्=योग्यम्, यस्मात्=यतः, इहैव=अस्मिन्नेव वसुधातले, अचलचक्रवर्ती—अचलानाम्=पर्वतानाम् चक्रवर्ती=सम्राट्, मेरुः=सुमेरुः, समुपविष्टः=स्थितोऽस्ति, सप्तसागरा अब्धयश्च=सप्तसागराः सप्तान्ये महासमुद्राश्च, अत्रैवस्थिताः। महिम्नि अस्माकं तत्तुल्यतैव=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्समकक्षतैव, अतः सर्वंसहा वसुधैवास्माकमासनीभवितुमर्हति, अत्रौचित्यस्य या प्रतीतिः सा तु अधिकरणपद सम्बद्धम्=अधिकरणपदद्योत्यमिति ॥

नतु यथा परिमलस्य—

तत्र स्थितं स्थितिमतां वर देव ! दैवाद्
भृत्येन तें चकितचित्तमियन्त्यहानि ।
उत्कम्पिनि स्तनतटे हरिणेक्षणानां
हारान्प्रवर्तयति यत्र भवत्प्रतापः ॥

अर्थः—अधिकरण कारक के अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—

न कि जैसा महाकवि परिमल का निम्न पद्य है—

हे मर्यादाशालियों में श्रेष्ठ (राजन्) आपका भृत्य मैं संयोग से इतने दिनों तक आश्चर्यचकित होकर उस प्रदेश में रहा, जहाँ सुन्दरियों के कम्पनशील स्तन-तट पर लटकते हार को आपका प्रताप उलट-पलट रहा है। अर्थात् आपके प्रताप के भय से लोगों का कलेजा बड़ी तेजी से धड़क रहा है ॥

टीका—अधिकरणानौचित्यं प्रदर्शयति—तत्र स्थितमिति । हे स्थितिमताम्=मर्यादाशालिनाम्, वर=श्रेष्ठ, देव=महराज, ते=तव, भृत्येन=दासेन, मयेति शेषः, चकितचित्तम्=आश्चर्यचुम्बितहृदयं यथास्यात्तथा, दैवात्=संयोगवशात्, तत्र=तस्मिन् प्रदेशे, इयन्ति=एतावन्ति, अहानि = दिनानि, स्थितम्=अवस्थितम्, वासः कृत इत्यर्थः, यत्र यस्मिन् प्रदेशे, भवत्प्रतापः=श्रीमतां तेजः, हरिणेक्षणानाम्=मृगलोचनानाम्, उत्कम्पिनि=भीत्या कम्पनशीले, स्तनतटे = कुचप्रान्ते, हारान्=मौक्तिकमालाः, प्रवर्तयति=तरलीकरोति ।·तव प्रतापाङ्कयेन शत्रुरमणीनां हृदयानि उच्छलन्तीति भावः ॥

अत्र त्वद्भृत्येन मया तत्र तस्मिन्देशे स्थितं यत्र भवत्प्रतापः कम्पतरलस्तनतटे हरिणदृशां हारान्प्रवर्तयतीति यदुक्तं तेन शौर्यश्रृङ्गारगुणोत्कर्षस्तुतौ सर्वतो दिग्गमनाविच्छिन्नप्रसरः प्रतापः पारिमित्यं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्तः। एकत्र परिच्छिन्ने देशे मया तत्र स्थितं यत्र त्वत्प्रतापस्तरुणीस्तनतटेषु हारतरलनं करोत्यन्यदेशे विलक्षणमुपलक्षणम्। सर्वंगतश्चेत्प्रतापस्तत्सर्वत्रैव मया स्थितमिति वक्तव्ये तत्रेत्येकदेशाभिधायि पदं नोपपद्यते, दस्युमात्रस्याप्येकदेशे जृम्भमाणप्रतापत्वात्। तदत्राधिकरणपदगतमनौचित्यमुपलभ्यते। तत्र तत्र मया स्थितं यत्र यत्र भवत्प्रताप इत्येव स्तुत्युचितं युक्तयुक्तं स्यात् ॥ २० ॥

अर्थः—इस पद्य में, आपका सेवक मैं उस देश में रहा जहाँ आपका प्रताप सुन्दरियों के धड़कते कुचप्रान्त पर हार को उछाल रहा है, इस कथन से राजा के प्रताप की सर्वव्यापकता समाप्त हो जाती है, वह थोड़े प्रदेश में सिमट कर रह जाता है। ऐसी स्थिति में जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए राजा के शौर्य एवं शृंगार की गाथा गायी गई है वह प्रशंसा न प्रकट कर एक प्रकार से निन्दा ही प्रकट करती है। इस कथन से यह प्रकट हो जाता है कि जिस प्रदेश में मैं था वहाँ तो आपका प्रताप वैसा कर रहा था किन्तु दूसरी जगह ऐसी बात न थी। यदि एक स्थान में राजा का प्रताप फैले भी तो इससे उसके बड़प्पन की सूचना नहीं मिलती, क्योंकि एक देश में तो किसी खूँखार डकैत का आतंक भी तहलका मचा सकता है। इसलिये यहाँ "तत्र" इस पद में अधिकरणपदगत अनौचित्य स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। मैं वहाँ-वहाँ था जहाँ-जहाँ आपका प्रताप फैल रहा है—यदि ऐसा कहा गया होता तो वह पूरी प्रशंसा के अनुरूप होता तथा औचित्य की भी पूरी-पूरी रक्षा हो जाती ॥

टीका—अत्र=पद्ये, त्वद्भृत्येन=त्वत्सेवकेन, मया, तत्र=तस्मिन् देशे, स्थितम्=स्थानं परिगृहीतम्, यत्र भवत्प्रतापः=त्वत्तेजः, हरिणदृशाम्=मृगलोचनानाम्, कम्पतरले=चञ्चले स्तनतटे=पयोधरप्रान्ते, हृदयस्थल इत्यर्थः, हारान्=धृता मणिमालाः, प्रवर्तयति=उद्वेलयति, इति=एतत्, यदुक्तम्=यत्कथितम्, तेन शौर्यशृङ्गारयोः गुणोत्कर्षस्य=गुणाधिक्यस्य, स्तुतौ=प्रशंसायाम्, अभीष्टायां सत्याम्, सर्वतः=सर्वत्र, दिग्गमनाविच्छिन्नप्रसरः=दिक्षु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गमने='काष्ठासु प्रसर्पणे अविच्छिन्नः=अबाधितः प्रसरः=प्रसारो यस्यतादृशः, प्रतापः=तेजः, परिमित्यम्=परिच्छिन्नताम्, ह्रस्वतामित्यर्थः, प्राप्तः=उपगतः ननु एकत्र परिच्छिन्ने=परिमिते, देशे मया तत्र स्थितम् यत्र त्वत्प्रतापस्तरुणी-स्तनतटेषु=युवतीपयोधरप्रान्तेषु, हारतरलनं करोतीति कथनं देशान्तरस्यापि बोधकमिति विलक्षम्=अदृष्टश्रुतपूर्वम् उपलक्षणम्=दृष्टान्तः। चेत्=यदि, प्रतापः, सर्वगतः=सर्वव्यापि, तत्तदा सर्वत्रैव=सर्वेष्वेव देशेषु, मया 'स्थित-मिति वक्तव्ये तत्रेत्येकदेशाभिधायि=एकदेशबोधकम्, पदं नोपपद्यते=न समी-चीनतामर्हति। दस्युजनस्यापि प्रताप एकदेशे जृम्भते। अत एकदेशवर्तमानप्रता-पस्य राज्ञः को विशेषः? अतोऽत्र वक्तुं शक्यते यदधिकरणबोधकतत्रेति पद निष्ठमनौचित्यमुपलभ्यते। तत्र तत्र मया स्थितं यत्र यत्र भवत्प्रताप इत्येव स्तुत्युचितम्=प्रशंसानुकूलम्, युक्तियुक्तम्=समीचीनञ्च, स्यात्=भवेत्, नान्य-येति ॥ २० ॥

लिङ्गौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितेनैव लिङ्गेन काव्यमायाति भव्यताम्।
साम्राज्यसूचकेनेव शरीरं शुभलक्ष्मणा ॥ २१ ॥

प्रस्तुतार्थौचितेन लिङ्गेन काव्यं भव्यतामुपयाति राजलक्षणेनेव शरीरम्।

अन्वयः—साम्राज्यसूचकेन, शुभलक्ष्मणां, शरीरमिव, उचितेन, लिङ्गेन, एव, काव्यम्, भव्यताम्, आयाति ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—साम्राज्यसूचकेन=राज्य-सूचक, शुभलक्ष्मणा=शुभ लक्षण से, शरीरमिव=शरीर की तरह, उचितेन=समुचित, लिङ्गेन=स्त्री-लिङ्ग, पुंलिङ्ग आदि से, एव=ही, काव्यम्=काव्य, भव्यताम्=सौन्दर्य की अधि-कता को, आयाति=प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

अर्थ:—राज्य-सूचक शुभ लक्षणों से जैसे शरीर सुशोभित होता है वैसे ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समुचित स्त्रीलिङ्ग, पुंल्लिङ्ग आदि के प्रयोग से ही काव्य अधिक रमणीयता को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

टीका—कारकौचित्यं प्रदर्श्य क्रमप्राप्तं नवमं लिङ्गौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—उचितेनैवेति । साम्राज्यसूचकेन=साम्राज्याभिव्यञ्जकेन, शुभलक्ष्मणा=शुभेन राजलक्षणेन, शरीरमिव=देहमिव, यथा शरीरं शोभते तथैवेत्यर्थः उचितेन=योग्येन, लिङ्गेन=स्त्रीलिङ्गेन, पुंल्लिङ्गेन नपुंसकलिङ्गेन च, एवेति दार्ढ्यार्थम्, काव्यम्=साहित्यम्, कविकर्म वां, भव्यताम्=चारुताम्, आयाति=आगच्छति । चारु भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

अर्थ :—प्रस्तुत अर्थ के योग्य लिंग से काव्य उसी तरह भव्य बन जाता है जैसे राज्यप्राप्ति के सूचक चिह्नों से शरीर सुशोभित होता है ॥

टीका—कारिकार्थमेव प्रकाशयति—प्रस्तुतार्थेनेति । प्रस्तुतार्थोचितेन—प्रस्तुतः=प्रसङ्गप्राप्तः योऽर्थस्तस्य उचितेन=योग्येन, लिङ्गे=स्त्र्यादिलिङ्गे काव्यम्=कविकृतिः, तथैव भव्यताम्=चारुताम्, उपयाति=उपगच्छति, यथा राजलक्षणेन=राज्यप्राप्तिसूचकेन चिह्नेन, शरीरम्=देहः, भव्यतामुपयातीति भावः ॥

यथा मम ललितरत्नमालायाम्—

निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्
दीर्घां वेत्ति कथां व्यथां न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम् ।
तेनाराधयता गुणस्तवजपध्यानेन रत्नावलीं,
निःसङ्गेन पराङ्गनापरिगतं नामापि नो सह्यते ॥

अर्थ :—लिङ्गौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—लिङ्गौचित्य का उदाहरण जैसे मेरी "ललितरत्नमाला' के निम्न श्लोक में देखा जा सकता है—

प्रसंग—रत्नावली के वियोग में विकल वत्सराज उदयन की दशा का वर्णन इस पद्य में किया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नावली के वियोग में वत्सराज उदयन को स्वल्प भी निद्रा नहीं आती है। उन्होंने धैर्य छोड़ दिया है। वे किसी भी एक स्थान पर अधिक देर तक नहीं ठहर पा रहे हैं। किसी भी वार्ता को वे व्यथा की भाँति अतिदीर्घ समझते हैं तथा कहीं भी पूरी तरह शान्ति उन्हें नहीं मिल पा रही है। कहाँ तक कहूँ, रत्नावली के अभाव में उसके गुणों की स्तुति, जप तथा ध्यान से रत्नावली की आराधना करने वाले महाराज उदयन लोगों के सम्पर्क से पूर्णतः दूर रहते हुए किसी दूसरी स्त्री का नाम भी नहीं सुनना चाहते हैं॥

टीका—लिङ्गौचित्यमुदाहर्तुमाह—निद्रां न स्पृशतीति। रत्नावलीवियोगे व्यथितस्य वत्सराजस्य वर्णनमिदम्। वत्सराजो निद्राम्=स्वापं न स्पृशति=नालिङ्गते, निद्राम् नानुभवतीत्यर्थः। धृतिम्=धैर्यम्, अपि त्यजति=मुञ्चति। क्वचित्=कुत्रचिदपि, स्थितिम्=अवस्थानम् न धत्ते=न स्वीकरोति नैकत्र मनोरमते तस्येति भावः। कामपि दीर्घाम्=अस्वल्पां, कथाम्=वार्ताम्, व्यथामिव=पीडामिव, वेत्ति=अनुभवति। सर्वात्मना=सर्वतोभावेन, निर्वृतिम्=शान्तिम्, न भजते=न लभते। रत्नावल्याः गुणस्तव-जप-ध्यानेन—गुणानाम्=दयादाक्षिण्यादीनां, स्तवेन=स्तुत्या, प्रशंसनेनेत्यर्थः, जपेन=मुहुर्मुहुः कथनेन, ध्यानेन=चिन्तनेन च, रत्नावलीम्=सिंहलेशकन्यकाम्, आराधयता=पूजयता, निःसङ्गेन=क्वचिदप्यासक्तिविरहेण, पराङ्गनापरिगतम्=अन्यस्त्रीस्वीकृतम्, नामापि=संज्ञामपि, नो=नहि, सह्यते=श्रोतुं शक्तः॥

अत्र वत्सेश्वरस्य रत्नावलीविरहविधुरचेतसः स्मरावस्थासमुचितं विदूषकेण सुसङ्गतायै यदभिहितम्—निद्रां न स्पृशति, धृतिं त्यजति, स्थितिं न धत्ते, दीर्घां कथां व्यथामिव वेत्ति, निर्वृतिं न भजते तां विना तेन तद्गुणजापिना तद्ध्याननिरतेन जनसङ्गत्यागिनाऽन्यासामङ्गनानां नामापि न सह्यते। तत्र स्थितिधृतिकथानिर्वृतीनां स्त्रीलिङ्गाभिधानेनाङ्गनात्वाध्यारोपेण परमौचित्यं प्रतिपादितम्।

अर्थ:—इस पद्य में रत्नावली के विरह से विह्वल चित्तवाले वत्सराज उदयन की कामावस्था के अनुरूप विदूषक ने सुसङ्गता से जो कहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"निद्रा को छूते तक नहीं, धृति को छोड़ दिया है, स्थिरता को नहीं धारण कर रहे हैं, लम्बी बात को व्यथा की तरह अनुभव करते हैं, शान्ति नहीं पा रहे हैं। रत्नावली के विना उस (रत्नावली) के गुणों का जप करने वाले, उसके ही चिन्तन में निरत रहने वाले, जन सम्पर्क से दूर रहने वाले वह वत्सराज किसी दूसरी सुन्दरी का नाम भी सुनना पसन्द नहीं करते हैं।" इस कथन में स्थिति, धृति, कथा और निर्वृति आदि पदों के स्त्रीलिङ्ग बोधक होने के कारण उनमें स्त्रीत्व का आरोप होने से अत्यधिक औचित्य का प्रतिपादन किया गया है। औचित्य का यह सुन्दर निर्वाह लिंग के उचित प्रयोग से ही सम्भव हो सका है। यही कारण है कि इसे लिङ्गौचित्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अत्यन्त समचीन है।

टिप्पणी:—यदि चौथा चरण "निःसङ्गेन परासङ्गना परिगता संज्ञापि नो गृह्यते (या सह्यते)" होता तो जो कमी रह गई है उसकी भी पूर्ति हो जाती। तब यह श्लोक लिङ्गौचित्य के पूर्ण उदाहरण के रूप में निःसंकोच रक्खा जा सकता है।

टीका—अत्र वत्सेश्वरस्येति। अत्र=उक्ते पद्ये, रत्नावलीविरहविधुर-चेतसः—रत्नावल्याः=सिंहलेश्वरदुहितुः विरहेण=वियोगेन विधुरम्=विह्वलम् चेतः=मनो यस्य तादृशस्य, वत्सेश्वरस्य=उदयनस्य, स्मरावस्था-समुचितम्—स्मरावस्थायाः=कामावस्थायाः समुचितम्=योग्यम्, विदूषकेण सुसङ्गतायै यदभिहितम्=यत्कथितम्, किं कथितमिति जिज्ञासायामुच्यते—निद्रां न स्पृशति, धृतिं त्यजति, स्थितिं न धत्ते, दीर्घां कथां व्यथामिव वेत्ति, निर्वृतिं न भजते, तां रत्नावलीं विना, तद्गुणजापिना—तद्गुणजपपरेण, तद्ध्यान-निरतेन=तद्ध्यानसंलग्नेन, जनसङ्गत्यागिना=एकान्तसेवनपरेणेत्यर्थः, तेनोदयनेन, अन्यासाम्=अपरासाम्, अङ्गनानाम्=सुन्दरीणाम्, नामापि=संज्ञापि, न सह्यते=न सोढुं शक्यते। इति यदुक्तं तत्र स्थितिधृतीत्यादौ स्त्रीलिङ्गाभिधानेन=स्त्रीलिङ्गकथनेन, तत्र स्थित्यादौ अङ्गनात्वाध्यारोपेण=स्त्रीत्वाध्यारोपेण,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमौचित्यम्=औचित्यस्य पराकाष्ठेत्यर्थः, प्रतिपादितम्=कथितम्, प्रकटीकृतमित्यर्थः ॥

ननु यथा मम नीतिलतायाम्—

वरुणरणसमर्था स्वर्गभङ्गैः कृतार्था,
यमनियमनशक्ता मारुतोन्माथसक्ता ।
धनदनिधनशय्यां लज्जते मर्त्ययुद्धे
दहनदलनचण्डा मण्डली मद्भुजानाम् ॥

अर्थः—लिङ्गगत अनौचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा मेरी नीतिलता का ...म्न श्लोक है—

प्रसङ्ग—रावण अपनी भुज-मण्डली की प्रशंसा में कह रहा है—

वरुण के साथ घनघोर युद्ध करने में समर्थ, स्वर्ग को तहस-नहस करके कृतार्थ, यमराज को बाँधने से सक्षम, वायु को भी मथ डालने में समर्थ, कुबेर की मृत्यु शय्या तुल्य, अग्नि को भी विनष्ट करने में प्रचण्ड, मेरी भुजाओं की मण्डली मनुष्य के साथ युद्ध करने में लज्जा का अनुभव करती है ।

टीका—लिङ्गानौचित्यमुदाहर्तुमाह—वरुणरणेति । वरुणरणसमर्था—वरुणेन=जलाधिपेन सह रणम्=घोरं युद्धं तत्र समर्था=क्षमा, स्वर्गभङ्गैः—स्वर्गस्य=देवलोकस्य भङ्गैः=बहुवारमुत्पाटनैः, कृतार्था=चरितार्था, कृतकृत्येति यावत्, यमनियमनसक्ता—यमस्य=मृत्योः नियमने=बन्धने सक्ता=समर्था, मारुतोन्माथसक्ता=मारुतस्य=वायोः उन्माथे=मथने सक्ता=समर्था, धनदनिधनशय्या—धनदस्य=कुबेरस्य निधने=मरणे शय्या=खट्वा, मरणखट्वेत्यर्थः, दहनदलनचण्डा—दहनस्य=अग्नेः दलने=भञ्जने चण्डा=प्रचण्डा, मद्भुजानाम्=मम बाहूनाम्, मण्डली=समवायः, मर्त्ययुद्धे—मर्त्येन=मनुष्येण सह युद्धे=संग्रामे, लज्जते=त्रपते ॥

अत्र रावणः कपिनिकरामर्षविषमविकाराविष्कारोचितं ब्रूते—वरुणादिलोकपालविशालबलावलेपविप्लवकारिणी मर्त्यमात्रयुद्धेलज्जते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचण्डा मद्भुजमण्डलीति स्त्रीलिङ्गेन निर्देशस्त्रैलोक्यविजयोचितस्य प्रतापस्य कठोरतामपहरन्ननौचित्यं सूचयति ॥ २१ ॥

अर्थ :—इस श्लोक में कपि-समूह के ऊपर अपने तीव्र क्रोध को अभिव्यक्त करते हुए रावण कह रहा है—

वरुण आदि लोकपालों के विशाल बल के अभिमान को विनष्ट करने वाली मेरी प्रचण्ड भुज-मण्डली सामान्य मनुष्यमात्र के साथ युद्ध करने में लज्जित हो रही है। यहाँ 'भुज मण्डली' में जो स्त्रीलिङ्ग का निर्देश किया गया है, वह त्रिलोकी के विजय में सक्षम रावण के प्रताप की कठोरता को कम करता हुआ अनौचित्य को प्रकट करता है। अतः यह श्लोक लिङ्ग के अनौचित्य का यथार्थ उदाहरण है ॥

टीका—अत्र रावण इति। अत्र एतस्मिन् पद्ये, रावणः=दशाननः, कपिनिकरेत्यादिः—कपिनिकरेषु=वानरसमूहेषु योऽमर्षः=कोपस्तस्य विषमः=अत्युत्कटो यो विकारः=विकृतिस्तस्य य आविष्कारः=प्रकाशस्तदुचितं ब्रूते=कथयति-वरुणादिलोकपालेत्यादिः—वरुणादीनां लोकपालानां विशालः=अतिमहान् यो बलावलेपः=बलदर्पस्तस्य विप्लवकारिणी=विनाशयित्री, प्रचण्डा=अतितीक्ष्णा, मद्भुजमण्डली=मम भुजां समवायः, मर्त्यमात्रयुद्धे=साधारणमानवयुद्ध इत्यर्थः, लज्जते=त्रपामनुभवति। अत्र मद्भुजमण्डलीति स्त्रीलिङ्गेन निर्देशः=कथनम्, त्रैलोक्यविजयोचितस्य=त्रिलोकीविजयसमर्थस्येत्यर्थः, प्रतापस्य=रावणतेजसः, कठोरताम्=कर्कशताम्, अपहरन्=विनाशयन्, अनौचित्यम्=औचित्याभावम्, सूचयति=प्रकाशयति।

वचनौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितैरेव वचनैः काव्यमायाति चारुताम्।
अदैन्यधन्यमनसां वदनं विदुषामिव ॥ २२ ॥

अन्वयः—अदैन्यधन्यमनसाम्, विदुषाम्, वदनमिव, उचितैः, वचनैः, एव, काव्यम्, चारुताम्, आयाति ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ :—अदैन्यधन्यमनसाम्=दीनता से शून्य अतः धन्य मनवाले, विदुषाम्=विद्वानों के, वदनमिव= आनन की तरह, उचितैः=योग्य, वचनैः =वचनों से, एव=ही, काव्यम्=काव्य, चारुताम्=सौन्दर्य को, आयाति= प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

अर्थ :—वचनौचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—दीनता से शून्य अतः धन्य मनवाले विद्वानों के आनन की तरह योग्य वचनों से ही काव्य सौन्दर्य को प्राप्त होता है ॥

टीका—लिङ्गौचित्यात्परमवसरप्राप्तं दशमं वचनौचित्यं दर्शयितुमाह— उचितैरिति । अदैन्यधन्यमनसाम्—अदैन्येन=दैन्याभावेन धन्यम्=प्रशंसार्हम् मनः=चेतो येषां ते तादृशास्तेषाम्, विदुषाम्=विबुधानाम्, वदनमिव=मुखमिव, उचितैः=योग्यैः, वचनैः=वाक्यैः, एवेति दार्ढ्यार्थम्, काव्यम्=कविकृतिः, चारुताम्=भव्यताम्, आयाति=आगच्छति ॥

उचितैरेकवचनद्विवचनबहुवचनैः काव्यं चारुतामायाति .अदैन्योदारचेतसां विदुषामिव वदनमयाच्ञाचारुचिरौचित्यचारुभिर्वचोभिः ।

अर्थ :—उचित एक वचन, द्विवचन एवं बहुवचन के विन्यास से काव्य चारुता को प्राप्त होता है, जैसे विद्वानों का मुख याचना-रहित अतः अत्यन्त औचित्यपूर्ण मनोहर वचनों से सुशोभित होता है ॥

टीका—उक्तकारिकार्थमेव विवृणोति—उचितैरिति । उचितैः=योग्यैः, एकवचन-द्विवचन-बहुवचनैः, काव्यं, चारुताम्=मनोहरताम्, आयाति=आगच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः । अदैन्यादारचेतसाम्=दैन्याभावोदात्तचित्तानाम्, विदुषां वदनम्= =मुखं यथा अयाच्ञेत्यादि—अयाच्ञया=अयाचनेन यच्चारु=मनोहारि, चिरौचित्यम्=शाश्वदौचित्यम्, तेन चारुभिः=सुन्दरैर्वचोभिः=वचनैः, सौन्दर्यमासादयतीति भावः ॥

यथा मम नीतिलतायाम्—

त्रैलोक्याक्रमणैर्वराहविजयैर्निःसंख्यरत्नाप्तिभिः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रख्यातः स्वरसस्वयंवरशतैर्युद्धाब्धिमध्ये श्रियः।
साश्चर्यैर्बलिबन्धनैश्च बहुभिर्नित्यं हसत्युत्थितः
पौलस्त्यः सकृदुद्यमश्रमवशाद्व्यासक्तनिद्रं हरिम् ॥

अर्थ :—वचनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—वचनौचित्य के उदाहरण के लिये जैसे मेरी नीतिलता का यह श्लोक है—

प्रसङ्ग :—रामचन्द्र के समक्ष शुक-सारणों के द्वारा रावण की महिमा का गान किया जा रहा है—

बहुत बार त्रिलोकी के आक्रमणों से, वराह जीतने वाले अनेक योद्धाओं को पराजित करने से, असंख्य रत्नों के प्राप्त करने से, समर-सागर के मध्य सैकड़ों बार विजय-लक्ष्मी के स्वयंवरणों से, वरुणादि लोकपालों की बहुशः विजयों से तथा इसी तरह के अनेक आश्चर्यजनक कृत्यों से सदा उद्यत रहनेवाला रावण, वामन रूप से एक ही बार त्रिलोकी का आक्रमण करने वाले, एक ही बार वाराह रूप से असुर का संहार करने वाले, एक ही बार कौस्तुभ मणि को प्राप्त करने वाले, एक ही बार लक्ष्मी के द्वारा वरण किये गये, एक ही बार बलि को बाँधने का कष्ट उठाने वाले फिर भी थकान के कारण चार महीने तक लगातार निद्रा में डूब जाने वाले विष्णु का उपहास कर रहा है ॥

टीका—वचनौचित्यमुदाहर्तुमाह—त्रैलोक्याक्रमणैरिति। शुकसारणौ रामचन्द्रस्य पुरतो रावणोत्कर्षं वदतः। त्रैलोक्याक्रमणैः=अभिभवैः, बहुवचनग्रहणादसकृदित्यस्य सर्वत्रान्वयो बोध्यः, वराहविजयैः=वराहविजयकारिणां बहूनां योद्धृणां विजयैः; निःसंख्यरत्नाप्तिभिः=अगणितरत्नोपलब्धिभिः, युद्धाब्धिमध्ये—युद्धानि=संग्रामाः एवाब्धयः=सागरास्तेषां मध्ये, श्रियः=लक्ष्म्याः, विजयलक्ष्म्या इत्यर्थः, स्वरसस्वयंवरशतैः—स्वरसानाम्=स्वेच्छया कृतानां स्वयंवराणां शतैः, तथा बलिबन्धनैः—बलिनाम्=बलवतां वरुणादिलोकपालानां बन्धनैः=स्वायत्तीकरणैः, एवं विधैर्बहुभिः=अनेकसंख्याकैः, साश्चर्यैः=आश्चर्यजनकैः कर्मभिः प्रख्यातः=विश्वविश्रुतः, तथा नित्यम्=सर्वदा, उत्थितः=उत्साह-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरित:, पौलस्त्यः = रावणः, सकृत् = एकवारम्, उद्यमश्रमवशात् = पराक्रमश्रान्त्येत्यर्थः, त्रैलोक्याक्रमणकौस्तुभमणिप्राप्तिलक्ष्मीस्वयंवरणादिकार्ये वारमेकमेवोद्योगे कृते यः श्रमस्तद्वशात्, व्यासक्तनिद्रम् = प्रगाढनिद्रासेवनपरम्, हरिम् = विष्णुम्, उपहसति = स्वापेच्छया हीनबलं मत्वोपहसतीत्यर्थः ॥

अत्र शुकसारणाभ्यां रघुपतेरग्रे दशग्रीवपराक्रमेऽभिधीयमाने यदुक्तं पौलस्त्यः शेषशायिनं हरिमेकवारोद्योगश्रमवशेन संसक्तालस्यनिद्रमनेकत्रैलोक्याक्रमणैर्वराहविजयिनां सुभटानां जयैरनेकरत्नप्राप्तिभिः समरसमुद्रमध्ये बहुवारविहितैः श्रियः स्वयंवरशतैर्बलिनां च लोकपालानां बन्धनैः प्रख्यातः सदोत्थितः सोत्साहः सततं हसतीति बहुवचनैरेव हरिवैलक्षण्यलक्षणमुपचितमौचित्यमुदञ्चितम् ।

अर्थ :—इस पद्य में शुक एवं सारण के द्वारा रामचन्द्र के सामने रावण के पराक्रम के वर्णन क्रम में जो यह कहा गया कि रावण एक बार उद्योग करने के अनन्तर थक कर निद्रा का आश्रयण करनेवाले विष्णु की हँसी उड़ा रहा है, क्योंकि वह स्वयं अनेक वार त्रिलोकी का आक्रमण (विजयभ्रमण) कर चुका है, वाराहों को जीतनेवाले योद्धाओं के ऊपर विजय पा चुका है, अनेक रत्न प्राप्त कर चुका है, समर-सागर के बीच कई बार लक्ष्मी के द्वारा स्वयंवर किया जा चुका है तथा लोक-पालों को बहुत बार बाँधने के कारण त्रिलोकी-प्रसिद्ध हो चुका है किन्तु फिर भी वह आलस्य एवं थकावट से रहित होकर सदा उद्योग के लिये तत्पर रहता है। यही कारण है कि वह विष्णु की सदा हँसी उड़ाता रहता है। इस तरह यहाँ बहुवचन के प्रयोग से ही विष्णु की अपेक्षा अधिक वैलक्षण्य रावण में आ पाता है। अतः यहाँ बहुवचन का प्रयोग अत्यन्त उचित एवं सुन्दर है ॥

टीका—अत्र = उक्ते पद्ये; शुकसारणाभ्यां रामचन्द्रस्य, अग्रे = पुरतः, दशग्रीवपराक्रमे—दशग्रीवस्य = दशाननस्य पराक्रमे = शौर्ये, अभिधीयमाने = वर्ण्यमाने, यदुक्तम् = यत्कथितम्, पौलस्त्यः = रावणः, एकवारोद्योगश्रमवशेन—एकवारं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतो य उद्योगस्तस्य श्रमवशेन=श्रान्तिकारणेन, संसक्तालस्यनिद्रम्—संसक्तम्=संलग्नं यदालस्यम्=श्रान्तिस्तेन निद्रास्वापो यस्य तादृशम्, शेषशायिनं हरिम्-नेकत्रै लोक्याक्रमणैः=बहुवारं विजयप्रसङ्गेन कृतत्रैलोक्यक्रमणैः, वराहविजयिनां सुभटानाम्=दुर्दान्तसूकरनिपातनसमर्थानां सुयोद्धृणाम्, जयैः=विजयैः अनेकरत्न प्राप्तिभिः=बहूनां रत्नानां स्वाधिकारैः, समरसमुद्रमध्ये=युद्धसागरमध्ये, बहुवार-विहितैः=अनेकवारं सम्पादितैः, श्रियः=लक्ष्म्याः, स्वयंवरशतैः, बलिनाम्=बलशालिनाम्; लोकपालानाम्=लोकाधिपानां वरुणादीनाम्, बन्धनैः=स्ववशी-करणैः, प्रख्यातः=प्रसिद्धिं गतः, सदोत्थितः=सदोद्योगाय सज्जः, सततम्=निरन्तरम्, हसतीति=उपहसतीति, बहुवचनैरेव=बहुवचनोपादानैरेव, हरिवै, लक्षण्यलक्षणम्=विष्णुवैचित्र्यरूपम्, उपचितम्=समृद्धम्, औचित्यमुदञ्चितम्=समृद्धम्। अस्मिन् श्लोके बहुवचनग्रहणादेवोपहासयोग्यता सम्पन्नेति वचनौचित्य-मिति भावः ॥

नतु यथा मातृगुप्तस्य—

नायं निशामुखसरोरुहराजहंसः,
कीरीकपोलतलकान्ततनुः शशाङ्कः।
आभाति नाथ ! तदिदं दिवि दुग्धसिन्धु-
डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डु यशस्त्वदीयम् ॥

अर्थः—वचनगत अनौचित्य का उदाहरण देने के लिए कहा जा रहा है—न कि जैसे मातृगुप्त का यह श्लोक है—

हे राजन्, निशारूपी सुन्दरी के मुख-कमल पर रहने वाला राजहंसरूप, शुकी के गंडस्थल के समान पाण्डुर यह चन्द्र नहीं है। यह तो दुग्ध-सागर के फेन-पिण्ड के समान श्वेत आपका यश ही आकाश में चमक रहा है ॥

टीका—वचनानौचित्यमुदाहर्तुमाह—नतु यथा मातृगुप्तस्येति। नायमिति। हे नाथ=हे स्वामिन्, अयम्=पूर्वस्यां दिशि दृश्यमानः, निशामुखसरोरुहराज-हंसः—निशायाः=रात्र्याः, निशानायिकाया इत्यर्थः, मुखम्=आननमेव सरो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुहम् = कमलं तत्र राजहंसः = मरालः, मरालस्वरूप इत्यर्थः, कीरीकपोलतल-कान्ततनुः = कीर्याः = शुक्याः कपोलतलम् = गण्डस्थलमिव कान्ता = मनोहारिणी तनुः = शरीरं यस्यासौ तादृशः, शशाङ्कः = चन्द्रः, न = नास्ति; अपि तु, इदम् = एतत् दृश्यमानं मण्डलम्, दुग्धसिन्धुडिण्डीरपिण्डपरिपाण्डु—दुग्धसिन्धोः = क्षीरसागरस्य डिण्डीरस्य = फेनस्य पिण्डमिव = गोलकमिव पाण्डु = धवलम्, त्वदीयम् = भवदीयम्, तत् = प्रसिद्धम्, जगद्व्यापीत्यर्थः, यशः = कीर्तिः, आकाशे, आभाति = प्रकाशते ॥

अत्र नायं शशी त्वदीयं दुग्धाब्धिफेनपिण्डपाण्डुरं यश इति यदभिहितं तदविच्छिन्नप्रसराणां यशसां बहुवचनेन वर्णनायां समुचितायामेकवचनोपन्यासश्चन्द्रबिम्बाकारेण, पिण्डमात्रपरिच्छिन्नतया सङ्कोचरूपमनौचित्यमुद्भावयति ।

अर्थ :—इस पद्य में "यह चन्द्रमा नहीं है अपितु क्षीरसागर के फेन के समान तुम्हारा धवल यश है" ऐसा जो कहा गया है वह अनुचित है, क्योंकि यश चारों ओर फैला हुआ है। अतः उसके लिये "यशांसि" ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग समुचित है। किन्तु यहाँ तो 'यशः' यह एकवचनान्त प्रयोग किया गया है इससे वह यश पिण्डमात्र प्रमाणवाले चन्द्र के बिम्बाकार में सङ्कुचित हो गया है। यही कारण है कि इस श्लोक को वचनानौचित्य के रूप में उद्धृत किया गया है ॥ २२ ॥

टीका—अत्र नायमिति । अत्र = अस्मिन् पद्ये, अयम् = एषो दिवि भासमानः, शशी न = चन्द्रो नास्ति, अपि तु दुग्धाब्धिफेनपिण्डपाण्डुरम् = क्षीरसागरडिण्डीरगोलकधवलम्, त्वदीयं यश इति यदभिहितम् = यत्कथितम्, तत् = तत्कथनमित्यर्थः, अविच्छिन्नप्रसराणाम् = सर्वत्रव्याप्तानाम्, यशसां बहुवचनेन = बहुवचनान्तप्रयोगेण, वर्णनायां समुचितायाम् = योग्यायाम्, एकवचनोपन्यासः = यश इति एकवचनान्तत्वेन प्रयोगः, चन्द्रबिम्बाकारेण = शशीमण्डलरूपेण, पिण्डमात्रपरिच्छिन्नतया = पिण्डप्रमाणस्वरूपेण, सङ्कोचरूपम् = यशसः सङ्कोचस्वरूपम्, अनौचित्यम् = अयोग्यताम्, उद्भावयति = प्रकटयति ॥ २२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषणौचित्यं दर्शयितुमाह—

विशेषणैः समुचितैर्विशेष्योऽर्थः प्रकाशते ।
गुणाधिकैर्गुणोदारः सुहृद्भिरिव सज्जनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—गुणाधिकैः, सुहृद्भिः, गुणोदारः, सज्जनः, इव, समुचितैः, विशेषणैः, विशेष्यः, अर्थः प्रकाशते ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—गुणाधिकैः=अत्यन्त गुणशाली, सुहृद्भिः=मित्रों से, गुणोदारः =दया दाक्षिण्य आदि गुणों से उदार, सज्जनः=सज्जन की, इव=तरह, समुचितैः=योग्य, विशेषणैः = विशेषणों से, विशेष्यः=विशेष्य भूत, अर्थः = अर्थ, प्रकाशते=प्रकाशित होता है ॥ २३ ॥

अर्थ :—वचनौचित्य के अनन्तर क्रम-प्राप्त ग्यारहवें विशेषणौचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—

अत्यन्त गुणशाली मित्रों से युक्त, दया दाक्षिण्य आदि गुणों के कारण उदार सज्जन व्यक्ति की तरह योग्य विशेषणों से युक्त विशेष्यभूत अर्थ प्रकाशित होता है ॥ २३ ॥

टीका—वचनौचित्यप्रदर्शनानन्तरं क्रमागतमेकादशतमं विशेषणौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—विशेषणैरिति । गुणाधिकैः—गुणैः=दयादिभिरान्तरैर्मार्वैरधिकाः=वृद्धिङ्गतास्तैः, सुहृद्भिः=मित्रैः, गुणोदारः—गुणैरुदारः=विनम्रः, सज्जन इव=सत्पुरुष इव, समुचितैः=योग्यैः विशेषणैः=अवच्छेदकैः, विशेष्यः =विशेष्यभूतः, अर्थः प्रकाशते=चमत्करोति ॥ २३ ॥

काव्ये विशेष्योऽर्थः समुचितैरेव विशेषणैः शोभां लभते, गुणोदारः साधुर्यथाऽभ्यधिकगुणैः सुहृद्भिः ।

अर्थ :—काव्य में विशेष्यभूत अर्थ उचित विशेषणों से उसी प्रकार शोभा को प्राप्त होता है जैसे गुणवान् सज्जन अधिक गुणशाली मित्रों के साथ सुशोभित होता है ।

टीका—कारिकार्थमेव विवृणोति—काव्य इति । काव्ये=रसाभिव्यञ्जक-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविनिर्मितौ, विशेष्यभूतोऽर्थः, समुचितैरेव = योग्यैरेव, विशेषणैः = अवच्छेदक-शब्दैः, शोभाम् = सौन्दर्यम्, लभते = प्राप्नोति, उदाहरति—यथा गुणोदारः = गुणैरलंकृतः, साधुः = सज्जनः, अभ्यधिकगुणैः = स्पृहणीयगुणयुक्तैः, सुहृद्भिः = मित्रैः, शोभत इति शेषः ।

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

चैत्रे सूत्रितयौवनान्युपवनान्यामोदिनी पद्मिनी,
ज्योत्स्नाप्रावरणानि रत्नवलभीहर्म्याणि रम्याः स्त्रियः ।
सर्वं चारुतरं न कस्य दयितं यस्मिंस्तु तद्भुज्यते,
तन्मृन्निर्मितमामभाजनमिव क्षिप्रक्षयं जीवितम् ॥

अर्थ :—जैसे मेरे मुनिमतमीमांसाकाव्य का यह श्लोक है—

चैत्र के महीने में उमड़े हुए यौवन वाले उपवन, सुगन्ध को बिखराने वाली कमलिनी, चाँदनी की चादर ओढ़े हुए रत्नों की छज्जा वाली विशाल अट्टालिकायें, सुन्दरी रमणियाँ—अत्यन्त लुभावनी ये चीजें भला किसे प्रिय नहीं लगतीं ? किन्तु जिस (जीवन) में इनका उपभोग किया जाता है वह जीवन ही मिट्टी से बने कच्चे बर्तन के समान क्षणभङ्गुर है ॥

टीका—विशेषणौचित्यमुदाहर्तुमाह—चैत्र इति । चैत्रे = मधौ, चैत्रमास इत्यर्थः, सूत्रितयौवनानि—सूत्रितम् = पिनद्धम् यौवनम् = तारुण्यम् येषु तानि तादृशानि, उपवनानि = उद्यानानि, सन्तीति क्रियाशेषः, आमोदिनी = सौगन्ध्य-प्रचुरा, पद्मिनी = कमलिनी, वर्तते । ज्योत्स्नाप्रावरणानि-ज्योत्स्ना = कौमुदी प्रावरणम् = आच्छादकं वस्त्रं येषु तानि येषां तानि वा, रत्नवलभीहर्म्याणि—रत्नानाम् = मणीनाम् वलभी = गोपानसी येष्वेवं भूतानि हर्म्याणि = प्रासादतलानि, सन्ति । रम्याः = मनोहारिण्यः, स्त्रियः = सुन्दर्यश्च, सन्ति । सर्वम् = पूर्वोक्तं निखिलम्, चारुतरम् = नितरां रमणीयम्, कस्य = कस्य सचेतसः, न दयितम् = न प्रियम् ? अपि तु सर्वस्य प्रियमेव । तु = किन्तु, यस्मिन् = यस्मिन् जीवने, तत् = पूर्वोक्तं सर्वम्, भुज्यते = भोगविषयीक्रियते, तत् = तज्जीवितं मृन्निर्मित-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाजनमिव—मृदा = मृत्तिकया निर्मितम् = घटितम् भाजनम् = पात्रमिव, क्षिप्रक्षयम् = क्षणभङ्गुरमस्तीति क्रियाशेषः ॥

अत्र युधिष्ठिरस्यासादितमहाविभूतेर्मयनिर्मितमणिमयसभाभिमानिनो विभवप्रभावे वर्ण्यमाने सकलभावाभावस्वरूपभाववादोपदेशिनोमहामुनेराशयविचारावसरे यदुक्तं कुसुमसमयसमुपचितयौवनान्युपवनानि मकरन्दामोदसुन्दरारविन्दिनी ज्योत्स्नापटप्रावृतानि रत्नवलभीहर्म्याणि रमणीया रमण्यश्चेति सर्वमेतच्चारुतरं सर्वस्याभिमतम्। किन्तु यस्मिन्भुज्यते तज्जीवितमाममृत्पात्रनिःसारं क्षिप्रक्षयमिति तद्विशेष्यपदोत्कर्षकारिविशेषणपदोदितसौन्दर्येण पर्यन्तनिःसारतानिर्वेदसंवादिस्फुरदौचित्यमातनोति।

अर्थ :—इस पद्य में अतुलित वैभवशाली, मय के द्वारा निर्मित मणिमय सभा के कारण गर्वीले युधिष्ठिर के वैभव के वर्णन के सन्दर्भ में सकल भौतिक पदार्थों के अभाववादी महामुनि भगवान् बुद्ध के तात्पर्यालोचन करते समय जो यह कहा गया है कि—"वसन्त के कारण अंगड़ाई लेते हुए यौवन से युक्त उपवन, कमलमकरन्द की सुगन्ध से आकर्षक कमल-लता, चाँदनी रूपी चादर को ओढ़े, रत्नमण्डित छज्जा वाली विशाल अट्टालिकायें और मनोहारिणी रमणियाँ—ये सभी अत्यन्त आकर्षक वस्तुएँ सब को अभिमत हैं। किन्तु इनका उपभोग जिस जीवन में किया जाता है, वह जीवन ही कच्ची मिट्टी से बने निर्बल पात्र के समान क्षण-भङ्गुर है"—इस प्रकार जो कहा गया है उसमें जीवनरूप विशेष्य की उत्कृष्टता बतलानेवाले क्षिप्रक्षय आदि विशेषण पद से प्राप्त सौदर्य के कारण उज्ज्वल औचित्य वृद्धिङ्गत हो रहा है जो पार्यन्तिक असारताबुद्धि से होने वाले वैराग्य का समर्थक है ॥

टीका—अत्रेति। अत्र = अस्मिन् पद्ये, आसादित महाविभूतेः—आसादिता अधिगता महती विभूतिः = ऐश्वर्यं येन तादृशस्य, मयदानवरचितमणिमयसभायाः—मयदानवेन = मयनाम्ना प्रसिद्धेन दानवेन रचिता = निर्मिता या मणि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मयसभा तस्याः, अभिमानिनः = गर्विष्ठस्य, युधिष्ठिरस्य = पाण्डवप्रमुखस्य, विभवप्रभावे = ऐश्वर्यमहत्त्वे, वर्ण्यमाने = कथ्यमाने, सकलभावेत्यादिः---सकलानाम् = समग्राणाम् भवन्त्युत्पद्यन्त इति भावास्तेषां भावानाम् = सकलजागतिकवस्तूनाम् अभावस्वरूपभाववादस्य = अभावस्वरूपतया वादस्येत्यर्थः, जागतिकसकलवस्त्वनस्तित्वप्रतिपादकसिद्धान्तस्येति यावत्, उपदेशिनः = उपदेशस्य, महामुनेः = भगवतो बुद्धस्य, आशयविचारावसरे---आशयस्य = अभिप्रायस्य विचारावसरे = विश्लेषणकाले, "कुसुमकालसम्भृतान्युद्यानानि, मकरन्दसौरभपूरिता कमलिनी, चन्द्रिकापटाच्छादितानि मणिमयवलभीप्रासादतलानि, रमणीया रमण्यश्चेति निखिलमिदं चारुतरम् सर्वेषां प्राणिनामभीप्सिततमं किन्तु यस्मिन् जीवन एतत् सर्वमुपभुज्यते = सेव्यते, तत् = जीवितमित्यर्थः, आममृत्तिकाभाजनमिव साररहित शीघ्रविनाशिशीलमिति" यदुक्तं तज्जीवनरूपविशेष्यपदार्थोत्कर्षकारकक्षिप्रक्षयादिविशेषणपदैः प्रकटीकृतसौन्दर्येण, पर्यन्ते = अवसाने निःसारतया जनितेन निर्वेदेन संवादि = सदृशम्, स्फुरत् = चमत्कारं कुर्वत् औचित्यम्, आतनोति = प्रकाशयति ॥

न तु यथा भट्टलट्टनस्य---

ग्रीष्मं द्विषन्तु जलदागममर्थयन्तां
ते सङ्कटप्रकृतयो विकटास्तडागाः ।
अब्धेस्तु मुग्धशफरीचटुलाचलेन्द्र-
निष्कम्पकुक्षिपयसो द्वयमप्यचिन्त्यम् ॥

अर्थ :---विशेषण के अनौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कह रहे हैं---न कि जैसा भट्ट लट्टन का निम्न पद्य है---

सङ्कुचित स्वभाव वाले, देखने में विस्तृत (भीषण) लगने वाले वे (सूखे) तालाब ग्रीष्म ऋतु की निन्दा एवं वर्षा की अभ्यर्थना भले ही करें किन्तु भोलीभाली मछली की तरह चलायमान मन्दराचल से भी क्षुभित न होने वाले सागर के लिये तो दोनों ही (ग्रीष्म एवं वर्षा) अकिञ्चित्कर हैं (अर्थात् सागर के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये दोनों ही ऋतुएँ समान हैं, क्योंकि वह न तो ग्रीष्म में तिल भर सूखता है और न वर्षा में तिलभर बढ़ता ही है)॥

टीका—विशेषणानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—ग्रीष्ममिति । सङ्कटप्रकृतयः—सङ्कटाः = सङ्कुचिताः प्रकृतयः=स्वभावः येषान्ते तादृशाः, विकटाः=जलाभावात् विस्तीर्णाः भीषणाश्च ते=वर्णनीयाः, तडागाः=जलाशयाः, ग्रीष्मम्=जलशोषकं ग्रीष्मर्तुम्, द्विषन्तु=निदन्तु, जलदागमम्=वर्षागमम्, अर्थयन्ताम् अभ्यर्थयन्ताम् प्रार्थयन्त्वित्यर्थः; तु=किन्तु मुग्धशफरीचटुलाचलेन्द्रनिष्कम्पकुक्षिपयसः—मुग्धा=वराकी या शफरीवत्=मत्स्याङ्गनेव चपलेन=चलायमानेन अचलेन्द्रेण=मन्दराचलेनापि निष्कम्पम्=निश्चलम् . कुक्षेः = उदरस्याभ्यन्तरस्येति यावत्, पयः=जलं यस्यैवम्भूतस्य, अब्धेः सागरस्य, द्वयमपि=ग्रीष्मनिन्दनं जलदागमाभ्यर्थनञ्च द्वयमपि, अचिन्त्यम्=अविचार्यम्, अकरणीयमिति यावत् ॥

अत्र ग्रीष्मं द्विषन्तु मेघागमं सङ्कटस्वभावा विकटा विस्तीर्णाश्च तटाकाः प्रार्थयन्ताम्, महाब्धेस्तु बालशफरीलोलाचलेन्द्रनिश्चलकुक्षिपयसो ग्रीष्मघनागमावप्यगणनीयाविति यदुक्तम्,तत्र तडागविशेषणयोः सङ्कटविकटपदयोः परस्परविरुद्धार्थयोरनौचित्यं स्पष्टमवभासते, सङ्कटस्वभावस्य हि विकटत्वं विस्तीर्णत्वं नोपपद्यते। अथ स्वभावे सङ्कटत्वमाकारे विकटत्वम्, तदपि तटाकस्य निश्चेतनस्य स्वभावाभावादनुपपन्नमेव ॥ २३ ॥

अर्थ :—इस पद्य में "संकुचित स्वभाव वाले तथा विस्तीर्ण तडाग ग्रीष्म की निन्दा करें अथवा वर्षागम की प्रार्थना करें किन्तु छोटी मछली की भाँति प्रतीत होने वाले चलायमान मन्दराचल से भी निश्चल आभ्यन्तारिक जलवाले सागर के लिये तो ग्रीष्म तथा वर्षागम अगणनीय हैं" ऐसा जो कहा गया है उसमें परस्पर विरुद्ध अर्थ वाले तडाग के विशेषण रूप में प्रयुक्त संकट और विकट पद का अनौचित्य स्पष्ट ही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि सङ्कट (संकुचित)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभाव वाले के लिए विकटता (अर्थात् विस्तीर्णता) उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। यदि कहा जाय कि उनके स्वभाव में संकुचितता और आकार में विकटता है तो भी ठीक नहीं है क्योंकि स्वभाव तो चेतन में रहने वाला धर्म है और तडाग है अचेतन। अतः यह पद्य विशेषणानौचित्य का ही उदाहरण कहा जायगा ॥ २३ ॥

टीका—अत्र ग्रीष्ममिति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, "सङ्कटस्वभावाः=संकुचितप्रकृतयः, विकटाः=विस्तीर्णाः=तटाकाः=स्वल्पजलाशयाः, ग्रीष्मम्=धर्मकालम्, द्विषन्तु=अनभिनन्दन्तु, तथा मेघागमम्=वर्षागमम्, प्रार्थयन्ताम्=अर्थयन्ताम्, शिशुशफरीवच्चपलमन्दराचलनिष्कम्पोदरजलस्य, महाब्धेः=महासागरस्य, ग्रीष्ममेघागमावुभावप्यगणनीयाविति" यदुक्तम्=यत्कथितम्, तत्र परस्पर विपरीतार्थयोस्तडागविशेषणभूतयोः सङ्कट-विकटपदयोरनौचित्यं सम्यगवभासते। कुतः? उच्यते—सङ्कटेति। सङ्कटस्वभावस्य=सङ्कुचितप्रकृतेः विकटत्वम्=विस्तीर्णत्वम्, नोपपद्यते=नौचित्यं भजते। अथ=यदि, स्वभावे=प्रकृतौ, सङ्कटत्वम्=सङ्कुचितत्वम्, तथा आकारे=आकृतौ, विकटत्वम्=विशालतेत्युच्यते, तर्हि तदपि निश्चेतनस्य=निर्जीवस्य तटाकस्य, स्वभावात्=चैतन्यशून्यत्वकारणात्, अनुपपन्नमेव=अयुक्तिकरमेव, तदपि न समीचीनमिति भावः ॥ २३ ॥

उपसर्गौचित्यं दर्शयितुमाह—

योग्योपसर्गसंसर्गैर्निरर्गलगुणोचिता ।
सूक्तिर्विवर्धते सम्पत्सन्मार्गगमनैरिव ॥ २४ ॥

अन्वयः—निरर्गलगुणोचिता, सूक्तिः, योग्योपसर्गसंसर्गैः, सन्मार्गगमनैः सम्पत्, इव, विवर्धते ॥

शब्दार्थः—निरर्गलगुणोचिता=उचित गुणों से अलंकृत, सूक्तिः=सत्काव्यरूपी वचन, योग्योपसर्गसंसर्गैः=प्र परा आदि योग्य उपसर्गों के योग से, सन्मार्गगमनैः=सत्कर्म में व्यय होने वाले, सम्पत्=धन की, इव=तरह,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विवर्धते=वृद्धि को प्राप्त होता है, शोभित होता है ॥ २४ ॥

अर्थ :—विशेषणौचित्य को दिखलाने के अनन्तर यथावसर अब बारहवें उपसर्गगत औचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कह रहे हैं—

उचित गुणों से अलंकृत सत्यकाव्यरूपी वचन 'प्र, परा' आदि योग्य उपसर्गों के संसर्ग से उसी प्रकार शोभित होते हैं जैसे सत्कर्म में व्यय होने वाला धन सुशोभित होता है (वृद्धि को प्राप्त करता है) ॥ २४ ॥

टीका—विशेषणौचित्यानौचित्यप्रदर्शनानन्तरं क्रमप्राप्तं द्वादशतममुपसर्गौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—योग्येति। निरर्गलगुणोचिता—निरर्गला:=उद्दामा ये गुणास्तैरुचिता=संयुक्ता, सूक्ति:=काव्यात्मकं सद्वचनम्, योग्योपसर्गसंसर्गै:—योग्या:=समुचिता: ये उपसर्गा:=प्रपरादयस्तेषां संसर्गै:=संयोगै:, सन्मार्गगमनै:—सन्मार्गे=सत्कार्ये गमनानि=विनियोगास्तै:, सम्पदिव=सम्पत्तिरिव, विवर्धते=वृद्धिङ्गच्छति ॥ २४ ॥

उचितैः प्रादिभिरुपसर्गैः सूक्तिरुन्नतिमासादयति, विभूतिरिव सन्मार्गगमनैः।

अर्थ :—कारिका की व्याख्या कर रहे हैं :—

प्र परा आदि उचित उपसर्गों से काव्य का महत्त्व उसी प्रकार बढ़ जाता है जैसे सत्यकार्य में व्यय होने वाली संपत्ति का महत्त्व वृद्धिङ्गत हो जाता है ॥

टीका—उचितैरिति। उचितै:=योग्यै:, प्रादिभिरुपसर्गै: सूक्ति:=सत्कविवचनं तथैव उन्नतिम्=समृद्धिम्, आसादयति=अधिगच्छति, यथा सन्मार्गगमनै:—सन्मार्गे=सत्यकार्ये गमनै:=विनियोगै:, विभूति:=सम्पत्तिरुन्नतिमासादयति ॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

आचारं भजते त्यजत्यपि मदं वैराग्यमालम्बते,
कर्तुं वाञ्छति सङ्गभङ्गलितोत्तुङ्गाभिमानं तपः।
दैवन्यस्तविपर्ययैः सुखशिखाभ्रष्टः प्रणष्टो जनः,
प्रायस्तापविलीनलोहसदृशीमायाति कर्मण्यताम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—उपसर्गगत औचित्य के उदाहरण को दिखलाने के लिये कर रहे हैं—जैसे कि मेरी मुनिमतमीमांसा का निम्न पद्य इसका उदाहरण है—

प्रसङ्ग :—गन्धर्वों से पराजित दुर्योधन के वैराग्य को लक्ष्य करके यह पद्य कहा गया है।

भाग्य के विमुख हो जाने के कारण सुख के ऊँचे शिखर से च्युत हुआ, सम्पत्ति-विहीन व्यक्ति सदाचार का पालन करता है, अभिमान को छोड़ देता है, वैराग्य का सेवन करता है तथा विषयों के संसर्ग के अभाव में अति भीषण अभिमान का त्याग करके तपस्या करना चाहता हैं। देखा जाता है कि, वैसा व्यक्ति प्रायः ताप-विगलित लौह के समान कार्य क्षमता को प्राप्त कर लेता है ॥

टीका—उपसर्गौचित्यमुदाहर्तुमाह—आचारमिति । गन्धर्वपराजितस्य दुर्योधनस्य वैराग्यादिकमुपलक्ष्य कथनमिदम् । दैवन्यस्तविपर्ययैः—दैवेन = भाग्येन न्यस्तैः = उपनतैः विपर्ययैः = विपर्यासैः, प्रतिकूल्यैरित्यर्थः, सुखशिखा-भ्रष्टः—सुखस्य = सौख्यस्य, आनन्दस्येति यावत्, शिखायाः = शिखरात्, भ्रष्टः = च्युतः, प्रणष्टः, सम्पत्तिविगलितः, जनः = व्यक्तिः, आचारम् = सदाचरणम्, भजते = सेवते, मदमपि = ऐश्वर्यमत्ततामपि, त्यजति = अपसारयति, वैराग्यम् = विषयेषु वितृष्णाम्, आलम्बते = धारयति, सङ्गभङ्ग-गलितोत्तुङ्गोभिमानम्—सङ्गस्य = विषयसंसर्गस्य भङ्गेन = त्यागेन गलितम् = विनष्टम् उत्तुङ्गम् = उन्नतम् अभिमानम् = गर्वो यस्मिंस्तत्, तपो विशेषणमेतत्, अथवा यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, तपः = तपस्याम्, कर्तुम् = विधातुम्, वाञ्छति = इच्छति । यतः प्रायः = बाहुल्येन, तापविलीनलोहसदृशीम्—तापेन = सन्तापेन विलीनः = आर्द्रताङ्गतो यो लोहः अयस्पिण्डः तस्य सदृशीम् = योग्याम्, कर्मण्यताम् = कार्यक्षमताम्, आयाति = आगच्छति, अधिगच्छतीत्यर्थः ॥

अत्र दुर्योधनस्य घोषयात्रायां गन्धर्वबन्धपराभवभग्नाभिमानस्य प्राज्यसाम्राज्यमुत्सृज्य तपःप्रयत्नाभिनिविष्टस्य दुर्ग्रहे वर्ण्यमाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदुक्तं—सर्वो जनः सुखभ्रष्टः प्रणष्टविभवः सदाचारं भजते, मदं त्यजति, वैराग्यमाश्रयति, सङ्गभङ्गेन विगलितोत्तुङ्गाभिमानं तपः कर्तुं वाञ्छति, प्रायो बाहुल्येन तापविगलितलोहपिण्डसदृशीं कर्षण्यतामायातीति, तत्रोत्पूर्वतया सोपसर्गस्य तुङ्गशब्दस्य स्वभावोन्नतिर्द्विगुणतामुपयाता दुर्मदाभिमानार्थौचित्यमुच्चैः करोति।

अर्थ :—इस पद्य में घोषयात्रा के समय गन्धर्वों के द्वारा हराकर बाँध लिए जाने के कारण चूर्ण अभिमानवाले, विशाल साम्राज्य का परित्याग कर तपस्या करने के प्रयत्न में लगे हुए दुर्योधन के हठ के वर्णन के प्रसङ्ग में जो यह कहा गया है कि—"सुख से च्युत एवं सम्पत्ति से विहीन सभी लोग सदाचार का आचरण करने लगते हैं, मद को छोड़ देते हैं, वैराग्य का आश्रय लेते हैं तथा आसक्ति के विनष्ट हो जाने से, हिमालय-सदृश उत्तुङ्ग अभिमान का परित्याग कर तपस्या करना चाहते हैं। देखा जाता है कि, प्रायः लोग ताप से ढीले पड़े हुए लोह-पिण्ड की भाँति कार्यक्षमता को प्राप्त करते हैं।" ऐसा जो कहा गया है उस में "उत्" रूप उपसर्ग के कारण "तुङ्ग" शब्द का उन्नति रूप अभिधेय अर्थ द्विगुणित हो जाता है। इसी से मदमत्त व्यक्ति में स्थित अभिमानरूप अर्थ का औचित्य अत्यन्त समृद्ध हो जाता है॥

टीका—अत्रदुर्योधनस्येति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, घोषयात्रायाम्=घोषगमनप्रसङ्गे, गन्धर्वबन्धपराभवभग्नाभिमानस्य—गन्धर्वेण=देवयोनिविशेषेण यो बन्धः=बन्धनम् तज्जनितो यः पराभवस्तेन भग्नम्=स्खलितम् अभिमानम्=गर्वो यस्य तादृशस्य, प्राज्यम्=प्रभूतं यत् साम्राज्यं, तदुत्सृज्य=त्यक्त्वा, तपःप्रयत्नाभिनिविष्टस्य—तपसः=तपस्यायाः प्रयत्ने=प्रयासे अभिनिविष्टस्य=अभिनिवेशवतः, दुर्ग्रहे=हठे, वर्ण्यमाने=कथ्यमाने, यदुक्तम्=यत् कथितम्—"सर्वोजनः सुखशिखरपतितः, विगलितविभवः, सदाचारमाचरति, मत्ततां परित्यजति, विरक्ति भजते, जागतिकजनपदार्थासक्तिं मुक्त्वा तपो विधातुमभिलषति, प्रायः=बाहुल्येन, वह्नि तापकिञ्चि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्नम्रलौहपिण्डतुल्यां कार्यक्षमतामागच्छतीति यत्कथितम्, तत्र कथने, उदुपसर्गस्य पूर्वस्थित्या सोपसर्गस्य तुङ्गशब्दस्य, स्वभावोन्नतिः=उन्नतिरूपाभिधेयार्थः, द्विगुणताम्=अत्यधिकामित्यर्थः, उपयाता=प्राप्ता सती, दुर्मदाभिमानार्थौचित्यम् =मदमत्तजनाभिमानरूपस्वार्थस्यानुरूपताम्, उच्चैः करोति=अभिवर्धयति । उपसर्गबलात् स्वाभाविकोऽर्थो द्विगुणितां चमत्कृतिमुपनीतो भवतीत्युपसर्गस्य प्रयोजनं पूर्णरूपेण निर्वाहितमिति ॥

न तु यथा कुमारदासस्य—

अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसङ्गमभीरु ! वल्लभम् ।
अरुणकरोद्गम एष वर्तते वरतनु ! सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः ॥

अर्थ :—उपसर्गगत अनौचित्य का प्रदर्शन करते हुए कह रहे हैं—न कि जैसा कुमारदास का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग—नवयौवना नवागता बधू संगम में विलीन थी। सारी रात प्रमोदों में बीत गई है। उसे इसका भान भी नहीं है। भोर में उसकी सखी प्रातःकाल होने की सूचना देती हुई कह रही है—

अरी सखि, अब गाढ़ालिङ्गन का त्याग करो। हे नवीन मिलन में भीरु सुन्दरी, प्रियतम को छोड़ो। हे सुकुमार शरीर वाली, यह सूर्य की प्रातः-कालीन सुनहरी किरणें आकाश में झाँक रही हैं। देखो, मुर्गे बोलना आरम्भ कर दिये हैं। (अतः केलि–मन्दिर से बाहर निकलो) ॥

टीका—उपसर्गगतानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—अयीति । नवकामकेलिव्रीडितां नवागतां कामिनीं ब्राह्मे मुहूर्ते जागरयति काचित् सखी—अयीति । अयि नव-सङ्गमभीरु—नवे=अभिनवप्राप्ते सङ्गमे=रतिसमरे भीरुः=कातरा तत्सम्बुद्धौ, दृढोपगूहनम्—दृढम्=अशिथिलञ्च तदुपगूहनम्=आलिङ्गनम्, तत्, विजहीहि=त्यज, वल्लभम्=दयितम्, त्यज=मुञ्च, एषः=अयम्, अरुणोद्गमः—अरुणस्य =सूर्यसारथेः उद्गमः=प्रादुर्भावः, वर्तते=जायते; हे वरतनु=हे सुकुमार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीरे, कुक्कुटाः=ताम्रचूडाः, सम्प्रवदन्ति=शब्दायन्ते । अतः कामभवनं परित्यज्य बहिरागन्तव्यं त्वयेत्यभिप्रायः ॥

अत्राभिनवानङ्गसङ्गमगाढालिङ्गननिश्चलाङ्गच्छन्नाङ्गनाप्रबोधने सख्या यदुक्तं मुञ्च वल्लभं प्रभातसंध्यायामरुणकिरणोद्गमो वर्तते, कुक्कुटाश्च सम्प्रवदन्तीति, तच्च सम्प्रोपसर्गशून्यशब्दापूरणमात्रेण निरर्थकत्वादनुचितमेव ॥ २४ ॥

अर्थ :—इस श्लोक में, नूतन काम-सङ्गम के समय गाढ़े आलिङ्गन में निश्चेष्ट अङ्गोंवाली नवयौवना को सावधान करने के लिए सखी ने जो यह कहा है कि –"प्रियतम को छोड़ो, प्रातः सन्ध्या का यह अरुणोद्गम होनेवाला है और मुर्गे भी बोलना शुरू कर दिये हैं इसमें "सम्प्रवदन्ति" का प्रयोग कर "सम्" और "प्र" रूप उपसर्ग का जो व्यवहार किया गया है उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं होता । यह अर्थ तो उपसर्ग विहीन "वदन्ति" इस प्रयोग से भी व्यक्त हो जाता है । अतः निरर्थक होने के कारण "सम्" एवं "प्र" का प्रयोग अनुचित है ॥ २४ ॥

टीका—अत्राभिनवेत्यादिः । अभिनवेत्यादिः—अभिनवे=नवीने अनङ्ग-सङ्गमे=कामसङ्गतौ यद् गाढम्=दृढम् आलिङ्गनम्=उपगूहनं तेन निश्चलानि =निश्चेष्टानि अङ्गानि=अवयवास्तैश्छन्नायाः=युक्तायाः, अङ्गनायाः= कामिन्याः प्रबोधने=उद्बोधने, सख्या=वयस्यया—"वल्लभम्=प्रियम्, मुञ्च=त्यज, प्रभातसन्ध्यायाम्=प्रातः सन्धौ, अरुणकिरणानाम् उद्गमः=प्रादुर्भावो वर्तते=जायते, च=तथा, कुक्कुटाः=ताम्रचूडाः सम्प्रवदन्ति=उच्चैः शब्दा-यन्ते ।" इति यदुक्तं तत्, सम्प्रोपसर्गशून्यशब्दापूरणमात्रेण=सम्प्रेत्युपसर्गद्वय-शून्येन केवलं वदन्तीतिप्रयोगमात्रेणाभिधीयतेऽतो निरर्थकत्वात्=प्रयोजनाभावात्, अनुचितमेव=अयोग्यमेवेति ॥ २४ ॥

निपातौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितस्थानविन्यस्तैर्निपातैरर्थसङ्गतिः ।
उपादेयैर्भवत्येव सचिवैरिव निश्चला ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय—उचितस्थानविन्यस्तैः, उपादेयैः, निपातैः, सचिवैः, इव, निश्चला, अर्थसंगतिः, भवत्येव ॥ २५ ॥

शब्दार्थं—उचितस्थानविन्यस्तैः=उचित स्थानों पर लगाये गये, उपादेयैः= योग्य, निपातैः=च, वा, ह आदि निपातों से, सचिवैः=मन्त्रियों की, इव= तरह, निश्चला=निश्चल, निःसन्दिग्ध, अर्थसङ्गतिः=अर्थ-संगति, भवत्येव= होती ही है ॥ २५ ॥

अर्थं—उपसर्गगत औचित्य-अनौचित्य का प्रदर्शन करने के अनन्तर अब क्रम प्राप्त तेरहवें निपातगत औचित्य को दिखलाने जा रहे हैं—

उचित स्थानों पर लगाये गये योग्य च, वा, आदि निपातों से निश्चल अर्थसङ्गति उसी प्रकार से होती है जैसे योग्य मन्त्रियों की नियुक्ति से कोष आदि अक्षय बना रहता है ॥ २५ ॥

टीका—उपसर्गगतौचित्यानौचित्ये विवेच्य सम्प्रति क्रमागतं त्रयोदशतमं निपातौचित्यं विवेचयितुमाह—उचितेति । उचितस्थानविन्यस्तैः—उचितेषु= योग्येषु स्थानेषु=स्थलेषु विन्यस्तैः=प्रयुक्तैः, उपादेयैः=योग्यैः, निपातैः= चवाहादिभिः, उचितस्थानविन्यस्तैः, उपादेयैः, सचिवैः=मन्त्रिभिः, इव= यथा, निश्चला=सदृढा, अर्थसङ्गतिः—अर्थस्य=गावस्य, अपरत्र धनस्य च. सङ्गतिः=सामञ्जस्यम् अपरत्र प्राप्तिश्च, भवत्येव=जायत एव। एवकारो दार्ढ्यें । योग्यसचिवानां विनियोगैर्यथा धनप्राप्तिर्दृढा जायते तथैवोचितनिपातप्रयोगैरभिधेयार्थप्रतीतिर्निश्चला जायत एवेति ॥ २५ ॥

उपादेयैश्चादिभिर्निपातैरुचितपदविनिवेशितैः काव्यार्थस्य सङ्गतिरसन्दिग्धा सत्सहायैरिव भवति ।

अर्थः—उचित स्थान पर प्रयुक्त, उपादेय च आदि निपातों द्वारा, योग्य मन्त्रियों की नियुक्ति से अक्षय कोष की भाँति, अर्थसङ्गति असन्दिग्ध बनी रहती है ॥

टीका—कारिकार्थमेव विवृणुते—उपादेयैरिति । उचितपदविनिवेशितैः=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उचितस्थानविन्यस्तैः, उपादेयैः=योग्यैः, चादिभिर्निपातैः, काव्यार्थस्य सङ्गतिस्तथैवासन्दिग्धा=निश्चयपूर्णा भवति यथा सत्सहायैः=सन्मन्त्रिभिः, कोषार्थस्य, सङ्गतिः=स्थितिः, असन्दिग्धा=सुनिश्चिता, भवति=जायते ॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

सर्वे स्वर्गसुखार्थिनः क्रतुशतैः प्राज्यैर्यजन्ते जडा-
स्तेषां नाकपुरे प्रयाति विपुलः कालः क्षणार्धं च तत् ।
क्षीणे पुण्यधने स्थितिर्न तु यथा वेश्यागृहे कामिनां,
तस्मान्मोक्षसुखं समाश्रयत भोः ! सत्यं च नित्यं च यत् ॥

अर्थः—निपातगत औचित्य को दिखलाने के लिए कहा गया है—जैसे मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

स्वर्ग के सुख की कामना वाले सभी मूर्ख अत्यन्त व्ययपूर्ण बड़े-बड़े सैकड़ों यज्ञों से यजन करते हैं। परिणामस्वरूप वे लोग बहुत दिनों तक स्वर्ग में निवास भी करते हैं। किन्तु पुण्य के क्षीण हो जाने पर उन्हें वहाँ आधा क्षण भी उसी प्रकार नहीं ठहरने दिया जाता जिस प्रकार धन समाप्त हो जाने पर वेश्या के घर में किसी कामुक को नहीं ठहरने दिया जाता। अतः हे मूढो, मोक्ष-सुख का ही आश्रयण करने का यत्न करो। वही सत्य भी है और अविनाशी भी ॥

टीका—निपातगतौचित्यमुदाहर्तुमाह—सर्वेस्वर्गसुखार्थिन इति। स्वर्गसुखार्थिनः—स्वर्गस्य=नाकस्य सुखम्=आनन्दम् अर्थयन्ते=कामयन्ते इति स्वर्गसुखार्थिनः=स्वर्गसौख्यकामयमानाः, सर्वे=निखिलाः, जडा=बुद्धिविहिनानराः प्राज्यैः=सम्पन्नैः, क्रतुशतैः=यज्ञशतैः, यजन्ते=देवान् अर्चयन्ति। फलतः, नाकपुरे=स्वर्गे, तेषाम्=यजनकर्तॄणाम्, विपुलः=सुमहान्, कालः=समयः, प्रयाति=गच्छति। किन्तु पुण्यधने=पुण्येरूपे धनेऽर्जिते संचिते च धनेऽपि, क्षीणे=अपगते, तत्=तस्मिन् स्वर्गे, क्षणार्धम्=स्वल्पकालपर्यन्तमपि, तथैव स्थितिः=अवस्थानम्, न भवति यथा धनेऽपगते कामिनाम्=कामुकानाम्, वेश्यागृहे=रूपाजीवाभवनेऽवस्थानं न शक्यते। तस्मात्=ततः, भोः=हे जनाः,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोक्षसुखम्=मोक्षरूपम् परमानन्दम्, समाश्रयत=भजत, यत्=यन्मोक्षसुखम्, सत्यम्=यथार्थापन्नम्, च=तथा, नित्यञ्च=अविनाश्यपि ॥

अत्र स्वर्गसुखस्य वेश्याभोगवदवसानविरसचपलतायां प्रतिपादितायां निश्चलमोक्षसुखस्य निःसन्देहनिश्चिता प्रतिपत्तिर्निपातपदोपबृंहिता वाक्यार्थौचित्यं जनयति।

अर्थः—इस पद्य में स्वर्ग-सुखको वेश्या-भोग के समान विरसपरिणामवाला तथा अनित्यवत् लाया गया है, जिससे मोक्ष-सुख की स्थिरता एवं सत्यता की प्रतीति स्पष्ट रूप से हो जाती है और यह सत्यता तथा नित्यता 'सत्यं च नित्यं च' के साथ प्रयुक्त च रूप निपात से और अधिक बढ़ जाती है। अतः इसे निपातगत् औचित्य का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

टीका—कारिकार्थमेव स्पष्टयति—अत्र स्वर्गसुखस्येति। अत्र=एतस्मिन् श्लोके, स्वर्गसुखस्य=नाकानन्दस्य, वेश्याभोगवदवसानविरसचपलतायाम्—वेश्याभोगवत्=वारवधूकामोपभोगवत्, अवसाने=अन्ते, विरसचपलतायाम्=रसाभावक्षणिकतायाम्; प्रतिपादितायाम्=कथितायां सत्याम्, निश्चलम्=स्थायि यत् मोक्षस्य=मुक्तेः सुखम्=आनन्दस्तस्य, निःसन्देहनिश्चिता=सन्देहाभावस्थिरा, प्रतिपत्तिः=अर्थज्ञानम्, निपातपदोपबृंहिता—निपातपदेन=च इति निपातेन, उपबृंहिता=वृद्धिङ्गता सती वाक्यार्थौचित्यम्—वाक्यार्थस्य=वाक्याभिधेयस्य औचित्यम्=अधिकांशचमत्कृतिपूर्णां योग्यताम् जनयति=उत्पादयति। नित्यतासत्यतारूपोऽत्रशब्दार्थश्चेति निपातेनाधिकां चमत्कृतिमासादयतीति भावः॥

न तु यथा श्रीचक्रस्य—

देवो जानाति सर्वं यदपि च तदपि ब्रूमहे नीतिनिष्ठं,
सार्द्धं सन्धाय जालान्तरधरणिभुजा निर्वृतो बान्धवेन।
म्लेच्छानुच्छिन्धि भिन्धि प्रतिदिनमयशो रुन्धि विश्वं यशोभिः,
सोदन्वन्मेखलायां परिकलय करं किञ्च विश्वम्भरायाम्॥

अर्थ—निपातगत औचित्यका उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा कवि श्रीचक्र का निम्न पद्य है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसङ्ग—किसी राजा के प्रति उसके हितचिन्तक मित्रों का यह कथन है—यद्यपि महाराज, आप सब कुछ जानते हैं, तथापि हम लोग नीतिपूर्ण बात आप से कह रहे हैं। बन्धु स्वरूप जालन्धरराज के साथ सन्धि करके निश्चिन्त हो प्रतिदिन म्लेच्छों को पराजित कीजिए, अवकीर्ति को दूर कीजिये, सारे संसार को अपने यश से व्याप्त कीजिये तथा सागर तक फैली हुई पृथिवी पर कर वसूल कीजिये (अर्थात् समग्र भू-मण्डल पर अपना शासन स्थापित कीजिये)॥

टीका—निपातानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—देवोजानातीति। कश्चन राजानं प्रति केषाञ्चिद्धितचिन्तकानां वचनमिदम्। यदपि=यद्यपि, देवः=महाराजः, सर्वम्=निखिलम्, जानाति, न किञ्चिदप्युपदेष्टव्यमवशिष्यते, तदपि=तथापि, नीतिनिष्ठम=नीतिपूर्णम्, ब्रूमहे=कथयामो वयमितिशेषः। तदेवकथ्यते—बान्धवेन=बन्धु भूतेन, जालान्तरधरणिभुजा=जालन्धरनाम्ना प्रसिद्धस्यप्रदेशस्याधिपतिना, सार्धम्=साकम्, सन्धाय=मैत्रीं विधाय, म्लेच्छान्=धर्मध्वंसिनो यवनान्, उच्छिन्धि=विनाशय, प्रतिदिनम्=सर्वदा, अयशः=अपकीर्तिम्, भिन्धि=विनाशय, विश्वम्=जगत्, यशोभिः=स्वकीर्तिभिः रुन्धि=पूरय, किञ्च=अपरञ्च, सोदन्वन्मेखलायाम्=ससागरायाम्, विश्वम्भरायाम्=पृथिव्याम्, करम्=राजभागं षष्ठांशम् परिकलय=गृहाण॥

अत्र क्षितिपतिस्तुतिप्रस्तावे "देवो जानाति सर्वं यदपि च तदपि" इति तदुक्तं तत्र पूर्वापरयोरसम्बन्धत्वेन निरर्थक एव निरुपयोगश्चकारः प्रततोत्सवबहुजनभोजनपङ्क्तावपरिज्ञातः स्वयमिव मध्ये समुपविष्टः पश्चादभिव्यक्तः परं लज्जादुर्मना अनौचित्यं प्रतनोति॥ २५॥

अर्थः—इस पद्य में राजा की प्रशंसा के प्रसङ्ग में "देवो जानाति सर्वं यदपि च तदपि" ऐसा जो कहा गया है उसमें पूर्व पद 'यदपि' तथा उत्तर पद 'तदपि' में परस्पर सम्बन्ध न होने के कारण समुच्चय के योग्य तो है ही नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी स्थिति में उन दोनों पदों के बीच में चकार का प्रयोग कैसे सार्थक कहा जा सकता है ? अतः यह चकार उसी प्रकार अनौचित्य को फैलाता है (धारण करता है) जैसे निमन्त्रित जनों की विशाल भोजन पंक्ति में अनिमन्त्रित अपरिचित आकर बैठा हुआ व्यक्ति पहचान लिए जाने पर लज्जा से मलिन मन हो कर केवल अनौचित्य को अभिव्यक्त करता है ॥ २५ ॥

टीका—अत्रेति । अत्र=अस्मिन् पद्ये, क्षितिपतिस्तुतिप्रस्तावे—क्षितिपतिः =पृथिवीपालस्तस्य, स्तुति-प्रस्तावे=प्रशंसा-प्रसङ्गे, "देवो जानाति सव यदपि च तदपि" इति=इत्थम्, यदुक्तम्=यत्, कथितम्, तत्र=तत्कथने, पूर्वापरयोः=यदपि तदपीति पूर्वोत्तरपदयोः, असम्बद्धत्वेन=परस्परं निरपेक्षतया निरर्थकः अतएव निरुपयोगः=उपयोगविरहितः, चकारः=चेतिनिपातः, प्रततोत्सवबहुजनभोजनपंक्तौ—प्रततायाम्=विस्तृतायां बहुजनानां भोजनपंक्तौ=भोजनश्रेण्याम्, अपरिज्ञातः=अपरिचितः, स्वयं मध्ये=जनानामन्तराले, समुपविष्टः=स्थितः, पश्चात्=तदन्तरम्, अभिव्यक्तः=केनचित् प्रकटीकृत, परम्=केवलम्, लज्जादुर्मनाः—लज्जया=व्रीडया दुर्मनाः=खिन्न, इव=यथा, अनौचित्यम्=औचित्याभावम्, प्रतनोति=विस्तारयतीति ॥ २५ ॥

कालौचित्यं दर्शयितुमाह—

कालौचित्येन यात्येव वाक्यमर्थेन चारुताम् ।
जनावर्जनरम्येण वेषेणेव सतां वपुः ॥ २६ ॥

अन्वयः—जनावर्जनरम्येण, वेषेण, सताम्, वपुः, इव, कालौचित्येन, अर्थेन, वाक्यम्, चारुताम्, याति, एव ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—जनावर्जनरम्येण=सभ्यलोगों को आकृष्ट करने के कारण मनोहर, वेषेण=वेष से, सताम्=सज्जनों के, वपुः=शरीर की, इव=तरह, कालौचित्येन=भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् रूप काल के समुचित प्रयोग से युक्त, अर्थेन=अर्थ से, वाक्यम्=काव्य, चारुताम्=मनोहरताको, याति=प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थः–निपातगत औचित्य एवं अनौचित्य की विवेचना के बाद अब क्रम-प्राप्त कालौचित्य पर विचार के लिए कह रहे हैं––कालौचित्येनेति।

सभ्य लोगों को आकृष्ट करने के कारण मनोहर वेष से सज्जनों के शरीर की तरह भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् रूप काल के समुचित प्रयोग से युक्त अर्थ से काव्य मनोहर बनता है (अर्थात् वेष से जैसे सज्जनों का शरीर आकर्षक लगता है, उसी प्रकार समुचित काल के प्रयोग से काव्य सुन्दर बनता है)॥ २८॥

टीका—निपातौचित्यं प्रदर्श्याधुना चतुर्दशतमं कालौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—कालौचित्येनेति। जनावर्जनरम्येण—जनानाम्=लोकानाम् आवर्जनम्=अभिमुखीकरणम्, आकर्षणमित्यर्थः, तेन हेतुना रम्येण=मनोहारिणा, वेषेण=परिधानेन, सताम्, सज्जनानाम् वपुः=शरीरम्, इव=यथा, कालौचित्येन कालस्य=भूतभविष्यदादिसमयस्य औचित्यम्=युक्तता यत्र तेन, अर्थेन=अभिधेयेन, वाक्यम्=काव्यरूपं महावाक्यम्, चारुताम्=भव्यताम्, यात्येव=गच्छत्येव॥ २६॥

कालकृतौचित्ययुक्तेनार्थेन वाक्यं चारुतामेति वेषपरिग्रहेणेव कालयोग्येन सतामवसरज्ञानां वपुः।

अर्थ—समयानुसार परिधान धारण करने के विशेषज्ञ सज्जनों के वेश धारण से जैसे उनका शरीर सुशोभित होता है उसी प्रकार कालकृत औचित्य से युक्त अर्थ के प्रयोग से वाक्य (काव्य) सुशोभित होता है।

टीका—कारिकार्थमेव स्पष्टयति––कालकृतेत्यादिः––अवसरज्ञानाम्=समयज्ञातवताम्, सताम्=सत्पुरुषाणाम्, कालयोग्येन=समयानुरूपेण, वेषपरिग्रहेण=नेपथ्यविधानेन, वपुः=शरीरमिव, कालकृतौचित्ययुक्तेन=भूतभविष्यदादिकालकृतौचित्यसमन्वितेन, अर्थेन=वाक्येन, वाक्यम्=काव्यम्, चारुताम्=मनोहरताम्, एति=गच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

योऽभूद गोपिशिशुः पयोदधिशिरश्चौरः करीषङ्कष–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्तस्यैवाद्य जगत्पते खगपते शौरे मुरारे हरे।
श्रीवत्साङ्क! जडैरिति स्तुतिपदैः कर्णौ नृणां पूरितौ,
हा कालस्य विपर्ययप्रणयिनी पाकक्रियाश्चर्यभूः ॥

अर्थ :—कालकृत औचित्य के प्रदर्शन के लिए कह रहे हैं–जैसे मेरी मुनिमतमीमांसा में निम्नलिखित श्लोक है–

प्रसङ्ग—शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की निन्दा में यह पद्य कहा है—

जो गोपालबालक दूध-घी चुरानेवालों का नेता था जो गोशाला में करसी (गोबर के सूखे टुकड़ों को) साफ किया करता था उसी की आज मूर्ख लोग 'जगत्पते, खगपते, शौरे, मुरारे, हरे तथा श्रीवत्साङ्क' आदि प्रशंसा के वचनों को कहकर स्तुति करते हुए लोगों के कानों को भर रहे हैं। ओह! परिवर्तनप्रिय काल का परिणाम आश्चर्यजनक होता है ॥

टीका—कालकृतौचित्यस्योदाहरणं प्रदर्शयन्नाह–योऽभूदिति। शिशुपालः कृष्णस्य निन्दायां पद्यमिदं प्रयोजयति। यो गोपशिशुः=यो गोपालदारकः, कृष्ण इति यावत्, पयोदधिशिरश्चौरः—पयसाम्=दुग्धानां दध्नाञ्च शिरश्चौरः =चौराग्रगण्यः, तथा करीषङ्कषः—करीषान्=गोमतशुष्ककणान् कषति=क्षालयनीति तादृशः, आसीदिति शेषः, अद्य=सम्प्रति, तस्यैव=तस्य गोपदारकस्यैव, जगत्पते, खगपते, शौरे, मुरारे, हरे तथा श्रीवत्साङ्क,' इत्यादिभिः स्तुतिपदैः= प्रशंसावचनैः, नृणाम्=जनानाम्, कर्णौ=श्रोत्रे, जडैः=मूर्खैः, पूरितौ= भरितौ, हीति खेदे, कालस्य=समयस्य, विपर्ययप्रणयिनी—विपर्ययस्य= परिवर्तनस्य प्रणयिनी=प्रेमवती; पाकक्रिया=परिणमनव्यापारः, आश्चर्यभूः= विस्मयजनकम् ॥

अत्रामर्षविषविषमाविष्कारमुमूर्षुणा शिशुपालेनाभिधीयमाने यत्किल गोपालबालः पयोदधिशिरश्चौरः करीषङ्कषोऽभूत्तस्यैवाद्य जगन्नाथादिभिः स्तुतिपदैर्नृणां कर्णौ पूरितौ हा बत कालस्य विपर्ययकारिणी पाकक्रियाऽऽश्चर्यभूमिरिति वाक्येऽभूदिति भूतकालेनाश्चर्यपरिपोषणरुचिरमारब्धाधिक्षेपलक्षणं वाक्यौचित्यं कृतम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—इस पद्य में क्रोधरूप विषके आविष्कार से मरणासन्न शिशुपाल के द्वारा "जो दूध—दही को चुरानेवाले लोगों का नेता था तथा जो करसी साफ किया करता था, आज उसी की जगन्नाथ आदि पदों से की जारही स्तुतियों से लोगों के कान भर गये हैं, हाय ! परिवर्तन-प्रिय काल का परिणाम आश्चर्यजनक है"—इस वाक्य में "अभूत=था" ऐसा जो भूतकाल का प्रयोग किया गया है उससे, की जारही निन्दा के अनुरूप ही, वाक्यगत औचित्य परिपोष को प्राप्त कर रहा है।

टीका—अत्रामर्षेत्यादि :—अत्र=एतस्मिन् पद्ये, अमर्षः=क्रोध एव विषः=गरलं तस्य विषमः=विचित्रो य अविष्कारः=उत्पादस्तेन मुमूर्षुणा=मर्तुमिच्छुना, मरणासन्नेनेत्यर्थः, शिशुपालेन, अभिधीयमाने=कथ्यमाने, "यत्किल गोपबालः दुग्धदधिचौराग्रगण्यो गोमयादिप्रोञ्छकोऽभूत्तस्यैवाधुना जगन्नाथादिभिः स्तुतिशतैः जनानां श्रोत्रे पूरिते, ही=बत, कालस्य विपरीतक्रियासम्पादनपटोयसी पाकक्रियाऽऽश्चर्यजननीति वाक्ये "अभूत्" इति भूतकालेन=भूतकालिकक्रियापदप्रयोगेणाश्चर्यपरिपोषरुचिरम्=विस्मयपरिपाकमनोहरम्, आरब्धाधिक्षेपलक्षणम्=प्रारब्धनिन्दात्मकम्, वाक्यौचित्यम्, कृतम्=सम्पादितम् ॥

यथा वा मालवकुवलयस्य—

चयुतसुमनसः कुन्दाः पुष्पोद्गमैरलसा द्रुमा,
मनसि च गिरं गृह्णन्तीमे किरन्ति न कोकिलाः।
अथ च सवितुः शीतोल्लासं लुलन्ति मरीचयो
न च जरठतामालम्बन्ते क्लमोदयदायिनीम् ॥

अर्थ :—कालकृत औचित्य के एक दूसरे उदाहरण को दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—अथवा जैसे कवि प्रवर मालवकुवलय का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग—इस श्लोक में शिशिर एवं वसन्त की सन्धि का वर्णन किया गया है।

कुन्द पुष्प-रहित हो गये हैं। (पलास आदि) वृक्ष कुसुम की कलियों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भर गये हैं। ये कोयलें मन में (वस्तुतः कण्ठ में) बोलने के लिए शब्द तो धारण करती हैं किन्तु अभी बोलती नहीं हैं। सूर्य की किरणें शीत को समाप्त कर रही हैं, किन्तु श्रान्त कर देने वाली कठोरता का आलम्बन नहीं कर रही हैं (अभी कष्टदायिनी नहीं बन रही है)॥

टीका—कालौचित्यस्यान्यमुदाहरणमुपस्थापयितुमाह—च्युतसुमनस इति। अत्र शिशिर-वसन्तकालयोः सन्धिर्वर्ण्यते। कुन्दाः=माघ्यकुसुमवृक्षाः, च्युत-सुमनसः—च्युतानि=पतितानि, अपगतानीति यावत्, येषान्ते तादृशाः, भवन्ति, द्रुमाः=पलाशादिवृक्षाः, पुष्पोद्गमैः—पुष्पाणाम्=प्रसूनानाम् उद्गमैः= प्रादुर्भावैः, कुसुमकलिकाभिरित्यर्थः, अलसाः=भारवन्तः सन्ति, इमे=एते, कोकिलाः=पिकाः, गिरम्=कूकशब्दस्च, मनसि=चेतसि, विचार एवेत्यर्थः, वस्तुवस्तु कण्ठे इति यावत्, गृह्णन्ति=स्वीकुर्वन्ति, न किरन्ति=न शब्दायन्ते, न कूजन्तीत्यर्थः। अथ च=तथा, सवितुः=सूर्यस्य, मरीचयः=अंशवः, शीतोल्लासम्—शीतस्य=शैत्यस्य उल्लासम्=प्रसरम्, लुलन्ति=छिन्दन्ति, च= तथा, क्लमोदयदायिनीम्—क्लमस्य=श्रान्तेः उदयः=उत्पत्तिस्तं ददातीति= अर्पयतीतिताद्दशीम्, जठरताम्=काठिन्यम्, न आलम्बन्ते=न स्वीकुर्वन्ति, नाश्रयन्त इत्यर्थः। न च शैत्यं न च घर्मतैक्ष्ण्यमिति भावः॥

अत्र शिशुतरवसन्तकान्तोपवननवरसोल्लाससूच्यमानमनसिजो-त्कण्ठावर्णनायामृतुसन्धिसमुचिताः कुन्दाः कुसुमावसानशून्यतनवः, किंशुकाशोकाः कलिकोद्गमभरालसाः, मनसि कोकिलाः कलकूजिता-न्यनुसन्दधति, रवेर्मरीचयः शीतोल्लासमथ च निवारयन्ति न च सन्तापदायिनीं प्रौढतामालम्बन्ते इत्युक्ते वर्तमानकालपदेष्वेव हृदयसंवादसुन्दरमौचित्यं किमप्यामोदते।

अर्थ :—इस पद्य में सद्यः समागत वसन्त के कारण मनोहर उपवनों के रसोल्लास के द्वारा सूचित की जा रही काम-वासना के वर्णन-सन्दर्भ में ऋतु-सन्धि के अनुरूप—"कुन्द वृक्ष फूलों के झड़ जाने से शून्य हो रहे हैं, पलाश एवं अशोक फूलों के भार से अलस हो रहे हैं, कोकिल अपने मन में ही मनो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर कूजित का सन्धान कर रहे हैं तथा सूर्य की किरणें शीत-वृद्धि को रोक रही हैं तथा अभी अपनी सन्तापदायनी कठोरता का आश्रयण नहीं कर रही हैं। इस कथन में वर्तमान काल के बोधक पदों में ही हृदयावर्जक अनिवर्चनीय औचित्य की सृष्टि हो रही है॥

टीका—अत्र शिशुतरेत्यादि—अत्र=एतस्मिन् पद्ये, शिशुतरेत्यादिः–शिशुतरः=अप्रौढः, नवागत इत्यर्थः, यो वसन्तः=ऋतुराजस्तेन कान्तम्=हृदयावर्जकम् उपवनम्=उद्यानम् तस्य यो नवः=नवीनः रसोल्लासः=रसप्रसरस्तेन सूच्यमाना=अभिव्यज्यमाना या मनसिजस्य=कामस्य उत्कण्ठा=औत्सुक्यम्-तस्याः वर्णनायाम्=कथनक्रियायाम्, ऋतुसन्धिसमुचिताः—ऋतुसन्धेः=शिशिरवसन्तयोरन्तरालस्य समुचिताः=अनुकूलाः, कुन्दाः, कुसुमावसानशून्यतनवः–कुसुमानाम्=पुष्पाणाम् अवसानेन=अपगमनेन शून्याः=रिक्तास्तनवः=शरीराणि येषां तादृशाः, भवन्तीति, किंशुकाशोकाः=पलासवञ्जुलवृक्षाः, कलिकोद्गमभरालसाः—कलिकानाम्=कुड्मलानाम् उद्गमभरेण=उत्पत्तिभारेण अलसाः=आक्रान्ताः सन्ति। कोकिलाः=पिकाः, मनसि=हृदय एव, कलकूजितानि=मधुरध्वनयः, अनुसन्दधति—धारयतीतिभावः। रवेः=सूर्यस्य, मरीचयः=अंशवः शीतोल्लासम्=शीतवृद्धिम्, निवारयन्ति=समापयन्ति, अथच=तथा, सन्तापदायिनीम्=श्रान्तिकरीम्, प्रौढ़ताम्=प्रकृष्टताम्, न आलम्बन्ते=नाश्रयन्ते", इत्युक्ते—इतिकथने, वर्तमानकाल पदेषु=तत्र तत्र प्रयुक्तेषु वर्तमानकालिकक्रियापदेषु एवेति दार्ढ्यं, हृदयसम्बादसुन्दरम्=हार्दिकभावानुकूलम्, किमपि=अपूर्वमित्यर्थः, औचित्यम्, आमोदते=प्रस्फुटति, अभिव्यक्तिमादधातीत्यर्थः॥

यथा च भट्टभल्लटस्य—

मृत्योरास्यमिवाततं धनुरिदं मूर्च्छंद्विषाश्चेषवः,
शिक्षा सा विजितार्जुना प्रतिलयं सर्वाङ्गलग्ना गतिः।
अन्तःक्रौर्यमहो शठस्य मधुनो हा हारि गीतं मुखे,
व्याधस्यास्य यथा भविष्यति तथा मन्ये वनं निर्मृगम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ:—कालौचित्य का तृतीय उदाहरण प्रदर्शित करने के लिए कहा जा रहा है—अथवा जैसा भट्ट मल्लट का निम्न पद्य है—

ओह ! अत्यन्त दुष्ट इस व्याध का मृत्यु के मुख के समान विस्तृत यह धनुष, विषबुझाये हुए तीर, अर्जुन को जीतने वाला आश्चर्यजनक अभ्यास, विनाश का दृश्य पैदा कर देनेवाली अविहत गति, हृदय में क्रूरता तथा मुख में मधु (शहद) को भी मात देने वाला गान---ये सब ऐसे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि शीघ्र ही सारा वन मृगविहीन हो जायगा ।।

टीका—कालौचित्यस्य तृतीयमुदाहरणमुपस्थापयितुमाह—मृत्योरास्यमिति । मृत्योः=कालस्य, यमस्येति यावत्, आस्यम्=मुखमिव, आततम्=आयतम्, इदम्=एतत्, धनुः=चापः, मूर्च्छंद्विषाः—मूर्च्छत्=प्रसरत् विषम्=गरलम् येषु तथा विधाः, इषवः=बाणाः, विजितार्जुना–विजितः=पराजितः अर्जुनः=पृथापुत्रः फाल्गुनः यया सा तादृशी, सा=आश्चर्यंकरीत्यर्थः, शिक्षा=अभ्यासः, लक्ष्यभेदेऽर्जुनमप्यतिशेते इति भावः, प्रतिलयम्=लयं लयं प्रति, प्रतिविनाशमिति यावत् सर्वाङ्गलग्ना—सर्वेषु=निखिलेषु अङ्गेषु=अवयवेषु लग्ना=संसक्ता गतिः=गमनम्, शठस्य=विवेकशून्यस्य, अस्य व्याधस्य=एतस्य लुब्धकस्य, अहो इति खेदाभिव्यञ्जकमव्ययपदम्, अन्तः=चेतसि, हृदय इति यावत्, क्रौर्यम्=क्रूरता, मुखे=आनने, हेति कष्टे, मधुनः=क्षौद्रस्य, हारि=हृदयावर्जकम्, गीतम्=गानम्, तथाऽस्ति यथा, वनम्=काननम्, निर्मृगम्=मृगशून्यम्, भविष्यति=भावि, इति अहं मन्ये=अनुभवामि ।।

अत्र लुब्धकस्य धनुः सायकशिक्षागतिक्रौर्यगीतानि तथा यथा वनं निर्मृगं भविष्यतीति भविष्यत्कालः प्रकृतार्थपरिपोषेण हृदयसंवादौचित्यमादधाति ।

अर्थ :—इस पद्य में "व्याध के धनुष बाण शिक्षा, गति, क्रूरता तथा गान ऐसे हैं जिनसे सारा जगल मृगविहीन हो जायगा" इस कथन में भविष्यत्काल का जो प्रयोग किया गया है उससे प्रकृत अर्थ की पूर्णतः पुष्टि होने से हृदय को आकृष्ट करने वाले औचित्य का आभास झटिति हो जाता है ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अत्र लुब्धकस्येति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, लुब्धकस्य=व्याधस्य धनुःसायकशिक्षागतिक्रौर्यगीतानि=चापबाणाभ्यासक्रूरत्वगानादीनि, तथा सन्ति यथा, वनम्=अरण्यमेव, निर्मृगम्=मृगविहीनम्, भविष्यति इति=इत्यत्र, भविष्यत्कालः=भविष्यत्कालप्रयोगः, प्राकृतार्थपरिपोषेण = प्राकृतस्य=प्रासङ्गिकस्य अर्थस्य=अभिधेयस्य, अभिप्रायस्येति यावत्, परिपोषेण=परिपाकेन, हृदयसंवादौचित्यम् = चेतःसम्मतौचित्यम्, आदधाति=धारयति ॥

न तु यथा वराहमिहिरस्य—

क्षीणश्चन्द्रो विशति तरणेर्मण्डलं मासि मासि
लब्ध्वा काञ्चित्पुनरपि कलां दूरदूरानुवर्ती।
सम्पूर्णश्चेत्कथमपि तदा स्पर्द्धयोदेति भानो-
र्नो दौर्जन्याद्विरमति जडो नापि दैन्याद्व्यरंसीत् ॥

अर्थ :—कालकृत अनौचित्य को प्रदर्शित करने के लिए कहा जा रहा है—न कि जैसा वारहमिहिर का निम्न पद्य है—

कलाओं से विहीन चन्द्रमा प्रतिमास (प्रत्येक अमावस्या को) सूर्य के मण्डल में प्रवेश करता है और वह वहाँ से कुछ कला को प्राप्त कर पुनः क्रमशः दूर होता चला जाता है; यदि वह किसी प्रकार (पूर्णिमा को) पूरा हो भी जाता है तो सूर्य की स्पर्धा में (अर्थात् सूर्य के आमने-सामने) उदित होता है। जड व्यक्ति न तो दुर्जनता का ही परित्याग करता है और न दीनता से ही विरत होता है ॥

टीका—कालकृतमनौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—क्षीणश्चन्द्र इति। क्षीणः=दुर्बलः, कलाविहीन इत्यर्थः, चन्द्रः=शशी, मासि मासि=प्रतिमासम्, अमावास्यायामिति यावत्, तरणेः=सूर्यस्य मण्डलम्=कक्षायाम्, विशति=प्रविशति तत्र काञ्चित्=कियतीम्, कलाम् = लेखाम्, लब्ध्वा=प्राप्य, पुनरपि=भूयोऽपि, दूर-दूरानुवर्ती=क्रमशो दूरवर्ती, भवतीति शेषः। कथमपि=कथञ्चिदपि, भूयसा यत्नेनापि, चेत्=यदि, सम्पूर्णः = समग्रकलास्यात्तदा, भानोः=सूर्यस्य,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पर्धया=अतिक्रमणेच्छया, उदेति=उदयाचलं गच्छति। जडः=अविवेकी, दौर्जन्यात्=दुर्जनभावात्, दुष्टप्रकृतेरित्यर्थः, विरमति=विरतो भवति, नापि =नच, दैन्यात्=याचकभावात्, व्यरंसीत्=विश्रान्तोऽभूत् ॥

अत्र रवेर्मण्डलं क्षीणः शशी प्रतिमासं प्रविशति ततः काञ्चिदाप्यायिकां कलां प्राप्य दूरे दूरे भवति, परिपूर्णश्च तस्यैव स्पर्द्धयाऽभ्युदेति, दौर्जन्यान्न विरमति न च दैन्याद्व्यरंसीदित्येतद् "विरमति व्यरंसीत् इति परस्परासङ्गतं कालपदद्वयं चन्द्रस्य सदृशयोर्दौर्जन्ययोः सर्वकालमभिनिर्वृतयोर्यदुपन्यस्तं तत्र व्यरंसीदिति विरुद्धार्थत्वादनुचितमेव ॥ २६ ॥

अर्थ :—इस पद्य में "क्षीण चन्द्रमा प्रतिमास सौरमण्डल में प्रवेश करता है। वह वहाँ से कुछ तृप्तिकर कलाओं को प्राप्त कर क्रमशः दूर होता जाता है। एक दिन (पूर्णिमा के दिन) कलाओं से परिपूर्ण हो जाने पर वह सूर्य की स्पर्धा में (आमने-सामने) उदित होता है। वह न तो अपनी दुर्जनता से रुकता है और न दीनता से ही।" इस कथन में "विरमति तथा व्यरंसीत्" परस्पर विरुद्ध दो कालों के बोधक दो पदों का प्रयोग किया गया है। ये दोनों पद क्रमशः चन्द्रमा के उन दोनों गुणों (दुर्जनता अथ च दीनता) के लिये प्रयुक्त किये गये हैं जो कि चन्द्रमा के विषय में सर्वदा घटित होते रहते हैं। इस अवस्था में 'विरमति' की भाँति यदि 'व्यरंसीत्' के स्थान में वर्तमान काल की क्रिया का प्रयोग किया गया होता तो उचित होता, ऐसा न करके एक प्रयोग भूतकालिक करके अत्यन्त अनुचित किया गया है ॥ २६ ॥

टीका—अत्रेति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, क्षीणः=कलाभिर्विहीनः, शशी=चन्द्रः, प्रतिमासम्=मासि मासि अमावस्यायाम्, रवेः=सूर्यस्य, मण्डलम्=परिधिम्, प्रविशति, ततः=सूर्यसकाशात्, काञ्चित्=कामपि, आप्यायिकाम्=जीवनदायिनीम्, कलाम्=लेखाम्, प्राप्य=लब्ध्वा, दूरे दूरे भवति=क्रमशो विप्रकृष्टतां भजते। परिपूर्णः=कलाभिर्भरितश्च, तस्यैव=तस्य सूर्यस्यैव,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पर्धया=प्रतिस्पर्धया, अभ्युदेति=उद्गच्छति। दौर्जन्यात्=दुर्जनभावात्, न विरमति=नोपरमते, न च दैन्यात्=कार्पण्यात्, व्यरंसीत्=विरतोऽभूत्। एतत् "विरमति, व्यरंसीत्" इति परस्परासङ्गतम्=अन्योन्यमयुक्तम्, कालपदद्वयम्=वर्तमान-भूतादिकालबोधकपदयुगलम्, यदुपन्यस्तम् = यदुपस्थापितम्, तत्र विरुद्धार्थकत्वात्=विपरीतार्थकत्वात्, व्यरंसीदित्यनुचितमेव=अयुक्तमेव ॥२६॥

देशौचित्यं दर्शयितुमाह—

देशौचित्येन काव्यार्थः ससंवादेन शोभते।
परं परिचयाशंसी व्यवहारः सतामिव ॥ २७ ॥

अन्वयः—ससंवादेन, देशौचित्येन, काव्यार्थः, सज्जनानाम्, परिचयाशंसी, व्यवहारः, इव, परम्, शोभते ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—ससंवादेन=हार्दिक भावना के अनुकूल, हार्दिक भावना से मेल खाने वाले, देशौचित्येन=देशौचित्य से, देशौचित्य के कारण, काव्यार्थः=काव्यार्थ, सज्जनानाम्=सज्जनों के, परिचयाशंसी=परिचय-सूचक, व्यवहारः=व्यवहार की, इव=तरह, परम्=अत्यन्त, शोभते=सुशोभित होता है ॥

अर्थः—चौदहवें कालौचित्य का विवेचन करके अब क्रम प्राप्त पन्द्रहवें देशौचित्य की विवेचना के लिए कहा जा रहा है—देशौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कहा गया है—

हार्दिक भावना के अनुकूल देशौचित्य से काव्यार्थ; सज्जनों के परिचय-सूचक व्यवहार की तरह, अत्यन्त शोभित होता है ॥ २७ ॥

टीका—कालौचित्यानन्तरं सम्प्रति क्रम-प्राप्त पञ्चदशतमं देशौचित्यं विवेचयितुमाह—देशौचित्येनेति। ससंवादेन=हृदयभावानुरूपेण, देशौचित्येन=प्रसङ्गानुरूपस्थानविशेषवर्णनेनेत्यर्थः, काव्यार्थः=कविकृतिवाच्यार्थः, परिचयाशंसी=परिचयसूचकः, सताम्=सज्जनानाम्, व्यवहार इव=आचार इव, परम्=अत्यधिकं यथा स्यात्तथा, शोभते=शोभामधिगच्छति ॥ २७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देशविषयौचित्येन हृदयसंवादिना काव्यार्थः सतां व्यवहार इव परिचयसूचकः शोभते ।

अर्थ :—कारिका के अर्थ को ही स्पष्ट करने के लिए कहा जा रहा है—

हृदय के साथ मेल खाने वाले देश विशेष के औचित्य से काव्यार्थ सज्जनों के पहले के परिचय को सूचित करने वाले व्यवहार के समान सुशोभित होता है ।।

टीका—देशविशेषौचित्येनेति । हृदयसंवादिना=हृदयभावानुरूपेण, देशविशेषौचित्येन–देशविशेषस्य=स्थानविशेषस्य औचित्येन, काव्यार्थः, परिचयसूचकः–परिचयस्य=पूर्वपरिचयस्य सूचकः=निर्देशकः, ख्यापकः, सताम्=सत्पुरुषाणाम्, व्यवहारः=आचरणम्, इव=यथा, शोभते = शोभामधिगच्छतीति ।।

यथा भट्टभवभूतेः—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।।

अर्थ :—देशौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—जैसे भट्टभवभूति का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग—जम्बूक-वध के प्रसङ्ग से जङ्गल में गये हुए रामचन्द्र जी वन की स्थिति तथा उसके काल-क्रम से हुए परिवर्तन के विषय में कह रहे हैं ।

पहले जहाँ नदियों का प्रवाह था, वहाँ अब जल से निकला हुआ तट है, वृक्षों की सघनता तथा विरलता वैपरीत्य को प्राप्त हो गई है । बहुत समय के पश्चात् देखा हुआ यह वन मुझे दूसरा जैसा लग रहा है, (केवल) पर्वतों की (अपरिवर्तित) स्थिति 'यह वही है' इस प्रकार के विचार को दृढ़ कर रही है ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—देशौचित्यमुदाहर्तुमाह—पुरा यत्रेति । पुरा = प्राक्, सीतया महावस्थानकाले इत्यर्थः, यत्र=यस्मिन् स्थाने, सरिताम्=नदीनाम्, स्रोतः= प्रवाहः, आसीदिति शेषः, अधुना = सम्प्रति, तत्र पुलिनम्=जलोत्थितं तटम्। क्षितिरुहाम्=वृक्षाणाम्, घनविरलभावः= निविडत्वं वैरल्यञ्चेत्यर्थः, विपर्यासम् = वैपरीत्यम्, यातः=प्राप्तः, पुरा यत्र वृक्षाः घनाः आसन् तत्राधुना विरलाः, यत्र च पुरा विरलाः तत्राधुना घनाः संजाता इति भावः । बहोः=दीर्घात्, कालात्=समयात्, अनन्तरमिति शेषः, दृष्टम् = अवलोकितमित्यर्थः, इदम्= पुरोवर्ति, वनम्=अरण्यम्, अपरमिव=अन्यमिव, मन्ये । तत् कथं तदेवेदमिति कथ्यते इति जिज्ञासायामाह—शैलानाम्=पर्वतानाम्, निवेशः = अवस्थानम्, पश्यम्=परिदृश्यमानं वनम्, तत्=पूर्वदृष्टम्, इति=एतत्, बुद्धिम्=ज्ञानम्, द्रढयति =दृढीकरोति, समर्थयते इत्यर्थः ॥

अत्र बहुभिर्वर्षैरतिक्रान्तैः शम्बूकवधप्रसङ्गेन दण्डकारण्यं रामः पूर्वपरिचितं पुनः प्रविष्टः समन्तादवलोक्यैवं ब्रूते—"पुरा यत्र नदीनां प्रवाहस्तत्रेदानीं तटम्, वृक्षाणां घनविरलत्वे विपर्ययश्चिराद् दृष्टं वनमिदमपूर्वमिव मन्ये,पर्वतसन्निवेशस्तु तदेवैतदिति बुद्धिं स्थिरीकरोति" इत्युक्ते चिरकालविपर्ययपरिवृत्तसंस्थानकाननवर्णनया हृदयसंवादी देशस्वभावः परमौचित्यमुद्द्योतयति ।

अर्थ :—इस पद्य में बहुत वर्षों के व्यतीत हो जाने पर शम्बूक नामक शूद्र मुनि के वध प्रसङ्ग से पूर्वपरिचित दण्डकारण्य में पुनः प्रविष्ट रामचन्द्र चारों तरफ़ देख कर इस प्रकार कह रहे हैं—"पहले जहाँ नदियों का प्रवाह था वहाँ अब तट है, वृक्षों की सघनता तथा विरलता में भी क्रम बदल गया है, इस प्रकार बहुत दिनों के बाद आज देखा गया यह वन एक दम नया-सा लग रहा है। केवल पर्वतों का अवस्थान ही ऐसी धारणा दृढ़ करता है कि— यह वही वन है।" इस कथन में चिरकाल के विपर्यय के कारण परिवर्तित स्थिति वाले वन के वर्णन से स्थान-विशेष के स्वभाव का अत्यन्त मनोहारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जिससे देशौचित्य का महत्त्व उद्योतित हो उठता है ॥

टीका—अत्रबहुभिरिति । अत्र=अस्मिन् पद्ये, बहुभिः=कतिपयैः, वर्षैः=संवत्सरैः, अतिक्रान्तैः=व्यतीतैः सद्भिः, शम्बूकवधप्रसङ्गेन—शम्बूकस्य=शम्बूकनाम्नो मुनेः वधस्य=प्राणवियोजनस्य प्रसङ्गेन=प्रस्तावेन, पूर्वपरिचितम्=पूर्वदृष्टम्, दण्डकारण्यम्=दण्डकवनम्, पुनः=मुहुः, प्रविष्टः=गतः, रामः=रामचन्द्रः, समन्तात्=चतुर्षु दिक्षु, अवलोक्य=दृष्ट्वा, एवम्=इत्थम्, ब्रूते=कथयति—"पुरा=पूर्वम्, यत्र=यस्मिन् स्थाने, नदीनाम्=सरिताम्, प्रवाहः=पूरः, तत्र=तस्मिन् स्थाने, इदानीम्=सम्प्रति, तटम्=तीरः, वृक्षाणाम्=वीरुधाम्, घनविरलत्वे=घनविरलभावे, विपर्ययः=वैपरीत्यं जातम्, चिरात्=बहोःकालात्, दृष्टम्=अवलोकितम्, इदम्=एतत्, वनम्=अरण्यम्, अपूर्वमिव=अपरमिव, मन्ये=जानामि, तु=किन्तु, पर्वतसन्निवेशः—पर्वतानाम्=अचलानाम् सन्निवेशः=अवस्थानम्, एतत्=पुरो दृश्यमानं वनम्, तदेव=पूर्वपरिचितमेव वनम्, इति=एतादृशीम्, बुद्धिम्=मतिम्, स्थिरीकरोति=द्रढयति ।" इत्युक्ते=इति कथने, चिरकालेत्यादिः—चिरकालस्य=दीर्घसमयस्य विपर्ययेण=विपर्यासेन परिवृत्तम्=परिवर्तितम् संस्थानम्=स्थितिर्यस्यैवंभूतस्य काननस्य=वनस्य वर्णनया=वर्णनेन, हृदयभावानुरूपः, देश-स्वभावः=स्थानविशेषप्रकृतिः, परमौचित्यम्=परमौचित्यभावम्, उद्योतयति=प्रकाशयति ॥

न तु यथा राजशेखरस्य—

कर्णाटीदशनाङ्कितः सितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः,
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः ।
लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः,
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति ॥

अर्थ :—देशानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कहा जा रहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कि जैसा राजशेखर का निम्न पद्य है—जो पहले कर्नाटक देश की सुन्दरियों के दशनक्षतों से चिह्नित हुआ, पुनः महाराष्ट्र की गौरवर्णा ललनाओं के कटाक्षों से आहत किया गया, फिर आन्ध्र प्रदेश की प्रौढाओं के स्तनों के भार से पीडित हुआ, वाद में प्रियतमा की टेढ़ी भ्रुकुटि से भयभीत किया गया, पुनः लाट देश की सुन्दरियों की बाहुलताओं में आवद्ध हुआ तथा मलय देश की स्त्रियों के द्वारा तर्जनी अंगुली से धमकाया गया, वही कवि राजेशखर अब (वृद्धावस्था में तपस्या के लिये) काशी जाने की इच्छा कर रहा है ॥

टीका—देशानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—कर्णाटीदशनाङ्कित इति। कर्णाट्या:=कर्णाटकदेशोद्भवाया: सुन्दर्याः दशनैः=कामक्रीडायां दन्तक्षतैः अङ्कितः=चिह्नितः, सितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः—सिता=गौरवर्णा या महाराष्ट्री=महाराष्ट्रसुन्दरी तस्याः कटाक्षैः=नयनप्रहारैः आहतः=ताडितः, प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः—प्रौढा=परिपूर्णयौवना या आन्ध्री=आन्ध्रदेशनायिका तस्यास्तनैः=पयोधरैः पीडितः=अर्दितः, प्रणयिनीभ्रूभङ्गीवित्रासितः—प्रणयिनी=प्रियतमा तस्याः भ्रूभङ्गेन वक्रभ्रुकुट्या वित्रासितः=भयभीतः कृतः, च=तथा, लाटीबाहुविवेष्टितः—लाट्याः=लाटदेशजातायाः अङ्गनायाः बाहुभ्याम्=भुजाभ्याम् विवेष्टितः=आवद्धः कृतः, मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः—मलयस्त्रिया=मलयप्रदेशजातया सुन्दर्या तर्जन्या=तर्जन्यङ्गुल्या तर्जितः=भर्त्सितः, सोऽयम्=स एवायं जगति विदितः सर्वप्रदेशकृतानन्दश्च, राजशेखर कविः=राजशेखरनाम्ना विदितः कविः, सम्प्रति=प्राप्ते वार्धक्ये इति यावत्, वाराणसीम्=काशीम्, वाञ्छति=गन्तुमिच्छतीति भावः ॥

अत्र कर्णाटमहाराष्ट्रान्ध्रलाटमलयललनासम्भोगसुभगः कालेन गलितरागमोहः सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं गन्तुमिच्छतीत्युक्ते शृङ्गाररसतरङ्गितवराङ्गनाप्रसङ्गेऽनङ्गनिरर्गलदक्षिणापथदेशोद्देश—मध्येप्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासित इति देशोपलक्षणविरहितकेवलप्रणयिनीपदेन देशौचित्यमुपचितमप्यनुचिततां नीतम् ॥ २७ ॥

अर्थ :—इस पद्य में पहले "कर्णाटक आदि देशों की ललनाओं के संयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भाग्यशाली राजशेखर कवि समय—चक्र के प्रभाव से राग-मोह-रहित होकर (वृद्धावस्था के कारण) अब काशी जाने की इच्छा कर रहा है" इस कथन में शृङ्गाररस से सराबोर वराङ्गनाओं के सम्भोग के प्रसङ्ग में उन्मुक्त काम के लिये प्रसिद्ध दक्षिणापथ के देशों की चर्चा के मध्य "प्रणयिनी की वक्र भ्रुकुटि से भयभीत" इस पद में देश विशेष के नाम से रहित केवल "प्रणयिनी" पद पद से वह देशौचित्य अनौचित्य के रूप में बदल गया जो पहले समृद्ध था। अभिप्राय यह है कि उन-उन देशों को स्त्रियों की चर्चा के मध्य आन्ध्र देश की नारी के बाद दक्षिण देशीय नारी की चर्चा आश्वश्यक थी, किन्तु कवि ने वैसा न करके अनौचित्य का ही प्रदर्शन किया है ॥ २७ ॥

टीका—अत्र कर्णाटकेत्यादि । अत्र = एतस्मिन् पद्ये, कर्णाटकादिदेश-ललनारमणसौभाग्यसुन्दरः, कालेन=समयप्रवाहेन, गलितरागमोहः=राग-मोह-विरहितः, राजशेखरकविः, सम्प्रति=अधुना, वाराणसीम्=काशीम्, गन्तु-मिच्छति इति कथने, शृङ्गारेत्यादिः—शृङ्गाररसेन तरङ्गितः=आप्लावितो यो वराङ्गनाप्रसङ्गः=सुन्दरीसहवासस्तस्मिन्, अनङ्गनिरर्गलदक्षिणापथदेशो-द्देशमध्ये=निर्बाधकामक्रीडायां प्रसिद्धस्य दक्षिणापथस्य देशानां नामोल्लेखप्रसङ्गे, 'प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः' इत्यत्र देशनामशून्येन केवलेन प्रणयिनीपदेन, उपचितम्=वृद्धिङ्गतम्, अपि, देशौचित्यम् अनुचितताम्=अनौचित्यम्, नीतम्=प्रापितम् ॥ २७ ॥

कुलौचित्यं दर्शयितुमाह—

कुलोपचितमौचित्यं विशेषोत्कर्षकारणम् ।
काव्यस्य पुरुषस्येव प्रियं प्रायः सचेतसाम् ॥ २८ ॥

अन्वय :—पुरुषस्य, इव, काव्यस्य, विशेषोत्कर्ष-कारणम्, कुलोपचितम्, औचित्यम्, प्रायः, सचेतसाम्, प्रियम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ ;—पुरुषस्य=पुरुषके, इव=अनुरूप, काव्यस्य=काव्य को (भी), विशेषोत्कर्षकारणम्=विशिष्ट उत्कर्ष का जनक, कुलोपचितम्=वंश-परम्परा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से वृद्धिङ्गत, औचित्यम्=औचित्य, प्राय:=प्राय:, अधिकतर, सचेतसाम्=सरस हृदय वाले लोगों को, प्रियम्=प्रिय होता है ॥

अर्थ :—देशौचित्य का प्रदर्शन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त सोलहवें कुलौचित्य का विचार करने के लिये कह रहे हैं—

पुरुष के ही अनुरूप काव्य के भी विशिष्ट उत्कर्ष का जनक, वंश-परम्परा से वृद्धिङ्गत औचित्य सरस हृदय वाले लोगों को प्राय: प्रिय होता है ॥

टीका—देशौचित्यं प्रदर्श्याधुना क्रमागतं षोडशतमं कुलौचित्यं विवेचयितुमाह—कुलोपचितमिति । पुरुषस्येव, काव्यस्य=कविकृतेऽपि, विशेषोत्कर्षकारणम्–विशेषेण य उत्कर्ष:=औन्नत्यं तस्य कारणम्=जनकम् कुलोपचितम्—कुलेन=सद्वंशेन उपचितम्= वृद्धिङ्गतम्, औचित्यम्, सचेतसाम्=सहृदयानाम् प्राय:=बाहुल्येन, प्रियम्=अभीप्सितं भवतीति शेष: । यथावंशपरम्परागतमौचित्यं पुरुषस्य विशेषोत्कर्षकारणं सताञ्च प्रियं भवति तथैव वंशानुगतमौचित्यं काव्यस्याप्युत्कर्षाधायकमिति भाव: ॥ २८ ॥

पुरुषस्येव काव्यस्य कुलोन्नतमौचित्यं सविशेषोत्कर्षजनकं प्रायेण बाहुल्येन सहृदयानामभिमतम् ।

अर्थ :—कारिकागत भाव को ही अभिव्यक्त करने के लिये कहा जा रहा है—

जैसे वंशपरम्परा से चली आती हुई मर्यादा व्यक्ति की उत्कृष्टता का कारण तथा लोकप्रिय होती है, उसी तरह कुल–समृद्ध औचित्य काव्य की उत्कृष्टता का जनक एवं सहृदयों को प्रिय होता है ।

टीका—कारिकार्थमेव विवृणुते–पुरुषस्येवेति । पुरुषस्य=जनस्य, कुलोन्नतम्=वंशसमृद्धम्, औचित्यम्=मर्यादा, यथा विशेषोत्कर्षजनकम्=विशेषोत्कर्षाधायकम्, सहृदयानाम्=सचेतसाम्, अभिमतम्=प्रियम्, भवति, तथैव कुलोत्पन्नमौचित्यं चमत्काराधायकं सज्जनप्रियं प्रशंसितञ्च भवतीति ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा कालिदासस्य—

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ।।

अर्थ :—कुलौचित्य का उदाहरण दिखलाने के कहा जा रहा है—जैसे कालिदास का निम्नलिखित पद्य है—

तदनन्तर विषयों से विरक्त चित्त वाले उस राजा ने राजचिह्न श्वेत छत्र को विधिपूर्वक अपने युवा पुत्र को प्रदान कर स्वयं अपनी राज-महिषी के साथ मुनिजनों से सेवित तपोवन में जाकर निवास किया। क्योंकि इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न राजाओं का यही कुल नियम है ।।

टीका—कुलौचित्यमुदाहर्तुमाह—अथ स इति । अथ=अनन्तरम्, विषय-व्यावृत्तात्मा-विषयेभ्यः=सांसारिकभोगेभ्यो व्यावृत्तः=विगततृष्णः आत्मा=चेतो यस्यतादृशः, सः=स राजा, यथाविधि—विधिमनतिक्रम्य इति यथा-विधि=शास्त्रानुसारम्, नृपतिककुदम्=राजचिह्नम्, सितातपवारणम्=श्वेत-च्छत्रम्, यूने=यौवनसम्पन्नाय, सूनवे=पुत्राय, दत्त्वा=समर्प्य, तया देव्या=राजमहिष्या, सह=साकम्, मुनिवनतरुच्छायाम्—मुनिवनस्य=तपोऽरण्यस्य तरुणाम्=वृक्षाणाम्, छायाम्=अनातपम्, शिश्रिये=सेवितवान्, हि=यतः, गलितवयसाम्—गलितम्=जर्जरम् वयः=अवस्था येषां तादृशानाम्, इक्ष्वाकूणाम्=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां राज्ञाम्, इदम्=एतत्, वृद्धावस्थायां वनगमन मित्यर्थः कुलव्रतम्=वंशनियमः, अस्तीति क्रियाशेषः ।।

अत्र "अथ स राजा वृद्धस्तरुणाय सूनवे राज्यं प्रतिपाद्य तया देव्या सह तपोवनं भेजे, विरक्तचेतसामिक्ष्वाकूणामन्ते हि कुलव्रतमिदमेव" इत्युक्ते भूतवर्तमानभाविनां तद्वंश्यानामौचित्यमुन्मीलितम् ।

अर्थः—इस पद्य में तदनन्तर वह राजा वृद्ध हो जाने पर अपने युवक पुत्र को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्य प्रदान कर उस राज-महिषी के साथ तपोवन चले गये, क्योंकि सांसारिक विषय भोगों से विरक्त चित्त वाले इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का यही कुल-व्रत है। ऐसा कह कर भूत, वर्तमान तथा भावी इक्ष्वाकुओं का औचित्य अत्यन्त स्फुट रूप से प्रतिपादित किया गया है।

टीका—अत्रेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, अथ=अनन्तरम्, स राजा, वृद्धः सन्, तरुणाय सूनवे=पुत्राय, राज्यं प्रतिपाद्य=समर्प्य, तया देव्या सह=राज-महिष्या सह, तपोवनम्=धर्मारण्यम्, भेजे=शिश्रिये, हि=यतः, विरक्तचेतसाम्=सांसारिकभोगविरागसम्पन्नानाम्, इक्ष्वाकूणाम्=इक्ष्वाकुकुलजातानाम्, इदमेव=एतदेव, कुलव्रतम्=वंशनियमः।' इत्युक्ते=इतिकथने, भूतवर्त्तमान-भाविनाम्=विगत-सम्प्रति-भविष्यताम्, तद्वंश्यानाम्=तस्मिन् वंशे जातानाम्, औचित्यम्, उन्मीलितम्=प्रकटीकृतम्॥

न तु यथा यशोवर्मदेवस्य—

उत्पत्तिर्भण्डकुले यदभीष्टं तत्पदं समाक्रान्तम्।
भोगास्तथापि दैवात्सकृदपि भोक्तुं न लभ्यन्ते॥

अर्थ :—कुलानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—न कि जैसा कवि यशोवर्मदेव का निम्न पद्य है—

भांड़-कुल में मेरा जन्म हुआ है। फिर भी मैं जिसे चाहता था उस पद की प्राप्ति मुझे हुई। सारे भोगों की प्राप्ति होने पर भी मैं दैवदुर्विपाक से एक बार भी उनका भोग न कर सका॥

टीका—कुलानौचित्यं प्रदर्शयति—उत्पत्तिरिति। भाण्डकुले=लोके "भांड" इत्याख्ये वंशे मम उत्पत्तिः=जन्म, अभूदिति शेषः। तथापि मम यद-भिष्टम्=यदभीप्सितम्, ततः=तत, पदम्=स्थानम्, समाक्रान्तम्=अधिगतम्, तथापि, दैवात्=दैवदुर्विपाकात, भोगाः=सेवनीयपदार्थाः, सकृदपि=एक-वारमपि, भोक्तुम्=सेवितुम्, न लभ्यन्ते=न प्राप्यन्ते॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र ममोत्पत्तिर्भण्डकुले समीहितपदाक्रमणं च निष्पन्नं तथापि दैवार्पितप्रियावियोगाद्भोगा भोक्तुं न लभ्यन्त इत्यभिहिते स्वसंवेद्यमेव भण्डकुलमन्यत्राप्रसिद्धं स्वयमेव निर्दिश्यमानमुत्कर्षविशेषण-विरहितकेवलपदोपादनेन निरर्थकतया निरौचित्यमेव। इक्ष्वाकुकुलस्य तु निर्विशेषणत्वमुपपद्यत एव, त्रिभुवनप्रसिद्धौचित्यचरित्रत्वात्।।२८।।

अर्थ :—इस पद्य में "मेरी उत्पत्ति भाँड़ कुल में हुई है फिर भी मैंने अपने अभीप्सित पद को प्राप्त किया है किन्तु भाग्य वश प्रिया के वियोग के कारण भोगों को भोगने में समर्थ न हो सका।" इस कथन में जनसाधारण में अप्रसिद्ध जिस भण्डकुल की चर्चा की गई है वह केवल कथन करने वाले नर को ही विदित है, फिर भी उसकी विशिष्टता सिद्ध करने के लिए उसमें कोई विशेषण भी नहीं लगाया गया है, एक मात्र नाम लेकर ही उसका निर्देश कर दिया गया है, जो निरर्थक सा ही है और अनौचित्य को ही प्रदर्शित करता है। यद्यपि पूर्व पद्य में इक्ष्वाकु कुल के लिए भी कोई विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है, तथापि वह वहाँ पूर्णतः उचित है, क्योंकि इक्ष्वाकु कुल का औचित्य पूर्ण चरित्र त्रिभुवन विदित है ही। यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है। अतः यह कुलानौचित्य को ही अभिव्यक्त करता है॥

टीका—अत्र ममेति। अत्रोक्त पद्ये, "मम जन्म भण्डकुलेऽभूत् समीहित-पदप्राप्तिरपि जाता, तथापि भाग्यवैपरीत्येन प्रियावियोगाद् भोगा भोक्तुं न शक्यन्ते" इति कथने भण्डकुलं स्वसंवेद्यमेव=स्वज्ञानविषयीभूतमेव, अन्यत्र=अन्यस्मिन् जनसमूहे, अप्रसिद्धम्=अविदितम्, स्वयमेव=स्वमुखेनैवेत्यर्थः, निर्दिश्यमानम्=अभिधीयमानम्, उत्कर्षविशेषण-विरहितकेवलपदोपादानेन—विशेषणपदं तस्माद्विरहितम्=शून्यं यत्केवलं पदम्=विशेषपदमित्यर्थः तस्य उपादानेन=कथनेन, केवलं तन्नाम्नैव कथनेनेत्यर्थः निरर्थकतया=प्रयोजन-विशेषशून्यतया, निरौचित्यमेव=औचित्यरहितमेव, लोकेऽप्रसिद्धस्य कुलस्य ख्यापनाय विशेषणपदोपादानमुचितमासीत्। किन्तु तद्विनैव स्वमुखेनैव कथनमनौ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्यमेवाविष्करोति न त्वौचित्यमिति । यद्यपि पूर्वस्मिन् पद्येऽपि इक्ष्वाकुकुलस्य वर्णनप्रस्तावे विशेषणपदानुपादानमेव तथापि नास्ति तत्र दोषः । कुतः ? इक्ष्वाकुकुलस्यौचित्यभरितं चरितं तु विश्वविश्रुतमेवातो नास्त्यावश्यकता विशेषपदोपादानस्येतिदिक् ॥ २८ ॥

व्रतौचित्यं दर्शयितुमाह—

काव्यार्थः साधुवादार्हः सद्व्रतौचित्यगौरवात् ।
सन्तोषनिर्भरं भक्त्या करोति जनमानसम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—सद्व्रतौचित्यगौरवात्, साधुवादार्हः, काव्यार्थः जनमानसम्, भक्त्या, सन्तोषनिर्भरम्, करोति ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—सद्व्रतौचित्यगौरवात्=सद्व्रतों के औचित्य के गौरव के कारण, साधुवादार्हः=प्रशंसनीय, काव्यार्थः=काव्यार्थ, जनमानसम्=जनमानस को, भक्त्या=अपने सौन्दर्य विशेष से, सन्तोषनिर्भरम्=सन्तोष से आप्लावित, पूर्ण सन्तुष्ट, भलि-भाँति सन्तुष्ट, करोति=करता है ॥ २९ ॥

अर्थः—कुलौचित्य का उदाहरण-प्रत्युदाहरण देने के अनन्तर अब अवसर प्राप्त सत्रहवें व्रतौचित्य का विस्तार किया जा रहा है—

सद्व्रतों के औचित्य के गौरव के कारण प्रशंसनीय काव्यार्थ अपने सौंदर्य-विशेष से जन-मानस को पूर्ण सन्तुष्ट करता है ॥ २९ ॥

टीका—कुलौचित्यं-प्रदर्श्याधुना सप्तदशतमं व्रतौचित्यं विवेचयितुमाह—काव्यार्थ इति । सद्व्रतौचित्यगौरवात्—सद्व्रतौचित्यस्य=सन्नियमौचित्यस्य गौरवात्=महिम्नः, साधुवादार्हः=प्रशंसार्हः, काव्यार्थः, जनमानसम्=सहृदयचतः, भक्त्या=सौन्दर्यविशेषेण, सन्तोषनिर्भरम्—सन्तोषेण=सन्तुष्ट्या निर्भरम्=परिपूर्णम्, करोति=विदधाति ॥ २९ ॥

काव्यार्थः समुचितव्रतगौरवात्साधुवादयोग्यः सन्तोषपूर्णं जनमनः करोति । भक्तिर्विच्छित्तिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ:—स्पृहणीय व्रतों की गरिमा के कारण प्रशंसार्ह काव्यार्थ सहृदयों के मानस को सन्तुष्ट करता है। भक्ति कहते हैं सौन्दर्य विशेष को।

टीका—कारिकागतमेवार्थं स्फोटयति-काव्यार्थ इति। समुचितनियमगरिम्णः सहृदयप्रशंसाभाजनं काव्यार्थः, जनमनः—जनानाम् = सहृदयानाम् = मनः = चेतः, सन्तोषपूर्णम् = सन्तुष्टम्, करोति = विदधाति। भक्तिः = विच्छित्तिः सौन्दर्यविशेष इति भावः ॥

यथा मम मुक्तावलीकाव्ये—

अत्र वल्कलजुषः पलाशिनः पुष्परेणुभरभस्मभूषिताः।
लोलभृङ्गवलयाक्षमालिकास्तापसा इव विभान्ति पादपाः ॥

अर्थ:—व्रतौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—जैसे मेरे मुक्तावली-काव्य में निम्न पद्य है—

इस जङ्गल में वल्कल युक्त, सघन पत्रावली से सनाथ, पुष्पों के पराग-धूलिरूपी भस्म से भूषित, चञ्चल भ्रमरावली रूप रुद्राक्ष-मालाधारी वृक्ष उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे वल्कल वस्त्रधारी, पलाशदण्ड लिए हुए भस्म लपेटे, रुद्राक्ष मालाधारी तपस्वी हों ॥

विशेष :—इस श्लोक में 'पलाशिनः' का अर्थ, पलम् = मांसम् अश्नन्ति = भक्षयन्ति इति पलाशिनः = मांसभोजिनः—यह अर्थ भी निकलता है। अतः यह यह व्रतौचित्य का सुन्दर उदाहरण नहीं कहा जा सकता।

टीका-व्रतौचित्यमेवोदाहर्तुमाह—अत्र वल्कलयुष इति। अत्र = एतस्मिन् वने, वल्कलजुषः = वल्कलवन्त अपरत्र वल्कलवसनधारिणः, पलाशिनः = पत्रावलीसम्पन्नाः, अपरत्र पलाशदण्डधारिणः, अत्रेदमवधेयम्—पलम् = मांसम् अश्नन्ति = भक्षयन्ति इति पलाशिनो मांसभक्षकाः इत्यत्यर्थो ध्वन्यतेऽत्रातो व्रतौचित्यस्योदाहरणे श्लोकोऽयं चिन्त्य एवेति सुधियो विभावयन्त्विति। पुष्परेणुभरभस्मभूषिताः—पुष्पाणाम् = प्रसूनानाम् रेणूनाम् = परागाणाम् भरः = भारः एव भस्म = भसितम् तेन भूषिताः रूषिताः, अन्यत्र पुष्परेणुभर इव भस्मना भूषिताम्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोलभृङ्गवलयाक्षमालिकाः—लोलानाम् = चपलानाम् भृङ्गाणाम् = भ्रमराणाम् वलयम् = समूह एव अक्षमालिका = जपमाला येषां तादृशाः, अपरत्र लोलभङ्ग-वलयमिव अक्षमालिका = रूद्राक्षमाला येषां तादृशाः, पादपाः = वृक्षाः, तापसाः = तपस्विनः, इव = यथा, विभान्ति = शोभन्ते ॥

अत्र तपोधनोचितव्रतव्यञ्जकवल्कलभस्माक्षसूत्रप्रणयिपादपवर्ण-नायामचेतनामपि शमसमयविमलचित्तवृत्तिरौचित्यमुपजनयति ।

अर्थः—इस पद्य में तपस्वियों के अनुरूप व्रत के अभिव्यञ्जक वल्कल, भस्म, जपमाला से युक्त वृक्षों के वर्णन के द्वारा अचेतनों की भी सत्त्वगुण के अनुरूप निर्मल चित्तवृत्ति का जो सङ्केत किया गया है, उससे व्रतौचित्य का समुचित आभास मिलता है ।

टीका—अत्रेति । अत्र = अस्मिन् पद्ये, तपोधनानाम् = तपस्विनाम् उचितम् = योग्यं यद्व्रतम् = नियमः तस्य व्यञ्जकानि = सूचकानि यानि वल्कलभस्माक्ष-सूत्राणि तेषां प्रणयिनः = धारकाः ये पादपाः = वृक्षास्तेषां वर्णनायाम् = कथने, अचेतनानामपि = स्थावराणामपि, तरूणामपीत्यर्थः, शमस्य = सत्त्वगुणपरिणा-मस्य, शान्तेरित्यर्थः, समया = अनुरूपा या विमला = निर्मला चित्तवृत्तिः = अन्तःकरणम्, औचित्यम् = औचित्यभावम् उपजनयति = उत्पादयति ॥

न तु यथा दीपकस्य—

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीकपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमोपकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो-
मानी प्राणी सनाथो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥

अर्थ :—व्रतानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कहा जा रहा है—न कि जैसा कि कवि दीपक का यह पद्य है—

भूख से पीडित होकर किसी पवित्र ग्राम में अथवा घोर जंगल में श्वेत वस्त्र से आच्छादित भिक्षा-पात्र को लेकर पेटरूपी कन्दरा को भरने के लिए धार्मिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तःकरण वाले ब्राह्मणों के द्वारा हवन की गई अग्नियों के धूम से धूमिल समीप प्रान्त वाले द्वार-द्वार पर याचना करने वाला स्वाभिमानी प्राणी श्रेष्ठ है, परन्तु अपने सगोत्री जनों से ही माँग-माँग कर सन्तुष्ट (सनाथ) होने वाला दीन व्यक्ति कथमपि श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता ॥

टीका—व्रतानौचित्यमुदाहर्तुमाह—पुण्ये ग्राम इति । पुण्ये=पवित्रे, ग्रामे, वा=अथवा, महति=विशाले, वने=कानने, सितपटच्छन्नपालीकपालीम्—सितेन=धवलेन, पटेन=वस्त्रेण, छन्ना=आच्छादिता पाली=प्रान्तभागो यस्याः सा तादृशीं कपालीम्=भिक्षापात्रम्, आदाय=गृहीत्वा. क्षुधार्तः=बुभुक्षापीडितः, उदरदरीपूरणाय–उदरमेव दरी=कन्दरा तस्याः पूरणाय=भरणाय, न्यायगर्भद्विजहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम्–न्यायगर्भैः=धर्मपूरितान्तःकरणैः द्विजैः=ब्राह्मणैर्हुतः=तर्पितो यो हुतभुक्=वह्निः तस्य धूमेन धूम्रम्=धूमवर्णीकृतम् उपकण्ठम्=प्रान्तभागो यस्यैवंभूतम्, द्वारं द्वारम्=प्रतिद्वारम्, प्रवृत्तः=याचनाय विचरणशीलः, मानी स्वाभिमानी, प्राणी=मनुष्यः, वरम्=श्रेष्ठः अनुदिनम्=प्रतिदिनम्, तुल्यकुल्येषु=समानकुलोत्पन्नेषु; सनाथः=अधिगतभिक्षः, दीनः=आर्तजनः, पुनर्नवरमिति योजना ॥

अत्र वैराग्यनिरर्गलवर्णनायां भिक्षाकपलीमादाय क्षुत्क्षामः कुक्षिपूरणाय प्रवृत्तो मानी वरं द्वारं द्वारं यष्टिनिविष्टपाणिः परिभ्रान्तो न पुनरनिशं तुल्यकुल्येषु दीन इत्युक्ते सहजप्रशमविमलमानसविश्रान्तिसन्तोषमुत्सृज्य तुल्यकुल्यद्वेषविजिगीषापरमेव वाक्यं भृशमनौचित्यमुद्भावयति । वरमेतत्तीव्रव्रतकष्टं न तु स्वजनदैन्ययाचनमिति संसारग्रन्थिबन्धाभिमानोपन्यासः ॥ २९ ॥

अर्थ :—यहाँ वैराग्य के उचित मर्यादा से विहीन वर्णन के प्रसङ्ग में "भिक्षापात्र को लेकर भूख से पीडित, अतः पेटपूर्ति के लिए संलग्न छड़ी के सहारे दरवाजे-दरवाजे घूमता हुआ स्वाभिमानी श्रेष्ठ है, किन्तु स्वजनों के बीच दिन-रात दीन बनना अच्छा नहीं ।" इस कथन में स्वभाविक शान्ति से निर्मल मानस के एक मात्र विश्रान्ति-जनक सन्तोष का त्याग कर स्वजन विषयक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वेषवश उन्हें जीतने की इच्छा से ही उक्त वाक्य कहा गया है, जो अत्यन्त अनौचित्य की ही उद्भावना करता है ।। "यह तीव्र कष्ट सह लेना ठीक नहीं है"–इस भावना में सांसारिक बन्धन में डालने वाले अभिमान का ही उपन्यास हुआ है, जो एक वैरागी के लिए उचित नहीं है ।। २९ ।।

टीका—अत्रवैराग्येति । अत्र=उक्ते पद्ये, वैराग्यनिरर्गलवर्णनायाम्–वैराग्यस्य=विरक्तेर्या निरर्गला=स्वच्छन्दा वर्णना तस्याम्, मर्यादाविहीन वर्णनायामित्यर्थः, "भिक्षाभाण्डमादाय क्षुत्क्षामोऽत उदरम्भरणाय याचने प्रवृत्तः स्वात्माभिमानी यष्टिसहायः सन् प्रतिद्वारं पर्यटितो वरम्, न पुनः प्रतिदिनं स्वसमानकुलोद्भूतजनेषु दीनः," इति कथने सहजप्रशमविमलमानसविश्रान्ति-सन्तोषम्=स्वभाविकशान्तिनिर्मलचेतोविश्रान्तिजनकसन्तोषम्, उत्सृज्य=त्यक्त्वा, तुल्यकुल्य-द्वेषविजिगीषापरम्=स्वकुलोत्पन्नजनोत्कर्षासहिष्णुतया तद्विजयेच्छाप्रतिपादकमेव, वाक्यं भृशम्=अत्यन्तम्, अनौचित्यम्=औचित्याभावम्, उद्भावयति=प्रकाशयति । एतत्=अनुभूयमानमिदम्, तीव्रम्=सोढुं दुःसहं व्रतकष्टम्=नियमदुःखम्, वरम्=श्रेष्ठम्, न स्वजनेषु दैन्यपूर्वकं याचनमिति, इति यत् प्रतिपादितं तत्, संसारबन्धनकारणमभिमानमेतोपन्यस्तमिति ।। २९ ।।

तत्त्वौचित्यं दर्शयितुमाह—

काव्यं हृदयसंवादि सत्यप्रत्ययनिश्चयात् ।
तत्त्वोचिताभिधानेन यात्युपादेयतां कवेः ।। ३० ।।

अन्वयः–तत्त्वोचिताभिधानेन, कवेः, काव्यम्, सत्यप्रत्ययनिश्चयात्, हृदयसंवादि, उपादेयताम् याति ।। ३० ।।

शब्दार्थः–तत्त्वोचिताभिधानेन=वस्तु के यथार्थ वर्णन से, कवेः=कवि का, काव्यम्=काव्य, सत्यप्रत्ययनिश्चयात्=सत्य-ज्ञान के निर्णय से, हृदयसंवादि=हृदय-सम्मत, उपादेयताम्=उपादेयता को, याति=प्राप्त होता है ।। ३० ।।

व्रतौचित्य का प्रदर्शन करके सम्प्रति अठारहवें तत्त्वौचित्यका विवेचन करने के अभिप्राय कह रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—वस्तु के यथार्थ वर्णन से कवि का काव्य सत्य-ज्ञान के निर्णय से हृदय-सम्मत उपादेयता को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

टीका—व्रतौचित्यं प्रदर्श्याधुना क्रमप्राप्तमष्टादशतमं तत्त्वौचित्यं दर्शयितुमाह—काव्यमिति। तत्त्वोचिताभिधानेन—तत्त्वस्य=वस्तुतत्त्वस्य उचितम्=यदभिधानम्=कथनं तेन, कवेः=रचनाकर्तुः, काव्यम्=कृतिः, सत्यप्रत्ययनिश्चयात्=अस्मात् काव्यात् सत्यस्य प्रतीतिर्भवतीत्याकारकविश्वासोपगमात्, हृदयसंवादि=हृदयसम्मतम्, उपादेयताम्=ग्राह्यताम्, याति=गच्छति ॥३०॥

तत्त्वोचिताख्यानेन कवेः सूक्तं सत्यप्रत्ययस्थैर्यात्संवादि गृह्यतां याति।

कारिका के ही अर्थ का व्याख्यान कह रहे हैं—

वस्तु-तत्त्व के यथार्थ वर्णन से कवि की सूक्ति सत्य ज्ञान की स्थिरता से हृदय-सम्मत होकर ग्राह्य बन जाती है ॥

कारिकागतमेवार्थं विवृणुते—तत्त्वेत्यादि। तत्त्वोचिताख्यानेन = वस्तुतत्त्वानुगतवर्णनेन, कवेः सूक्तम्=काव्यम्, सत्यप्रत्ययस्थैर्यात्=यथार्थप्रतीतिस्थिरत्वात्, संवादि = हृदयसम्मतं भवत्, गृह्यतां याति = उपादेयतां व्रजति ॥

यथा मम बौद्धावदानलतिकायाम्—

दिवि भुवि फणिलोके शैशवे यौवने वा
जरसि निधनकाले गर्भशय्याश्रये वा।
सहगमनसहिष्णोः सर्वथा देहभाजां
नहि भवति विनाशः कर्मणः प्राक्तनस्य ॥

अर्थ :—तत्त्वौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रह रहे हैं—जैसे मेरी बौद्धावदानलतिका का निम्न श्लोक है—

प्राणी स्वर्ग में रहे, भूतल पर रहे अथवा पाताल लोक में रहे, गर्भ में हो, बच्चा हो, युवा हो, बूढ़ा हो अथवा मरणासन्न ही क्यों न हो, किन्तु प्रत्येक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवस्था में साथ जाने की क्षमता रखने वाले पूर्वजन्म में किये गये उसके कर्म का विनाश नहीं होता है ॥

टीका—तत्त्वौचित्यमुदाहर्तुमाह—दिवि भुवेति । दिवि=स्वर्गे, भुवि=भूतले, फणिलोके=पाताले, शैशवे=बाल्ये, वा=अथवा, यौवने युवावस्थायाम्, जरसि=वृद्धावस्थायाम्, निधनकाले=मृत्युसमये, वा=अथवा, गर्भशय्याश्रये=मातुरुदराश्रये, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, सहगमनसहिष्णोः—सह=साकम् गमने सहिष्णुः=क्षमस्तस्य, देहभाजाम्=प्राणिनाम्, प्राक्तनस्य=पूर्वजन्मनिकृतस्य, कर्मणः=कृत्यस्य, विनाशः=समाप्तिः, नहि=नैव, भवति=जायते ॥

अत्र प्राक्तनस्य कर्मणस्त्रैलोक्ये शैशवयौवनवृद्धत्वावस्थासु देहिनां सहगमने समर्थत्वान्न विनाशोऽस्तीत्युक्ते निःसंशयसकलजनहृदयसंवादितत्त्वाख्यानमौचित्यं ख्यापयति ।

अर्थः—इस श्लोक में "त्रिलोकी में तथा शैशव आदि सभी अवस्थाओं में प्राणियों के साथ जाने में समर्थ पूर्वजन्मकृत कर्म का विनाश नहीं होता है" इस कथन में निश्चित रूप से सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय से अनुमोदित जिस वस्तुतत्त्व (यथार्थता) का उल्लेख हुआ है वह औचित्य को प्रकाशित करता है ।

टीका—अत्रेति । अत्र=उक्ते पद्ये, प्राक्तनस्य=पूर्वोपार्जितस्य, कर्मणः, त्रैलोक्ये=त्रिलोक्याम्, शैशव-यौवनवृद्धत्वावस्थासु=बाल्य-तारुण्य-जरावस्थासु, देहिनाम्=प्राणिनाम्, सहगमने=साकं गमने, समर्थत्वात्=क्षमत्वात्, न विनाशः=न क्षयः, अस्ति=भवतीत्युक्ते=कथने, निःसंशयेत्यादि—निःसंशयम्=असंशयम् सकलानाम्=सम्पूर्णानाम् जनानाम्=लोकानाम् हृदयसंवादि=मनोऽनुकूलं यत्तत्त्वं तस्य आख्यातम्=कथनम् यस्मिन् तत् तादृशम् औचित्यम्=उचितभावम्, ख्यापयति=प्रकाशयति ॥

न तु यथा माघस्य—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते न पीयते काव्यरसः पिपासितैः ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थः—तत्त्वानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कहा जा रहा है—न कि माघ का जैसा निम्न पद्य है—

भूखे व्यक्ति व्याकरण खाकर अपनी भूख शान्त नहीं करते हैं और न तो प्यासे व्यक्ति काव्य-रस से ही अपनी प्यास बुझाते हैं। किसी ने विद्याध्ययनमात्र से अपने कुल का उद्धार भी नहीं किया है। कलाएँ निष्फल हैं, अतः धन कमाने की ही चिन्ता करो ॥

टीका—बुभुक्षितैरिति। बुभुक्षितैः=बुभुक्षापीडितैर्जनैः, व्याकरणम्=पाणिनीयादिशब्दशास्त्रम्, न भुज्यते=न खाद्यते। व्याकरणाध्ययनेन बुभुक्षाशान्तिर्न भवतीति यावत्। एवमेव पिपासितैः=तृषार्तैः, काव्यरसः=काव्यस्य शृङ्गारादिरसः, पीयते=आचम्यते। विद्यया=विद्याध्ययनेन, केनचिद्विदुषा, कुलम्=वंशः, न उद्धृतम्=उत्थापितम् केवलेन विद्याध्ययनेन केनापि स्वकुलोद्धारो न कृत इति भावः। इत्थमेव, कलाः=सकला विद्याः, निष्फलाः=निष्प्रयोजनाः, अतो हिरण्यम्=सुवर्णम्, धनमिति यावत्, अर्जय=उपार्जय। बुभुक्षादिशामकं धनमेव सर्वार्थसाधकं न विद्यादिका इत्यभिप्रायः ॥

अत्रायथार्थार्थार्थितापरत्वेन धनमेवार्जय, क्षुधितैर्व्याकरणं न भुज्यते, न च काव्यरसः पिपासितैः पीयते, न च विद्यया कुलं केनचिदुद्धृतमित्युक्ते सर्वमेतद्दारिद्र्यदैन्यविद्रुतधैर्यकातरतया तत्त्वविरहितं विपरीतमुपन्यस्तमनौचित्यसंयुक्तमेव। विद्यानामेव सर्वसम्पत्प्रसविनीनां कुलोद्धारक्षमत्वं नान्यस्य ॥ ३० ॥

अर्थः—इस पद्य में "अनुचित धनलोलुपता के कारण धन का ही उपार्जन करो, क्योंकि भूखे व्यक्ति व्याकरण नहीं खाते हैं तथा न तो प्यासे लोग काव्य-रस ही पीते हैं और न तो किसी ने विद्या से ही अपने कुल का उद्धार किया है।" इस कथन में दरिद्रता एवं दीनता के कारण अधैर्य से होने वाली कातरतावश यह सब तत्त्वविपरीत बात कही गई है। अतः पूर्णतः अनौचित्यपूर्ण है। वस्तुतः सम्पूर्ण सम्पत्तियों को उत्पन्न करने वाली विद्याओं में ही कुल के उद्धार करने की शक्ति है अन्य किसी में नहीं ॥ ३० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका- अत्रेत्यादि--अत्र=एतस्मिन् माघविरचिते पद्ये, अयथार्थार्थिता परत्वेन-अयथार्थः=अनुचितोयोऽर्थः=धनम् तस्य अर्थिता=याचकता, लोलुपतेति यावत्, तस्याः परत्वेन=परवशतया, धनमेवार्जयं=सम्पत्तिमेवोपार्जय, क्षुधाग्रस्तैर्व्याकरणं न खाद्यते, एवमेव तृषार्तैः काव्यरसोऽपि न पीयते, विद्ययापि केनचिज्जनेन स्वकुलमपि न प्रकाशितम्" इत्युक्ते=इति कथने, दारिद्र्यदैन्यविद्रुतकातरतया--दारिद्र्यदैन्याभ्यां विद्रुतम्=अवलोपितं यद्धैर्यं तेन कातरतया =अधीरतया, सर्वमेतत् तत्त्वविरहितम्=याथार्थ्यरहितम्, उपन्यस्तम्=उपस्थापितम्, अनौचित्यसंयुक्तमेव=अनौचित्यसंवलितमेव। वस्तुतस्तु सर्वसम्पत्प्रसविनीनाम्=सकलविभूतिजननीनाम्, विद्यानामेव, कुलोद्धारक्षमत्वम्=वंशोद्धारयोग्यता, नान्यस्य=न तु धनादीनामिति भावः॥ ३०॥

सत्त्वौचित्यं दर्शयितुमाह—

चमत्कारं करोत्येव वचः सत्त्वोचितं कवेः।
विचाररुचिरोदारचरितं सुमतेरिव॥ ३१॥

अन्वयः--सत्त्वोचितम्, कवेः, वचः, सुमतेः, विचार-रुचिरोदारचरितम्, इव, चमत्कारम्, करोति, एव॥ ३१॥

शब्दार्थः- सत्त्वोचितम्=अन्तर्बल के अनुरूप, मानसिक बल के अनुरूप, कवेः=कवि का, वचः=वचन, सुमतेः=सुधीजन के, विचाररुचिरोदारचरितम् =विचार करने पर रुचिर प्रतीत होने वाले उदात्त चरित की, इव=तरह, चमत्कारम्=चमत्कार, करोति=करता है॥ ३१॥

अर्थः--तत्त्वौचित्य का प्रदर्शन करने के अनन्तर अब क्रमप्राप्त उन्नीसवें सत्त्वौचित्य की विवेचना कर रहे हैं—

अन्तर्बल के अनुरूप कवि का वचन (काव्य), विचार करने पर रुचिर प्रतीत होने वाले सुधीजन के उदात्त चरित की तरह, चमत्कार करता है॥३१॥

टीका--तत्त्वौचित्यप्रतिपादनानन्तरमधुना क्रमागतमेकोनविंशतितमं सत्त्वौचित्यं विवेचयितुमाह--चमत्कारमिति। सत्त्वोचितम्--सत्त्वस्य=अन्त-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलस्य उचितम्=योग्यम्, कवेः=कवयितुः, वचः=वचनम् काव्यमित्यर्थः, सुमतेः = सुधीजनस्य, विचाररुचिरोदारचरितम्—विचारे = विवेके कृते रुचिरम् = मनोहरम् उदारम्=उदात्तं यच्चरितम्=आचरणम्, तदिव, चमत्कारम्=चमत्कृतिम्, करोति=विदधाति ॥

सत्त्वोचितं कवेर्वचश्चमत्कारं करोति, सुमतेरिव विचार्यमाणं रुचिरमुदारचरितम् ।

कारिका की ही व्याख्या करते हुए कह रहे हैं—

विचार करने पर रुचिर प्रतीत होने वाले सुधी व्यक्ति के उदात्त चरित की तरह सत्त्व के अनुरूप वर्णन करने वाला कवि का वचन चमत्कार उत्पन्न करता है।

कारिकार्थमेव विस्फोरयति—सत्त्वोचितमिति । सत्त्वोचितम्—सत्त्वम्= अन्तर्बलम् तदुचितम्=तद्योग्यम्, कवेर्वचः=काव्यम्, चमत्कारं करोति= जनयति । विचार्यमाणे=विचारे कृते, रुचिरम्=मनोहारि, सुमतेः=सुधियः, उदारचरितम्=उदात्तं चरित्रमिव ॥

यथा मम चित्रभारते नाटके

> **नदीवृन्दोद्दामप्रसरसलिलापूरिततनुः,**
> **स्फुरत्स्फीतज्वालानिविडवडवाग्निक्षतजलः ।**
> **न दर्पं नो दैन्यं स्पृशति बहुसत्त्वः पतिरपा-**
> **मवस्थानां भेदाद्भवति विकृतिर्नैव महताम् ॥**

अर्थ :—सत्त्वौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कहा जा रहा है = जैसा कि मेरे चित्रभारत नाटक का निम्न पद्य है—

सागर नदियों के उद्दाम जल-प्रवाह के द्वारा परिपूर्ण होने पर न गर्वीला बनता है और न बडवानल की भीषण ज्वाला से शोषित होने पर दीनता ही प्रकट करता है। महान् लोगों में सुख अथवा दुःख की अवस्थाओं के भेद से स्वभाव परिवर्तन नहीं देखा जाता (अर्थात् उनके विषय में गोस्वामी तुलसीदास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की निम्न चौपाई सत्य प्रतीत होती है—"सुखहरषहिं नहिं दुःख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं ॥)

टीका—सत्त्वौचित्यमुदाहर्तुमाह—नदीवृन्देत्यादिः। बहुसत्त्वः=बहु=दृढम् सत्त्वम्=आन्तरिकं बलं यस्यासौ, अपाम्=जलानाम्, पतिः=स्वामी, समुद्र इत्यर्थः, नदीवृन्देत्यादिः-नदीनाम्=सरिताम् वृन्दम्=समूहस्तस्योद्दामम्=निरर्गलं, निर्मर्यादमित्यर्थः, प्रसरत्=व्याप्नुवन् यत् सलिलम्=जलम् तेन पूरिता=भरिता तनुः=शरीरम् यस्य तादृशः, स्फुरदित्यादिः-स्फुरन्त्यः=प्रकाशमानाः स्फीताः=प्रवृद्धाः याः ज्वालाः=अग्निशिखास्ताभिर्निविडो जटिलः यो वडवाग्निः तेन क्षतम्=शोषितं तत् जलम्=सलिलम् यस्य तादृशः, न दर्पम्=प्रवृद्धौ नाभिमानम्, तथा वडवापरितापे न दैन्यम्=न च दीनताम्, स्पृशति=धारयति। कुतः? समाधत्ते—अवस्थानाम्=सुखदुःखादिदशानाम्, भेदात्=विपर्ययात्, विकृतिः=विकारः, नैव भवति=नैव जायते। सन्तो महान्तश्च सर्वास्ववस्थास्वेकरूपतामेवावलम्बन्त इति भावः।

अत्र पयोधिव्यपदेशेन युधिष्ठिरस्य सत्त्वोत्कर्षेऽभिधीयमाने सरित्पूरप्रवर्धिततनुर्वडवाग्निनिष्पीतश्च नोत्सेकं न सङ्कोचमब्धिर्विपुलसत्त्वः स्पृशति, न ह्यवस्थानां भेदान्महाशयानां विकारो भवतीत्युक्ते गम्भीरधीरा सत्त्ववृत्तिरौचित्यमातनोति।

अर्थः—इस श्लोक में समुद्र के बहाने महाराज युधिष्ठिर के सत्त्वोत्कर्ष के वर्णन के प्रसङ्ग में "महान् सत्त्वशाली समुद्र नदियों के प्रवाह से परिपूर्ण होने पर अथवा वडवाग्नि के द्वारा शोषित किये जाने पर न तो उमड़ता ही है और न क्षीण ही होता है, महान् लोगों में अवस्थाओं के परिवर्तन से कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है।" इस कथन में गम्भीर एवं धैर्यशाली सत्त्ववृत्ति अपूर्व औचित्य को प्रकाशित कर रही है।

टीका—अत्र पयोधिव्यपदेशेनेति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, पयोधिव्यपदेशेन=सागरव्याजेन, युधिष्ठिरस्य=धर्मराजस्य, सत्त्वोत्कर्षे=सत्त्वोन्नतौ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिधीयमाने=कथ्यमाने, विपुलसत्त्वः–विपुलम्=महत् सत्त्वम्=गाम्भीर्यम् अन्तर्बलं वा यस्य तादृशः, अब्धिः=सागरः, सरित्पूरप्रवर्धिततनुः—सरितां पूरेण=प्रवाहेण प्रवर्धिता=वृद्धिङ्गता तनुः=शरीरं यस्य तादृशः, तथा वडवाग्निनिपीतः—वडवाग्निना निपीतः=आचान्तः सन् न च उत्सेकम्=मर्यादोल्लङ्घनम्, न च सङ्कोचम्=दीनताञ्च, स्पृशति=भजते। यतो हि अवस्थानां भेदान्महाशयानाम्=महताम्, विकारः=विकृतिर्न भवति=न जायते, इत्युक्ते=इति कथने, गम्भीरा धीरा=अविगाह्या च सत्त्ववृत्तिः=आन्तरिकं बलम्, औचित्यम्, आतनोति=विस्तारयति॥

न तु यथा भट्टेन्दुराजस्य—

आश्चर्यं वडवानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि-
र्यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य मनसः कम्पः समुत्पद्यते।
एकस्याशयघस्मरस्य पिबतस्तृप्तिर्न जाता जलै-
रन्यस्यापि महात्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि जातः श्रमः॥

अर्थ :—सत्त्वानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिऐ कहा जा रहा है—न कि जैसा भट्ट इन्दुराज का निम्न पद्य है—

अत्यधिक समर्थ वडवानल एवं समुद्र दोनों ही आश्चर्यजनक हैं, इनके श्रेष्ठ कर्म के चिन्ता मात्र से हृदय में कँपकँपी उत्पन्न हो जाती है। इनमें एक (वडवानल) शोषण करते हुए अधिक से अधिक जल पी लेने पर भी तृप्त नहीं हो रहा है (अनादिकाल से आज तक वह जल पीता ही जा रहा है) और महा सत्त्वशाली दूसरा (समुद्र) इतना सन्ताप सह कर भी अपने शरीर पर स्वल्प भी क्लेश का अनुभव नहीं करता है॥

टीका—सत्त्वानौचित्यमुदाहर्तुमाह—आश्चर्यमिति। सः=जगत्प्रसिद्धः, भगवान्=समर्थः, वडवानलः=वडवाग्निः, आश्चर्यम्=आश्चर्यस्य विषय इति भावः, तथा स भगवान् अम्भोनिधिः=सागरः, आश्चर्यम्=आश्चर्यजनकः, यत्कर्मातिशयम्-ययोः=सागरवडवानलयोः कर्मणा=कार्यस्य अतिशयम्=उत्कर्षम्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचिन्त्य=विचार्य, मनसः = चेतसः कम्पः=कम्पनम्, समुत्पद्यते=सञ्जायते। किं तत्कम्पकारणमित्युच्यते—आशयघस्मरस्य-आशयस्य=आश्रयस्य, घस्मरः = विनाशकस्तस्य, एकस्य = वडवाग्नेरित्यर्थः, पिबतः=आचमतः, जलैः=सलिलैः, तृप्तिः=तर्पणम्, न जाता=नोत्पन्ना, महात्मनः=महाशयस्य, अन्यस्यापि= अपरस्यापि, वपुषि = शरीरे, स्वल्पोऽपि=मनागपि, श्रमः=वडवातापजनिता श्रान्तिः, नजातः=नोत्पन्नः अत उभयमप्याश्चर्यजनकमिति भावः ॥

अत्र वडवानलसमुद्रयोः सत्त्वमहत्त्वे वक्ष्यमाणे नातिविपुलाशयत्वादेकस्य पिबतः, पयोभिस्तृप्तिर्न जाता, द्वितीयस्य तदुपजीव्यमानस्य न मनागपि खेदः, तदेतदुभयमाश्चर्यमित्युक्ते निःसन्तोषतया सततया च कस्य न वडवाग्नेर्लज्जा न च जलनिधेराश्रितैकार्थिपूरणसामर्थ्यमित्यसत्त्वे सत्त्वस्तुतिरनौचित्यमावहति ॥ ३१ ॥

अर्थः—इस पद्य में वडवानल एवं समुद्र के सत्त्वाधिक्य के वर्णन के सन्दर्भ में समुद्र के अति विपुल जलाशय न होने के कारण जल पीते हुए एक (वडवानल) की जल से तृप्ति न हुई और दूसरे (समुद्र) को, जो इस वडवानल का आश्रय है, इससे थोड़ा भी कष्ट नहीं हुआ, अतः ये दोनों ही आश्चर्य के विषय हैं—इस कथन में निरन्तर असन्तोष के कारण वडवाग्नि पर किसे शर्म नहीं आती। दूसरी ओर सागर में एक याचक की भी इच्छा पूर्ण करने की शक्ति नहीं है इस प्रकार असत्त्व में सत्त्व बतला कर प्रशंसा करना अनौचित्य को ही प्रकाशित करता है।

टीका—अत्रेत्यादिः। अत्र=उक्ते पद्ये, वडवानल-सागरयोः, सत्त्वमहत्त्वे =सत्त्वमाहात्म्ये, वक्ष्यमाणे=अभिधास्यमाने; नातिविपुलजलाशयत्वात्=नातिदीर्घाश्रयत्वात्, वडवाग्निं पूरयितुं सागरस्याक्षमत्वादित्यर्थः, जलैस्तृप्तिर्न जाता, सागरजलैः सन्तुष्टिर्न जातेत्यर्थः, द्वितीयस्य=अपरस्य, सागरस्येत्यर्थः, तदुपजीव्यमानस्य=वडवाग्नेराश्रयभूतस्य तस्य, मनागपि=स्वल्पमपि, न खेदः= न कष्टम्, तदेतदुभयमाश्चर्यकरम्, इत्युक्ते=इति कथने, वडवाग्नेः, सततया= निरन्तरं वर्तमानया निःसन्तोषतया = सन्तोषाभावादित्यर्थः, कस्य न लज्जा अपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तु सर्वस्य लज्जा जायत इति भावः। न च जलनिधेः=सागरस्य, आश्रितैकार्थि-पूरणसामर्थ्यम्—आश्रितः=स्वस्मिन् निवसमानो य एकः=केवलः अर्थो=याचकस्तस्य पूरणे=इच्छाभरणे सामर्थ्यम्=शक्तिः, इति=इत्थम्, असत्त्वे=उभयोः सत्त्वाभावे सिद्धे सति, सत्त्वस्तुतिः=सत्त्वभावेन प्रशंसनम्, अनौचित्यम्=औचित्याभावमेव, आवहति=धारयति ॥ ३१ ॥

अभिप्रायौचित्यं दर्शयितुमाह—

अकदर्थनया सूक्तमभिप्रायसमर्थकम्।
चित्तमावर्जयत्येव सतां स्वस्थमिवार्जवम् ॥ ३२ ॥

अन्वय :—अकदर्थनया, अभिप्रायसमर्थकम्, सूक्तम्, स्वस्थम्, आर्जवम्, इव, सताम्, चित्तम्, आवर्जयति, एव ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ :—अकदर्थनया=विनाक्लेश के, विना फजीहत के, अभिप्रायस-मर्थकम्=अभिप्राय को अभिव्यक्त करने में समर्थ, सूक्तम्=सत्काव्य, स्वस्थम्=स्वस्थ, निर्मल, आर्जवम्=सरलता, विनय, इव=तरह, सताम्=सज्जनों के, चित्तम्=मन को, हृदय को, आवर्जयति=आकृष्ट करता है, एव=ही ॥ ३२ ॥

अर्थ :—सत्त्यौचित्यकी विवेचना के अनन्तर अब क्रम प्राप्त वीसवें अभि-प्रायौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कहा जा रहा है—

क्लेश के विना अभिप्राय को अभिव्यक्त करने में समर्थ (अर्थात् अत्यन्त सरलता से अर्थावबोध कराने में क्षम) सत्काव्य, निर्मल विनम्रता की तरह, सज्जनों के हृदय को अवश्य आकृष्ट करता है ॥ ३२ ॥

टीका :—सत्त्वौचित्यस्य विवेचनानन्तरमधुना क्रम-प्राप्तं विंशतितममभि-प्रायौचित्यमुपस्थापयितुमाह—अकदर्थनयेति । अकदर्थनया = अक्लेशेन, अभिप्रायसमर्थकम्—अभिप्रायस्य=आशयस्य, अर्थस्येति यावत्, समर्थकम्=प्रकाशकम्, सूक्तम्=सत्काव्यम्, स्वस्थम्=निरुजम्, निर्मलमित्यर्थः, आर्जवम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारल्यम्, इव, सताम्=सज्जनानाम्, चित्तम्=हृदयम्, आवर्जयत्येव=आकर्षत्येव ॥ ३२ ॥

अक्लेशेनाभिप्रायसमर्थकं काव्यं हृदयमावर्जयति, सज्जनानां निर्मलमार्जवमिव।

कारिका के ही अर्थ को अभिव्यक्त करते हुए कह रहे हैं—

अत्यन्त सरलता से अभिप्राय को व्यक्त करने वाला काव्य हृदय को उसी प्रकार आकृष्ट करता है जैसे सज्जनों का निर्मल सरल व्यवहार।

कारिकाभिप्रायमेव प्रकाशयति—अक्लेशेनेति। अक्लेशेन=बुद्ध्यायासं विनैव, अभिप्रायसमर्थकम्=आशयप्रकाशकम्, काव्यम्=कविकृतिः, तथैव हृदयमावर्जयति=चेतश्चोरयति, यथा सज्जनानां निष्कलुषम् आर्जवम्=सारल्यम्, जनानां मन आह्लादयति॥

यथा दीपकस्य—

श्येनाङ्घ्रिग्रहदारितोत्तरकरो ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तर,
आताम्राधरपाणिपादनयनप्रान्तः पृथूरःस्थलः।
मन्येऽयं द्विजमध्यगो नृपसुतः कोऽप्यम्ब! निःशम्बलः,
पुत्र्येवं यदि कोष्ठमेतु सुकृतैः प्राप्तो विशेषातिथिः॥

अर्थ:—अभिप्रायौचित्यका उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—जैसे कवि दीपक का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग—किसी स्वस्थ सुन्दर युवकको देख कर कोई स्वैरिणी तरुणी अपनी व्यभिचारिणी माँ से कह रही है। इसमें माँ-बेटी दोनों का संवाद है।

बेटी—(हे माँ) पालित बाज पक्षी के पकड़ने के समय उसके द्वारा काट ली गई अंगुलियों वाला; धनुषकी डोरी के घर्षण से घट्ठायुक्त कलाईवाला; अधर, हथेली, पैर तथा नेत्रों के किनारे जिसके किञ्चित् रक्तवर्ण के हैं ऐसा, विशाल वक्षःस्थल वाला, ब्राह्मणों के मध्य में विराजमान यह कोई राजकुमार प्रतीत हो रहा है। मालूम पड़ता है यह इस समय आश्रय की तलाश में भटक रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता—हे बेटी, यदि ऐसी बात है तो इसे सम्मानपूर्वक अपने घर में ठहराओ, क्योंकि ऐसा विशिष्ट अतिथि बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है ।।

टीका—अभिप्रायौचित्यमुदाहर्तुमाह—श्येनांघ्रीति । तरुणं सुन्दरञ्च राजसु ।मागतं विलोक्य स्वैरिण्यास्तरुण्यास्तथा पुंश्चल्यास्तन्मातुश्च कथनोपकथनमत्र । पुत्री—हे अम्ब=हे मातः, श्येनाङ्घ्रिग्रहदारितोत्तरकरः—श्येनस्य = लोके 'बाज़' इति नाम्ना प्रसिद्धस्य पक्षिणः, अङ्घ्रयोः = चरणोः, ग्रहेण = ग्रहणेन, दारितः=विदारितः, उत्तरकरः=हस्ताग्रभागो यस्य स तादृशः, ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तरः —ज्यायाः=प्रत्यञ्चायाः अङ्कः=चिह्नम् प्रकोष्ठस्य=मणिबन्धस्य अन्तरे= मध्ये यस्य स तादृशः, आताम्रः=ईषद्रक्तवर्णः अधरः=अधरोष्ठः पाणी= हस्तौ, पादौ = चरणौ, नयनप्रान्तौ=लोचनप्रान्तौ यस्य तादृशः, पृथूरःस्थलः— पृथु=विशालं मांसलञ्च उरस्थलम् = वक्षःस्थलं यस्य तादृशः, द्विजमध्यगः = ब्राह्मणमध्यवर्ती, अयम् = एषः, कोऽपि = कश्चित्, नृपसुतः = राजपुत्रः, निःसम्बलः = निराश्रयः, इति=इत्थम्, मन्ये=अनुमिनोमि । पुत्र्याः कथनं श्रुत्वा जननी वदति —हे पुत्रि, यदि, एवम्=इत्थम्, अयं मे कोष्ठम् = गृहाभ्यन्तरम्, एतु=आगच्छतु, ईदृशः विशेषातिथिः=विशिष्टोऽभ्यागतः, सुकृतैः= भाग्यैः, प्राप्तः=लब्धो भवतीति शेषः ।।

अत्र स्वैररमणी रमणीयं दिवसावसाने युवानं पथिकमालोक्याभिप्रायसूचकं जननीमेवं ब्रूते—"यदसौ राजपुत्राकृतिः श्येनग्रहनाराचपरिचयोचितः सायंसमये प्राप्तः इत्युक्ते मात्राप्यभिप्रायपूरकमभिहितम्—पुत्रि ! यद्येवं तत्कोष्ठाङ्कं प्रविशतु सुकृतैर्विशेषोऽतिथिः प्राप्तः पूज्य इत्येतेन स्फुटाभिप्रायसूचकमौचित्यमुपचितमाचकास्ति ।

अर्थ :—इस पद्य में कोई स्वैरचारिणी सायंकाल के समय किसी सुन्दर युवक पथिक को देखकर अपनी माँ से साभिप्राय यह वचन कह रही है—"यह पथिक राजकुमार-सा प्रतीत हो रहा है, क्योंकि इसकी अँगुलियों में बाज के नखों के और धनुष की प्रत्यञ्चा की रगड़ के निशान हैं । यह सायंकाल की इस वेला में आश्रय की तलाश में है ।" ऐसा कहने पर उसकी माता ने भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके अभिप्राय के समर्थन में कहा—"बेटी, यदि ऐसी बात है तो यह हमारी कोठरी में प्रवेश कर विश्राम करे, क्योंकि पुण्यों से प्राप्त ऐसा विशिष्ट अतिथि समादरणीय होता है।" इस कथन से इस पद्य में अभिप्रायौचित्य का आकर्षक वर्णन चमत्कार उपस्थित कर रहा है।

टीका—स्वैररमणीति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, स्वैररमणी=स्वेच्छाचारिणी काचिद्रमणी, दिवसावसाने=सायंकाले, रमणीयम्=रमणयोग्यम्, युवानम्=तरुणम्, पथिकम्=यात्रिणम्, आलोक्य=दृष्ट्वा, अभिप्रायसूचकम्=साभिप्रायमित्यर्थं, जननीम्=मातरम्, एवम्=इत्थम्, ब्रूते=कथयति—"यदसौ यदयम्, राजपुत्राकृतिः=राजपुत्राकारः, श्येनग्रहस्य नाराचस्य च परिचयेन=ज्ञानेन उचितः=युक्तः, सायंसमये=सायकाले, प्राप्तः=उपस्थितः" इत्युक्ते=इति कथने, मात्रा=जनन्या अपि, अभिप्रायपूरकम्=अभिप्रायसमर्थकम्, अभिहितम्=कथितम्—"पुत्रि=सुते, यदि एवम्=इत्थम्, अस्ति, तत्=तर्हि, प्रकोष्ठाङ्कम्=कक्षाभ्यन्तरम्, प्रविशतु=गच्छतु, अस्माकं सुकृतैः=पुण्यैः, प्राप्तः=लब्धः, विशेषोऽतिथिः विशिष्टोऽभ्यागतः, पूज्यः=आदरणीयः, सम्मानयोग्य इति यावत्, इति=इत्थम्, एतेन=अनेन कथनेन, स्फुटाभिप्रायसूचकम्=स्पष्टं तात्पर्याभिव्यञ्जकम् औचित्यम् उपचितम्=प्रवृद्धं सत् चकास्ति=शोभते.॥

न तु यथाऽस्यैव-

अयि विरहविचित्ते! भर्तुरर्थे तथार्ता
सपदि, निपतिता त्वं पादयोश्चण्डिकायाः।
स्वयमुपहितधूपस्थालकच्छत्रभृङ्गो-
द्दलितमपि ललाटं येन नैवाललक्षे॥

अभिप्राय अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा दीपक के ही इस पद्य में—

प्रसङ्ग—किसी विरहिणी स्वेच्छाचारिणी ने परपुरुष के साथ छककर संभोग-क्रीडा की है। संभोग के समय उन्मत्त प्रेमी ने भी नायिका के कपोल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि पर जमकर दन्तक्षत तथा नखक्षत किया है। इस बात को छिपाने के लिए उसकी एक खास सखी इस प्रकार कह रही है--

अरी विरह के कारण अपने-आपको भी भूल जानेवाली सखी, तुम अपने पतिदेव के लिए इतनी आर्त हो गई हो कि शीघ्रतापूर्वक दुर्गाजी के पैरों पर इस प्रकार पछाड़ खाकर गिरी कि तुम्हें स्वयं पूजा के समय रक्खे गये धूपदानी के छत्ते के कोने से क्षत-विक्षत होते हुए ललाट आदि का भी. ध्यान न रहा। (अर्थात् तुम्हारे चेहरे पर वर्तमान यह खरोंच धूपदानी के धक्के से आ गई हैं, यह परपुरुष के साथ सम्भोग के समय का दन्तक्षत आदि नहीं हैं) ॥

टीका--अभिप्रायानौचित्यमुदाहर्तुमाह--अयि विरहविचित्त इति। उपनायककृतनखक्षतादिगोपनं कर्तुं तत्परायाः पुंश्चल्याः समर्थने तत्सख्याः कथनमिदम्। अयि विरहविचित्ते–विरहेण=वियोगेन विचित्ता=उत्कण्ठितचित्ता तत्सम्बोधने, भर्तुः=पत्युः अर्थे=कृते, तथा=तेन प्रकारेण, आर्ता=विह्वला, सपदि=शीघ्रम्, वेगेनेति यावत्, चण्डिकायाः=भगवत्याः, पादयोः=चरणयोः, निपतिता=प्रणिपाते पतिता, येन=येन हेतुना, स्वयम्=आत्मना, उपहितम्=अर्पितं यद्धूपस्थालकम्=धूपवर्तिपात्रम् तस्य छत्रस्य=छत्रकाकारस्योर्ध्वभागस्य शृङ्गेण=कोटचा उद्दलितम्=क्षतम्, ललाटम्=मस्तकम् आननभागमपीत्यर्थः, नैव=नहि, आलक्ष्यं=अवलोकितवती। तव कपोलप्रान्ते स्थितं क्षतं धूपवर्तिपात्रक्षतमेव न तु परपुरुषकृतं नखक्षतादिकमिति भावः॥

अत्राविनयवत्याः सुचिरात्पत्यावगते ललाटनखोल्लेखापह्नववचने सख्या समुपदिश्यमाने हे विरहोन्मत्ते भर्तुरर्थे चण्डिकापादपतने स्वयं स्थापितधूपस्थालकोटिक्षतमपि न लक्षितं भवत्या ललाटमित्युक्तौ स्वैरापह्नवशिक्षामात्रमेवोपलक्ष्यते, न तु तस्याः सख्या वा कश्चिदभिप्रायविशेषः॥ ३२॥

अर्थ :--इस पद्य में चिरकाल के बाद स्वामी के वापस आने पर उसकी व्यभिचारिणी स्त्री के ललाट पर स्थित नखक्षत के छिपाने के प्रसङ्ग में उपदेश देती हुई उसकी सखी कह रही है कि—"अरी विरहोन्मत्ते, स्वामी के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी दुर्गा के चरणों पर गिरती हुई तूने स्वयं रखी गई धूपदानी के छत्रक से क्षत-विक्षत होते हुए ललाट की ओर भी ध्यान न दिया।" इस कथन में स्वैर विहार को छिपाने की शिक्षामात्र प्रतीत होती है, न कि उस स्वेच्छा चारिणी अथवा उसकी सखी का कोई विशिष्ट अभिप्राय प्रतीत होता है ॥ ३२ ॥

टीका—अत्राविनयवत्या इति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, चिरकालानन्तरं स्वामिनि प्रवासानि प्रत्यागते, अविनयवत्याः=व्यभिचारिण्याः नायिकायाः, ललाटे=कपोलप्रान्ते यो नखैः=कररुहैः उल्लेखः=छेदस्तस्य अपह्नववचने=गोपनकथने, सख्या, समुपदिश्यमाने=प्रतिपाद्यमाने, "अपि विरहोत्कण्ठिते, भर्तुः=स्वामिनः, अर्थे=कल्याणभावनया, चण्डिकायाः=अम्बिकायाः पादयोः=चरणयोः, पतने=नमने, स्वयं समर्पितधूपवर्तिपात्रप्रान्तक्षतमपि, ललाटम्=कपोलभागः, न लक्षितम्=न चिन्तितम्, भवत्या=त्वया," इत्युक्तौ इति कथने, स्वैरापह्नवशिक्षामात्रम्—स्वैरस्य=व्यभिचारस्य अपह्नवे या शिक्षा तन्मात्रमेव, उपलक्ष्यते=विज्ञायते, न तु तस्याः सख्या कश्चिदभि—प्रायविशेषः=कश्चिद्विशिष्टोऽभिप्रायः प्रतीयते इति शेषः। अतोऽत्राभिप्रायानौचित्यं स्पष्टमिति भावः ॥ ३२ ॥

स्वभावौचित्यं दर्शयितुमाह---

स्वभावौचित्यमाभाति सूक्तीनां चारु भूषणम्।
अकृत्रिममसामान्यं लावण्यमिव योषिताम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सूक्तीनाम्, चारु, भूषणम् स्वभावौचित्यम्, योषिताम्, अकृत्रिमम्, असामान्यम्, लावण्यम्, इव, आभाति ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ :--सूक्तीनाम्=काव्यों का, चारु=मनोहर, भूषणम्=आभूषण-स्वरूप, स्वभावौचित्यम्=स्वभावानुकूल वर्णन, अकृत्रिमम्=स्वाभाविक, असामान्यम्=अनुपम, योषिताम्=स्त्रियों के, लावण्यम्=सौन्दर्य की, इव=तरह आभाति=सुशोभित होता है ॥ ३३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—अभिप्रायौचित्य के अनन्तर क्रम-प्राप्त इक्कीसवें स्वभावौचित्य का प्रदर्शन करने के लिये कहा जा रहा है—

काव्यों का मनोहर आभूषणस्वरूप स्वाभावानुकूल वर्णन, स्त्रियों के स्वाभाविक एवं अनुपम सौन्दर्य की तरह, सुशोभित होता है ॥ ३३ ॥

टीका :—अभिप्रायौचित्य वर्णनान्तरं सम्प्रति क्रमागतमेकविंशतितमं स्वभावोचित्यं वर्णयितुमाह—स्वभावौचित्यमिति । सूक्तीनाम्=काव्यानाम् चारु=मनोहरम्, भूषणम्=आभूषणम्, स्वभावौचित्यम्=प्रकृत्यनुसारि वर्णनम्, योषिताम्=सुन्दरीणाम्, अकृत्रिमम्=स्वाभाविकम्, असामान्यम्=अनन्य-साधारणम्, लावण्यमिव=सौन्दर्यमिव, आभाति=शोभते ॥ ३३ ॥

स्वभावोचितत्वं कविवाचामाभरणमाभाति, अकृत्रिममनन्य-सामान्यं लावण्यमिव ललनानाम् ।

अर्थ :—स्वभाव के अनुरूप वर्णन काव्य का वैसा ही आभूषण है जैसा स्वाभाविक एवं विशिष्ट लावण्य नायिका का आभूषण है ।

टीका :—स्वभावौचितत्वमिति । स्वभावोचितत्वम् = प्रकृत्यनुसारि वर्णनम्, कविवाचाम्=कविवाणीनाम् आभरणम्=आभूषणम्, आभाति = प्रतीयते, कथमिव ? यथा अकृत्रिमम्=स्वाभाविकम्, अनन्यसामान्यम्= अनन्यसाधारणम्, ललनानाम्=सुन्दरीणाम्, लावण्यमिव=सौन्दर्यमिवेति भावः ॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

कर्णोत्तालितकुन्तलान्तनिपतत्तोयक्षणासङ्गिना,
हारेणेव वृतस्तनी पुलकिता शीतेन सीत्कारिणी ।
निर्धौताञ्जनशोणकोणनयना स्नानावसानेऽङ्गना,
प्रस्यन्दत्कबरीभरा न कुरुते कस्य स्पृहार्द्रं मनः ॥

अर्थ :—स्वभावौचित्यका उदाहरण प्रदर्शित करने के लिये कहा जा रहा है—

जैसे मेरी मुनिमतमीमांसा म निम्न श्लोक है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कानों के पीछे से सामने नीचे की ओर फेंके गये, घुँघराले बालों से अविरल टपकने वाले अतः कुछ समय तक हार की तरह प्रतीत होनेवाले जलबिन्दुओं की पंक्ति से युक्त स्तनों वाली, ठण्ड के कारण रोमाञ्चित तथा सी सी करने वाली, काजल के घुलजाने से रक्ताभ नेत्रों वाली एवं जल टपकाने वाले तथा खुले हुए केशकलाप वाली, सद्यः स्नान की हुई तरुणी किसके मन को नहीं ललचाती है ? ।।

टीका :—स्वभावौचित्यमुदाहर्तुमाह—कर्णोत्तालितेत्यादि । कर्णाभ्याम् =श्रवणाभ्याम् उत्तालितानि=ऊर्ध्वं निक्षिप्तानि, वस्तुतः पश्चात्कृत्वा अधः क्षिप्तानि, यानि कुन्तलानि=कुटिलाः केशकलापा इत्यर्थः, तेभ्यो निपतन्ति= क्षरन्ति यानि तोयानि=जलकणा इति यावत्, क्षणम्=निमेषमात्रम् आसङ्गिना =सम्पर्कवता, अतो हारेणेव=मौक्तिकमालेव, वृतस्तनी=आवृतपयोधरा; शीतेन=स्नानजन्यजाड्येन, पुलकिता=सञ्जातरोमाञ्चा, सीत्कारिणी= सीत्कारयुक्ता, तथा निर्धौतेत्यादि—निर्धौतम्=स्नानेन क्षालितम् अञ्जनम्= कज्जलम् ययोरेवंभूतेऽत एव शोणे=रक्ते कोणे=प्रान्ते ययोस्तथाभूते नयने= लोचने यस्याः सा तादृशी, प्रस्यन्दत्कबरीभरा–प्रस्यन्दत्=जलं स्रावयत् कबरीभरः =मुक्तकेशकलापो यस्या सा तादृशी, स्नानानावसाने=स्नानपरिसमाप्तौ, अङ्गना =सुन्दरी, कस्य मनः=कस्यसचेतसश्चित्तम्, स्पृहार्द्रम्=उत्कण्ठासिञ्चितम्, न कुरुते=न करोति ? अपितु सर्वस्यैव करोतीति भावः ।।

अत्र "व्याससूनोः शुकस्य गाढवैराग्यनिःसङ्गस्य, गगनगङ्गातीरे स्नातोत्तीर्णास्त्रिदशयोषितो विवसनास्तद्दर्शननिःसङ्कोचाः पश्यतः प्रशमविमलमनसः स्मरव्यतिकरनिर्विकारतायां कर्णमूलोत्क्षिप्तालक-पर्यन्तनिपतत्तोयकणसन्तानेन स्तनयोः कृतमुहूर्तहारविभ्रमा, शीतेन रोमाञ्चसीत्कारिणी, धौताञ्जनारुणनयनान्ता, प्रस्रवन्मुक्तकेशकलापा, स्नानोत्तीर्णा तरुणी कस्य स्पृहार्द्रं न मनः करोतीत्युक्ते" स्वयमार्द्र-स्वभावः परमप्यार्द्रीकरोतीत्युचितमेतत् ।

अर्थ :—इस पद्य में—आकाशगङ्गा के तट पर स्नान करके जल से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकली हुई, निर्वस्त्र एवं उन (शुकदेवजी) को देखकर भी न लजाने वाली देव सुन्दरियों को भी देखकर, शम के कारण, निर्विकार तथा प्रखर वैराग्य के कारण आसक्तिरहित व्यासपुत्र शुकदेवजी की काम-वासना के कारण उत्पन्न होने वाली विकारभावना की शून्यता के सन्दर्भ में (कहा गया है)—

कान के मूल-भाग के पास नीचे की ओर झुकाए गये घुँघराले बालों से टपकते हुए जल-बिन्दुओं की कतारों से स्तनों के ऊपर थोड़ी देर तक हार का भ्रम उत्पन्न कर देने वाली, ठण्ड के कारण रोमाञ्चित एवं शी-शी करने वाली, काजल के घुल जाने से रक्ताभ नेत्राञ्चल वाली, खुले हुए तथा जल चुवाते हुए केशों वाली, स्नान करके तत्क्षण निकली हुई तरुणी किसके मन को स्पृहा से आर्द्र नहीं बना देती है ? इस कथन में निष्कर्ष रूप से यह दिखलाया गया है कि स्वयं आर्द्र स्वभाववाली वस्तु दूसरों को भी आर्द्र बना देती है। यहाँ औचित्य-पूर्ण स्वभाव का वर्णन किया गया है।

टीका :—अत्र व्याससूनोरिति । अत्र=एतस्मिन् पद्ये, "गगनगङ्गातीरे—गगने=आकाशे प्रवहमाना या गङ्गा=सुरसरित् तस्यास्तीरे=तटे, स्नातोत्तीर्णाः=पूर्वं स्नाता=कृतनिमज्जना। पश्चादुत्तीर्णाः=सरितो निर्गताः, विवसनाः=निर्वस्त्राः, तथापि, तद्दर्शननिःसङ्कोचाः—तस्य=शुकस्येत्यर्थः दर्शने=अवलोकने अपि निःसङ्कोचाः=निर्लज्जाः, ताः, पश्यतः=अवलोकयतः प्रशमविमलमनसः—प्रशमेन=प्रकृष्टेन दमेन विमलम्=नीरजस्कं मनः=चेतो यस्य तादृशस्य, गाढवैराग्यनिःसङ्गस्य—गाढः=दृढो यो वैराग्यस्तेन निःसङ्गः=आकर्षणरहितस्तस्य, व्यासपुत्रस्य शुकस्य, स्मरव्यतिकरनिर्विकारतायाम्—स्मरेण=मनोभवेन यो व्यतिकरः=सम्बन्धस्तत्र निर्विकारतायाम्=विकारशून्यतायाम्, कर्णमूलेत्यादि—कर्णयोः=श्रोत्रयोः मूले=तटे उत्क्षिप्ताः=प्रक्षिप्ताः ये अलकाः=केशाः तेषां पर्यन्तेभ्यो निपतन्तो ये तोयकणाः=जलबिन्दवस्तेषां सन्तानेन=प्रवाहेण, स्तनयोः=कुचयोः, कृतमुहूर्तहारविभ्रमा—कृतः=सम्पादितो मुहूर्तम्=क्षणम् हारस्य=मुक्तादाम्नो विभ्रमः=भ्रान्तिर्यस्याः सा यया सा वेति, शीतेन=जाड्येन, रोमाञ्चसीत्कारिणी-रोमाञ्चा=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सपुलकोद्गमा सीत्कारिणी=सीत्कारकारिणी च, धौताञ्जनारुणनयनान्ता=प्रक्षालितकज्जलरक्ताभनेत्राञ्चला, प्रस्रवन्=जलं स्रावयन् केशकलापः=केशसमूहो यस्याः सा तादृशी, स्नानोत्तीर्णा=स्नानं विधाय जलाशयान्निर्गता, तरुणी=युवती, कस्य मनः=चेतः, स्पृहार्द्रम्=उत्कण्ठितम्, न करोति=अपितु सर्वस्यैव करोतीत्यभिप्रायः, इत्युक्ते=इति कथने, स्वयमार्द्रस्वभावः=स्वयं सरसः, परमपि=अन्यमपि, आर्द्रीकरोति=सरसं करोति, इति=इत्थम्, एतत्=इदम्, उचितमेव=औचित्ययुक्तमेवेति ॥

न तु यथा मम तत्रैव—

भक्तिः कातरतां क्षमा सभयतां पूज्यस्तुतिर्दीनतां,
धैर्यं दारुणतां मतिः कुटिलतां विद्याबलं क्षोभताम् ।
ध्यानं वञ्चकतां तपः कुहकतां शीलव्रतं षण्ढतां,
पैशुन्यव्रतिनां गिरां किमिव वा नायाति दोषार्द्रताम् ॥

अर्थः—स्वभावानौचित्य का उदाहरण दिखलाया जा रहा है—न कि मेरा जैसे वहीं (मुनिमतमीमांसा) का निम्न श्लोक है—

चुगलखोरों की वाणी कौन सी ऐसी बात है, जिसे दोषयुक्त नहीं ठहराती है ? वह भक्ति को कातरता, क्षमा को भीरुता, पूज्यों के प्रति की गई स्तुति को दीनता, धैर्य को दारुणता, बुद्धितीक्ष्णता को कुटिलता, विद्या को क्षोभकारिता, ध्यान को वञ्चकता, तप को माया एवं सुशीलता को नपुंसकता बतलाती हैं ॥

टीका—स्वभावानौचित्यमुदाहरति—भक्तिरिति । भक्तिः=ईश्वरसेवनादिकम्, कातरताम्=अतिशयदीनताम्, क्षमा=सहनशीलता, सभयताम्=भीरुताम्, पूज्यस्तुतिः=पूज्यं प्रतिकृता स्तुतिः, दीनताम्=दैन्यम्; धैर्यम्=धीरता, दारुणताम्=निष्ठुरताम्, मतिः=तीक्ष्णा बुद्धिः, कुटिलताम्=वक्रताम्, विद्याबलम्=शास्त्राणामभ्यासः, क्षोभताम्—क्षोभयतीति क्षोभस्तत्तां क्षोभताम्=क्षोभकारितामित्यर्थः; ध्यानम्=नेत्रे निमील्येश्वरचिन्तनम् वञ्चकताम् धूर्तताम्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपः=तपस्या, कुहकताम्=मायाम्, शीलव्रतम्=शीलानुष्ठानम्, षण्ढताम्=नपुंसकताम्, उपगच्छंतीति शेषः, एवञ्चैतत समायाति यत्—पैशुन्यव्रतिनाम्=पैशुन्यैकव्रतपराणां जनानाम्, गिराम्=वाचाम्, कृते, तत् किमिव=किमस्ति यत् दोषार्द्रताम्=दोषपात्रताम्, नायाति=नोपगच्छति। अपि तु सर्वमेव दोषरूपतामाप्नोतीति भावः ॥

अत्र पिशुनस्वभावे वर्ण्यमाने भक्त्यादीनां गुणानां वैपरीत्ये प्रतिपादिते पिशुनानां वचसां किं वा दोषार्द्रतां नायातीत्यभिहिते स्वयमनार्द्रस्वभावस्य परार्द्रीकरणमनुचितमेव ॥ ३३ ॥

अर्थ :—इस पद्य में पिशुन-स्वभाव के वर्णन क्रम में भक्ति आदि गुणों को विपरीत रूप से वर्णित करने पर चुगलखोरों के वचनों के लिये कौन-सी वस्तु दोषपूर्णता (दोषार्द्रता) को नहीं प्राप्त करती ?" इस कथन में यह बात विरुद्ध प्रतीत होती है कि जो वस्तु (पिशुनता) स्वयम् अनार्द्र है (शुष्क है) वह कैसे दूसरी वस्तु को आर्द्र (दोषार्द्र) बना सकती है ? ॥ ३३ ॥

टीका—अत्रपिशुनस्वभाव इति। अत्र=एतस्मिन् पद्ये, पिशुनस्वभावे—पिशुनस्य=सूचकस्य स्वभावे=प्रकृतौ, वर्ण्यमाने=अभिधीयमाने, भयादीनां गुणानाम् वैपरीत्ये=विपर्यासे, प्रतिपादिते=कथिते, पिशुनानां वचसाम्=वाचाम्, किं तदस्ति यद् दोषार्द्रताम्=दोषास्पदताम्, नायाति=नागच्छति।" इत्यभिहिते=इति कथिते, स्वयमनार्द्रस्वभावस्य=स्वयं शुष्कप्रकृतेः पिशुनवचसः परस्यार्द्रीकरणमनौचित्यमेव प्रकाशयति ॥ ३३ ॥

सारसङ्ग्रहौचित्यं दर्शयितुमाह—

सारसङ्ग्रहवाक्येन काव्यार्थः फलनिश्चितः।
अदीर्घसूत्रव्यापार इव कस्य न सम्मतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—सारसंग्रहवाक्येन, फलनिश्चितः, काव्यार्थः, अदीर्घसूत्रव्यापारः, इव, कस्य, न सम्मतः ॥ ३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—सारसंग्रहवाक्येन=ग्रन्थ के सार को एक स्थान पर उपस्थापित करने वाले वाक्य के द्वारा, फलनिश्चितः=सुनिश्चित फल वाला, काव्यार्थः = काव्यार्थ, अदीर्घसूत्रव्यापारः=झटिति कार्य को सम्पादित करने वाले व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यापार के, इव=समान, कस्य=किसे, न=नहीं, सम्मतः =प्रिय होता ? ॥ ३४ ॥

अर्थ :—स्वभावौचित्य का विचार करने के अनन्तर अब-क्रम प्राप्त बाइसवें सारसंग्रहौचित्य की विवेचना की जा रही है—ग्रन्थ के सार को एक स्थान पर उपस्थापित करने वाले वाक्य के द्वारा सुनिश्चित फल वाला काव्यार्थ, झटिति कार्य को सम्पादित करने वाले व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यापार के समान, किसे प्रिय नहीं होता ? ॥ ३४ ॥

टीका—स्वभावौचित्यस्य प्रदर्शनानन्तरमधुना सारसंग्रहौचित्यं विवेचयितुं माह—सारसंग्रहवाक्येनेति । सारसंग्रहवाक्येन=सारमेकत्रसंग्राह्योपस्थापनकर्त्रा वाक्येन, फलनिश्चितः—फलेन=परिणामेन, अर्थबोधफलेनेत्यर्थः । काव्यार्थः =काव्याभिधेयः फलनिश्चितः=निश्चितपरिणामसंवलितः, अदीर्घसूत्रव्यापारः —न दीर्घसूत्रोऽदीर्घसूत्रो झटितिकार्यसम्पादनपरो जनस्तस्य व्यापारः=कार्यम्; इव=यथा, कस्य न संमतः = कस्य सचेतसो नाभिमतः ? अपितु सर्वस्यैवाभिमत इति भावः ॥ ३४ ॥

सारसंग्रहवाक्येन काव्यार्थः सुनिश्चितफलः शीघ्रकारिण इव व्यापारः कस्य नाभिमतः ।

अर्थः—सार को संग्रहीत करके उपस्थापित करने वाले वाक्य के द्वारा सुनिश्चित फलवाला काव्यार्थ शीघ्र कार्य को सम्पन्न करने वाले व्यक्ति के निश्चित सफल होने वाले व्यापार की भाँति किसे अभिमत नहीं होता ? (अर्थात् सबको अभिमत होता है)"

टीका—कारिकागतमेव भावं सरलयति—सारसंग्रहवाक्येनेति । सारसंग्रहवाक्येन=ग्रन्थाभिप्रायमेकत्रोपस्थापकेन वाक्येन, सुनिश्चितफल एतत्काव्यार्थे व्यापारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चोभयत्र विशेषणम्, शीघ्रकारिणः=झटितिकार्यसम्पादनप्रवीणस्य जनस्य, व्यापार इव=कृतिरिव, कस्य नाभिमतः=अपितु सर्वस्यैवाभीप्सित इति सारार्थः ॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

विविधगहनगर्भग्रन्थसम्भारभारै-
र्मुनिभिरभिनिविष्टैस्तत्त्वमुक्तं न किञ्चित् ।
कृतरुचिरविचारं सारमेतन्महर्षे-
रहमिति भवभूमिर्नाहमित्येव मोक्षः ॥

अर्थ—सारसंग्रहगत औचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—जैसे मेरी मुनिमतमीमांसा का निम्न श्लोक है-

गूढ़ अभिप्रायों से भरे हुए विविध विषयों वाले बहुत से ग्रन्थों के निर्माण से दुराग्रही (वस्तुतः अभिमानी बने हुए) मुनियों ने उन ग्रन्थों में तत्त्व की कोई बात नहीं कही है । किन्तु महर्षिव्यास का यह निश्चित मत है कि अहंकार ही सांसारिक बन्धन का मूल और उसका अभाव ही मोक्ष है ॥

टीका— सारसंग्रहौचित्यमुदाहर्तुमाह—विविधगहनेत्यादिः—विविधः = अनेकप्रकारकः गहनः=गम्भीरः दुर्ज्ञेय इति यावत्, गर्भः = आशयः आभ्यन्तर भागो वा, येषान्ते तथा भूताः ये ग्रन्थास्तेषां सम्भारः=समूह एव भारः=गुरुत्व कारणमित्यर्थो, येषां तादृशैः अभिनिविष्टैः=कृताग्रहैः वस्तुतो बहूनां ग्रन्थानां निर्माणेनाभिमानशालिभिः मुनिभिः=ऋषिभिर्ग्रन्थकर्तृभिरित्यर्थः, किञ्चित् =किमपि, तत्त्वम्=सारभूतं रहस्यम्, न उक्तम्=न कथितम् । किन्तु महर्षेः= पूज्यस्य व्यासस्य, कृतरुचिरविचारम्—कृतः = विहितो रुचिरः=आकर्षकः विचारः =विवेको यस्मिन् तत् तादृशम, एतत् = इदम्, सारम् = तत्त्वमस्ति—अहम्= अहङ्कारः, इति=एव, भवस्य=जगतः भूमिः=उत्पत्तिकारणम्; अहम् न=अभिमानाभावः, इत्येव, मोक्षः=मुक्तिः । अभिमानमेव जगत्कारणम् अभिमानाभाव एव मुक्तिकारणमिति ॥

अत्र भगवद्गीतार्थविचारे सारसंग्रहोऽभिहितः—यत्किल मुनिभिर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेकभेदभिन्नशास्त्रजडैरभिनिविष्टमतिभिस्तत्त्वमुपादेयं न किञ्चित्कथितम्। भगवतो महर्षेर्व्यासस्य सुमतेर्विमलविचारोत्तीर्णं निश्चितमेतदेव—यदहङ्कारः संसारमूलभूमिर्ममतापरित्याग एव मोक्ष इति तत्संक्षेपेण भयक्षयोपदेशः प्रकृतार्थस्य परममौचित्यं पुष्णाति।

अर्थ :—इस श्लोक में भगवद्गीता के अर्थ-विचार के सन्दर्भ में सारार्थ प्रस्तुत किया गया है कि—

अनेक मतभेदों से आक्रान्त शास्त्रों के निर्माणों से जड़ बुद्धिवाले (अपने मत के उपस्थापन में) आग्रह से ग्रस्त मतिवाले मुनियों के द्वारा कोई उपादेय तत्त्व उपस्थित नहीं किया गया है। विवेकसम्पन्न, पूज्य, महर्षि व्यास का सुनिर्मल एवं श्रेष्ठतम यह सुनिश्चित मत है कि—अहङ्कार ही संसार का कारण है तथा ममता का परित्याग ही मोक्ष है।" इस प्रकार गीता के साररूप के द्वारा भव-भय-विनाश का उपदेश प्रस्तुत वक्तव्य के औचित्य को सुपुष्ट कर रहा है॥

टीका :—अत्रेत्यादि। अत्र = एतस्मिन् पद्ये, भगवद्गीताया अर्थस्य विचारे सारस्य=तत्त्वस्य संग्रहः=समूहः पिण्डार्थं इति यावत् अभिहितः=कथितः अनेकभेदभिन्नशास्त्रजडैः—अनेके=बहवो ये भेदाः=वादास्तैर्भिन्नानि=विभिन्नतामुपगतानि यानि शास्त्राणि तैर्जडैः=निर्माण-दाक्ष्याधिगतमौढ्यैः आभिनिविष्टमतिभिः—आग्रहग्रसितबुद्धिभिः वस्तुतः साहङ्कारैः मुनिभिः=पूज्यैर्ग्रन्थनिर्मातृभिः उपादेयम्=उपयोगि, किञ्चित्=किमपि न कथितम्=नाभिहितम्। क्रमे पर्वतोत्खनने मुषिकोपलब्धिरिव तेषां कथनमित्यभिप्रायः। भगवतः=पूज्यस्य, सुमतेः—सु=शोभना मतिः=बुद्धिर्यस्य तादृशस्य, महर्षेः=मन्त्रद्रष्टुः, व्यासस्य कृष्णद्वैपायनस्य, विमलविचारोत्तीर्णम्—विमलः=रागद्वेषादिरहितो यो विचारस्तस्मात् उत्तीर्णम्=उद्गतम् एतत्=इदम् एव, निश्चितम्=सारभूतोऽर्थः —यदहङ्कारः=अभिमानः, संसारस्य मूलभूमिः—संसारस्य=जगतः मूलभूमिः=मूलकारणम् तथा ममतायाः=रागस्य, परित्यागः=पूर्णतत्यागः, एवेतिदार्ढ्यं, मोक्षः=मुक्तिः इति=इत्थम्, तत्संक्षेपेण—तस्य=विश्वविश्रुतस्य गीताग्रन्थस्येत्यर्थः संक्षेपेण=साररूपेण, भयस्य=संसारभीतेः क्षयस्य=अपगमस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपदेशः=शिक्षा, प्रकृतार्थस्य=वर्णनीयार्थस्य, औचित्यं परमम्=अत्यन्तम्, पुष्णाति=पुष्टतां नयति। औचित्यस्य श्रीवृद्धिमेव करोतीत्यभिप्रायः ॥

न तु यथा परिव्राजकस्य—

तपो न तप्तं वयमेव तप्ता भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः ।
जरा न जीर्णा वयमेव जीर्णास्तृष्णा न याता वयमेव याताः ॥

अर्थ :—सारसंग्रह के अनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कहा जा रहा है—न कि जैसा परिव्राजक का यह पद्य है—

तप नहीं तपा गया किन्तु हम ही तप्त तो गये। सांसारिक भोगों का भोग नहीं भोगा गया किन्तु हम लोग ही (काल के द्वारा) भोग लिये गये। बुढ़ापा नहीं जीर्ण हुई बल्कि हम लोग ही जीर्ण कर दिये गये। तृष्णा (विषय-भोग की कामना) नहीं गई किन्तु हम लोग ही समाप्त हो गये॥

टीका :—सारसंग्रहानौचित्यमुदाहर्तुमाह—तपो न तप्तमिति ॥ तप=शास्त्रान्तरेषूपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि, न तप्तम्=न सम्पादितम्, किन्तु वयम्=संसारिण एव तप्ताः=सन्तापमधिगतवन्तः, भोगाः=सांसारिकविषयाः, न भुक्ताः=न भोगविषयत्वेन समाप्ताः कृताः अपितु, वयम्=भोगकर्तार एवेत्यर्थः, भुक्ताः=कालेन कवलीकृताः। जरा=वार्धक्यम् न जीर्णा=जीर्णतां न प्राप्ता, किन्तु वयमेव, जीर्णाः=जीर्णतां प्रापिताः। तृष्णाः=भोगैषणाः, न याताः=न गताः, किन्तु वयमेव=तृष्णाकर्तार एव याताः=आयुषा क्षीणतां गमिताः। निखिलं निःसारमेवेतिभावः ॥

अत्र "वयमेव तप्ता भुक्ता जीर्णा याता" इत्युक्ते निःसाराचारुत्वाद्पर्यवसितो वाक्यार्थः फलशून्यतया सारसंग्रहोचितं न किञ्चित्प्रतिपादयति ॥ ३४ ॥

अर्थः—इस पद्य में हम लोग, ही तप्त हुए, भोग से संसार की निःसारता एवं अशोभनता ही है। अतः फल शून्यता के कारण सारसंग्रह के योग्य क्या है, इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया। इसलिये यह सारसंग्रह के अनौचित्य का ही उदाहरण हो सकता है, औचित्य का नहीं ॥

टीका :—अत्रवयमेवेति। अत्र वयं संसारिण एव प्राणिनः तथा भुक्ता जीर्णा याताः" इत्युक्ते=इति कथने, निःसाराचारुत्वात्=संसारस्य असारत्वात् असुन्दरत्वाच्च, वाक्यार्थः=श्लोकार्थः, अपर्यवसितः=अवसानतामप्राप्तः, अतः फलशून्यतया=फलराहित्येन; स वाक्यार्थः, न किञ्चित्प्रतिपादयति=न किञ्चित् सिद्धान्तरूपेण स्थापयतीत्यर्थः ॥

प्रतिभौचित्यं दर्शयितुमाह—

प्रतिभाभरणं काव्यमुचितं शोभते कवेः।
निर्मलं सुगुणस्येव कुलं भूतिविभूषितम् ॥ ३५ ॥

अन्वय :—कवेः, उचितम्, काव्यम्, प्रतिभाभरणं (सत्), सुगुणस्य, भूतिविभूषितम् निर्मलम्, कुलमिव शोभते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः :—कवेः=कविका, उचितम्=योग्य, काव्यम्=काव्य, प्रतिभाभरणं (सत्)=प्रतिभारूपी आभूषण से अलंकृत होकर, सुगुणस्य= गुणशाली व्यक्तिके, भूतिविभूषितम्=ऐश्वर्य से सुशोभित, निर्मलम्=निर्मल, कुलमिव=कुल की तरह, शोभते=सुशोभित होता है।

अर्थ :—सारसंग्रहौचित्य का विचार करलेने के अनन्तर सम्प्रति क्रम प्राप्त तेइसवें प्रतिभौचित्य को प्रदर्शित करने के लिये कहा जा रहा है—

कवि का योग्य काव्य प्रतिभारूपी आभूषण से अलंकृत होकर, गुणशाली व्यक्ति के ऐश्वर्य से सुशोभित निर्मल कुल की तरह, सुशोभित होता है ॥३५॥

टीका :—सारसंग्रहौचित्यं प्रदर्श्याधुना यथाक्रमं त्रयोविंशतितमं प्रतिभौचित्यं विवेचयितुमाह—प्रतिभाभरणमिति। कवेः=कवयितुः, उचितम्= योग्यम्, काव्यम्=कविकर्म, रचनेति यावत्, प्रतिभाभरणं सत्-प्रतिभा= नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धिः प्रतिभा सैव आभरणम्=आभूषणं यस्य तत् तादृशम्, निर्मलम्=कलंकशून्यम्, कुलमिव=वंश इव, शोभते=शोभां प्राप्नोति ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिभालङ्कृतं कवेः काव्यमुचितं गुणवतः कुलमिव विमलं लक्ष्म्या प्रकाशितं शोभते।

अर्थं :--प्रतिभा से अलंकृत कवि का काव्य, गुणी व्यक्ति के ऐश्वर्य से सुशोभित निर्मल कुल की तरह, सुशोभित होता है।

टीका--कारिकाभावमेव स्फोरयति-प्रतिभालंकृतमिति। प्रतिभालंकृतम्=प्रतिभासमन्वितम्, कवेः=काव्यनिर्मातुः, उचितम्=योग्यम्, काव्यम्=कृतिः, गुणवतः=गुणशालिनः, लक्ष्म्या=श्रिया, प्रकाशितम्=विद्योतितम्, शोभते=प्रकाशते॥

यथा मम लावण्यवत्याम्—

अदय! दशसि किं त्वं बिम्बबुद्ध्याधरं मे
भव चपल निराशः पक्वजम्बूफलानाम्।
इति दयितमवेत्य द्वारदेशागमन्या
निगदति शुकमुच्चैः कान्तदन्तक्षतौष्ठी॥

अर्थः--प्रतिभौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कहा जा रहा है—जैसे मेरे "लावण्यवती" काव्य में निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग--कोई पुंश्चली नायिका है। उसने किसी पर पुरुष से सम्भोग किया है। सम्भोग के समय नायक ने उसके अधरोष्ठ पर दन्तक्षत् कर दिया है। उपभोगार्थ आये हुए किसी दूसरे नायक से इस दन्तक्षत् को छिपाने के लिये वह इस पद्य में सुग्गे को सम्बोधित करती हुई कह रह रही है। उसके कथन से प्रतीत हो रहा है कि इस क्षत् को सुग्गे ने लाल फल समझ कर अपनी चोंच से प्रहार करके कर दिया है।

अरे निर्दयी सुग्गे, बिम्बफल समझ कर तू मेरे अधरोष्ठ को क्यों काट रहे हो? हे चञ्चल तोते, आज तू पके जामुन के फलों को खाने के लिये पाने से निराश हो जा (अर्थात् इस अपराध के कारण मैं तुझे आज जामुन के फलों को खाने के लिये नहीं दूँगी)। इस बात को प्रेमी नायक के द्वारा दाँतों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काटी गई ओठ वाली परकीया नायिका उस समय जोर से कह रही है जब कि उसके दरवाजे पर कोई दूसरा प्रियतम आया हुआ है।

टीका—प्रतिभौचित्यमुदाहर्तुमाह—अदय ! दशसीति ।- परपुरुषकृतदन्तक्षतया कयाचित् पुंश्चल्या द्वारप्रदेशं प्राप्तमपरमुपपतिं विज्ञाय तदागमनानभिज्ञयेव शुकं लक्ष्यीकृत्योच्यते—अयि अदय = अरे निर्दय, त्वं, बिम्बबुद्ध्या = बिम्बफलधिया, बिम्बफलभ्रमेणेत्यर्थः, मे = मम, अधरम् = अधरोष्ठम्, किं दशसि = किमर्थं खण्डयसि ? अयि चपल = अरे चञ्चल, पक्वजम्बूफलानाम्, निराशः = आशाविरहितः, भव = स्याः; इति = इत्थम्, दयितम् = अपरं कामुकम्, द्वारदेशं = द्वार भूमौ आप्तम् = प्राप्तम्, अवेत्य = ज्ञात्वा, कान्तदन्तक्षतौष्ठी-कान्तस्य = प्रियस्य जारस्येति यावत् दद्भिः = द्विजैः, क्षतम् = व्रणितम्, ओष्ठम् = अधरोष्ठं यस्याः सा तादृशी, पुंश्चली, उच्चैः = तारस्वरेण, आगतो नायको यथा शृणुयात्तथेत्यर्थः, शुकम् = कीरम्, निगदति = वदति ।।

अत्र कयापि द्वारदेशाप्तं प्रियं ज्ञात्वा अन्यकामुकदशनखण्डितोष्ठया सम्प्रति तदागमनानभिज्ञयेव शुकमुद्दिश्य यदुक्तं निर्दय किं ! त्वं बिम्बफललोभादधरं मम विदारयसि, पक्वानां जम्बूफलानामिदानीं चपल निराशो भव, कुपिता तुभ्यं नो दास्यामीति तेनोच्चैः प्रत्यायनापह्नवनवनवोन्मेषप्रज्ञाचातुर्यचारुवचनमौचित्यचमत्कारं करोति । यदाह भट्टतौतः—"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता" इति ।

अर्थ :—इस पद्य में एक दूसरे प्रेमी को दरवाजे पर आया हुआ जान कर, किसी अन्य नायक के द्वारा खण्डित ओष्ठ वाली पुंश्चली नायिका, मानो आगत नायक से अनभिज्ञ बन कर शुक को उद्देश्य करके कह रही है—"अरे निर्दयी, बिम्बफल (लालफल) के लोभ से तुम मेरे अधरोष्ठ को क्यों विदीर्ण कर रहे हो ? हे चञ्चल, अब तुम खाने के लिये आज पके जामुन के फलों को नहीं पाओगे । तुमने आज मुझे क्रुद्ध कर दिया है । अतः मैं तुझे फल नहीं दूँगी ।" इस कथन में प्रतिभौचित्य का आकर्षक आभास मिल रहा है, क्योंकि असत्य (शुक के द्वारा अधर के क्षत होने) के ज्ञापन तथा सत्य (नायक के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधरक्षत) के गोपन की नवीन कल्पना में बुद्धि-चातुरी का मनोहारी उपयोग किया गया है। ऐसी ही कल्पना-प्रवीण बुद्धि को प्रतिभा कहा जाता है। प्रतिभा की यह परिभाषा भट्ट तौत ने बतलाई है ॥

टीका :—अत्र कदापीति। अत्र पद्ये, अन्यकामुकदशनखण्डितौष्ठ्या—अन्यस्य=अपरस्य कामुकस्य दशनैः=दद्भिः खण्डितम्=विदारितम् ओष्ठम्=अधरो यस्याः सा तथा, कयापि कामुकया, द्वारदेशं आगतमपरं प्रियं ज्ञात्वा=विदित्वा, किन्तु सम्प्रति=स्वकथनकाल इत्यर्थः, तदागमनानभिज्ञयेव—तस्य=अपरस्य प्रियस्य आगमनेन अनभिज्ञयेव=अपरिचितयेव, अजानन्त्येवेत्यर्थः, शुकमभिलक्ष्य यत्कथितम्—"हे दयाविरहित शुक, ममाधरं बिम्बफलं ज्ञात्वा किमर्थं लोभात्खण्डयसि ? हे चपल, अनेन तवापराधेनाहं क्रुद्धा सती पक्वानि जम्बूफलान्यद्य न प्रदास्यामीति" तेन=तत्कथनेन, उच्चैः=सुस्पष्टमित्यर्थः, प्रत्यायने=शुकेनैवाधरः खण्डित इति नवीनस्य नायकस्य विश्वासदाने, अपह्नवे च =अन्येन नायकेन खण्डितस्याधरस्य गोपने च नवनवोन्मेषकारिणी=नूतन-नूतन कल्पनाशालिनी या प्रज्ञा=बुद्धिस्तया चातुर्यम्=चातुर्यपूर्णम् यच्चारु=मनोहरं, वचनम्=वाक्योपन्यासः तत्, औचित्यस्य चमत्कारम्=चारुताम्, करोति=विदधाति, उपस्थापयतीत्यर्थः। का नाम प्रतिभा ? इति जिज्ञासायामुपस्थाते भट्टतौतवचनम्—नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा प्रतिभा मता=कथितास्ति। इति ॥

न तु यथा मम तत्रैव—

निर्याते दयिते गृहे विशयने निर्माल्यमाल्ये कृते,
प्राप्ते प्रातरसह्यरागिणि परे वारावहारेऽन्यथा।
द्वारालीनविलोचना व्यसनिनी सुप्ताहमेकाकिनी-
त्युक्त्वा नीविविकर्षणैः स चरणाघातैरशोकीकृतः ॥

अर्थः—प्रतिभा के अनौचित्य को दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा मेरे उक्त ग्रन्थ का निम्न पद्य है—

प्रसङ्ग :—अशोककुमार रत्नमाला वेश्या के पुराने भक्त थे। उन्होंने अपना सर्वस्व उस वेश्या के चरणों पर न्यौछावर कर दिया था। किन्तु आज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक नया नायक आया था। रत्नमाला इस नये नायक के साथ रात बिताना चाहती थी। अतः उसने बहाना बनाकर अशोककुमार को एक रात आने से रोक दिया। दूसरे दिन नये नायक के चले जाने पर घर की सफाई आदि कर दिये जाने पर अशोक जी आये। प्रस्तुत पद्य उसी समय का है। देखिये वेश्या कैसे उन्हें बहका रही है।

अर्थ:—नये प्रेमी के चले जाने पर, रात्रि में उपयोग में लाई गई पुष्पमाला तथा बिछावन आदि को हटा कर घर के साफ कर दिये जाने पर प्रातःकाल अपने पूर्ण प्रेमी को आया हुआ देखकर वेश्या ने कहा कि—तुम्हें एक दिन के लिये आने से रोक कर मैं स्वयं कष्ट में रही। रात भर मैं अकेली जमीन पर लेटी हुई थी। मेरी आँखें दरवाजे पर ही एक टक लगी हुई तुम्हारे आने की ही राह देख रहीं थीं। वेश्या के इस कथन से पूर्ण प्रभावित होकर नायक उसकी नीवि-ग्रन्थि को खींचने लगा। इस पर उस (वेश्या) ने पाद-प्रहार करके उसे अशोक की भाँति प्रफुल्लित कर दिया॥

विशेष– सुन्दरियों के चरण-प्रहार से अशोक खिल उठता है, उसमें फूल आ जाते हैं। इसी प्रकार वेश्या के चरण प्रहार से अशोकजी खिल उठे॥

टीका—प्रतिभानौचित्यमुदाहर्तुमाह—निर्यति दयित इति। कदाचिद्वारा-वहारेणायं कुपितः स्यादिति विचार्य नायकं प्रसादयितुं वेश्यया कृतोऽत्र व्यवहारो वर्णितः। दयिते=नवागते प्रेमिणि, निर्यति=निर्गते सति, निर्माल्य-माल्ये—रात्रौ कृतोपभोगानां माल्यकुसुमानां म्लानतया निर्माल्यरूपता-मधिगते माल्ये, कृते=बहिरपसारिते, गृहे=भवने, विशयने=शय्यास्तरणा-दिरहिते सम्पादिते, प्रातः=प्रातःकाले, असह्यरागिणि=उत्कटानुरागसम्पन्ने, वारावहारे—वारस्य=निश्चितस्यैकस्य दिनस्य अवहारः=अपहारो यस्यासौ तस्मिन्, परे=पूर्वनायके, प्राप्ते=आगते सति, द्वारलीनविलोचना—द्वारे=द्वारकपाट इत्यर्थः, आलीने=अधीरतया संलग्ने बिलोचने=नेत्रे यस्याः सा तादृशी, मम अक्षिणी त्वदवलोकनायाधीरतया द्वारदेशे संलग्ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस्तामिति भावः, व्यसनिनी—त्वदवलोकनमेव व्यसनम्=दुरभ्यासोऽस्ति अस्या इति तादृशी, अहम् एकाकिनी=एकलैव, न तु केनाप्यन्यपुरुषेण सहेति भावः, सुप्ता=गृहीतशयनाऽऽसमिति, एतच्छ्रुत्वा, नीविविकर्षणैः=विश्वस्तेन नायकेन तदा नीविविकर्षणे सञ्जातकृत्रिमकोपैरित्यर्थः, तया, सः नायकः, चरणाघातैः=पादप्रहारैः अशोकीकृतः=अशोकवृक्षवत्प्रफुल्लः सम्पादितः। सुन्दरीणां पादप्रहारैरशोकाः फुल्लतीति काव्यप्रसिद्धिरिति ॥

अत्र वेश्या व्यालग्नकामुकस्य वासरावहारं विधाय नवकामुकेन सह क्षपायां नीतायां प्रभाते तन्निर्याते शय्याकुसुमादिसम्भोगलक्षणे निवारिते वासरवञ्चनकुपिते गाढानुरागग्रहग्रस्तमतौ पूर्वकामुके प्राप्ते त्वदालोकनकांक्षिणी व्यसनिनी द्वारन्यस्तनयनाहमेकाकिनी सुप्तेति प्रत्ययनाच्चनविलीनमन्युसरभससरसनीविविकर्षणोद्यताकृतिकृतेर्ष्याकोपया चरणनलिनप्रहारैरशोकीकृतः शङ्काशल्योन्मूलनान्निःशोकः सम्पादितः सन्ततपुलकाङ्कुरत्वादशोकतरुतुल्यतां नीत इति वा वाक्यार्थः केवलसत्यविप्रलम्भप्रागल्भ्यमात्रमेव गणिकाया गाढरागमूलतां च प्रतिपादयति, न तु प्रतिभोद्भूतामौचित्यकणिकां सूचयति ॥ ३५ ॥

अर्थ :—इस पद्य में वेश्या ने अपने अत्यासक्त पूर्वनायक को एक दिन के लिये रोककर नवागत नायक के साथ रात व्यतीत की है। प्रातःकाल उस नवागत नायक के चले जाने के अनन्तर सम्भोग के सूचक शय्या तथा कुसुम-माला आदि के हटा दिये जाने के बाद एक दिन के अवरोध के कारण कुपित, वेश्या के प्रति अत्यन्त दृढानुराग से ग्रस्त मतिवाले पूर्वनायक के आने पर वह (वेश्या) कह रही है—"मैं रात भर तुम्हारी राह ही देखती रह गई क्योंकि मैं तुम्हें देखे बिना रह नहीं सकती। मेरी आंखे दरवाजे की ओर ही लगी रहीं। मैं अकेली ही सोई थी।" इन विश्वासोत्पादक वचनों से निरस्त कोपवाला वह नायक बड़े वेग से उस वेश्या की रसीली नीवी (पेटीकोट या धोती की गांठ) को खोलने की चुहलबाजी की। इस पर बनावटी कोप करके उस वेश्या ने अपने चरण-कमल से प्रहार करके, रात्रि में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य किसी पुरुष के साथ संभोग करने के सम्भावना रूपी शल्य (काँटा) को उसके हृदय से निकाल कर उसे शोक-रहित बना दिया अथवा रोमाञ्चित हो जाने से उसे प्रफुल्लित अशोक की तरह बना दिया। इस कथन से वेश्या के दृढानुराग एवं वियोग जन्य दुःख की सत्यता का ही परिचय प्राप्त होता है, विलक्षण प्रतिभा का तो इसमें लेश भी लक्षित नहीं होता। अतः इसे प्रतिभागत अनौचित्य का ही उदाहरण समझना चाहिए ॥ ३५ ॥

अवस्थौचित्यं दर्शयितुमाह—

अवस्थौचित्यमाधत्ते काव्यं जगति पूज्यताम् ।
विचार्यमाणरुचिरं कर्तव्यमिव धीमताम् ॥ ३६ ॥

अन्वय :—अवस्थौचित्यम्, काव्यम्, जगति, विचार्यमाणरुचिरम्, धीमताम्, कर्तव्यमिव, पूज्यताम्, आधत्ते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ :—अवस्थौचित्यम्=अवस्था के अनुरूप किये गये वर्णन से युक्त, काव्यम्=काव्य, जगति=संसार में, विचार्यमाणरुचिरम्=विचार करने पर सुन्दर प्रतीत होने वाले, धीमताम्=बुद्धिमानों के, कर्तव्यमिव=कार्य की तरह, पूज्यताम्=पूज्यता को, आधत्ते=प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

अर्थ :—प्रतिभौचित्य के विचार के अनन्तर अब क्रम-प्राप्त चौबीसवें अवस्थौचित्य का विवेचन करने के लिये कह रहे हैं—

अवस्था के अनुरूप किये गये वर्णन से युक्त काव्य संसार में विचार करने पर सुन्दर प्रतीत होने वाले बुद्धिमानों के कार्य की तरह, पूज्यता को प्राप्त होता है (अर्थात् पूज्य बनता है ॥ ३६ ॥

टीका—प्रतिभौचित्यविवेच्याधुना क्रमागतं चतुर्विंशतितममवस्थौचित्यं विवेचयितुमाह—अवस्थौचित्यमिति । अवस्थौचित्यम्—अवस्थायाः=वयसः औचित्यम्=अनुरूपं वर्णनं यस्मिंस्तादृशम्, काव्यम्=कविनिर्मितिः, जगति= संसारे, विचार्यमाणरुचिरम्=विचार्यमाणं सद्रुचिरम्=मनोहरम्, धीमताम्=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिमताम्, कर्तव्यम् = कार्यमिव, पूज्यताम् = अभिनन्दनीयताम्, आधत्ते = प्राप्नोति ॥ ३६ ॥

अवस्थोचिततया काव्यं जगति श्लाघ्यतामायाति, मतिमतामिव कृत्यं विचारनिर्घर्षरुचिरम् ।

अर्थ :—कारिका की व्याख्या करते हुए कह रहे हैं—

अवस्था की अनुरूपता से काव्य संसार में उसी तरह प्रशंसनीय बनता है जैसे विचार की कसौटी पर कसने पर बुद्धिमानों का कार्य ।

टीका—कारिकार्थमेव स्फोरयति-अवस्थोचिततयेति । अवस्थोचिततया= अवस्थायाः आनुरूप्येण, काव्यम्=कवेः कृतिः जगति=संसारे, श्लाघ्यताम्= प्रशंसनीयताम्, आयाति=आगच्छति, केन प्रकारेणेति प्रश्ने वदति—मतिमताम् =बुद्धिमताम्, विचारनिर्घर्षरुचिरम्—विचार एवं निर्घर्षः=शाणस्तेन रुचिरम्= मनोहारि, कृत्यमिव = कार्यमिव ॥

यथा मम लावण्यवत्याम्—

मुक्तः कन्दुकविभ्रमस्तरलता त्यक्तैव बाल्योचिता,
मौग्ध्यं निर्धुतमाश्रिता गजगतिर्भ्रूलास्यमभ्यस्यते ।
यन्नर्मोर्मिषु निर्मितं मृगदृशा वैदग्ध्यदिव्यं वच-
स्तद्विघ्नः सुभगाभिमानलटभाभावे निबद्धो भरः ॥

अर्थ :—अथौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—जैसे मेरे "लावण्यवती" काव्य का निम्न पद्य है—

बाला अब युवती बनने जा रहीं है, अतः इसने कन्दुक-क्रीडा में रस लेना छोड़ दिया है, बाल-सुलभ चञ्चलता का परित्याग कर दिया है, भोलेपन का कहीं नाम-निशान नहीं रह गया है, हथिनी के समान मस्तानी चाल से चलना सीख गई है, आँखों से कटाक्ष-निक्षेप का अभ्यास कर रही है, इस हरिणनयना ने परिहास के तरङ्गों में विदग्धता भरे वचनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है, इससे प्रतीत होता है कि इसने संभोग-योग्य अवस्था प्राप्त हो जाने के कारण स्वाभाविक, सुन्दर अभिमान से युक्त, तारुण्य में पूर्णतः प्रवेश पा लिया है ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका—अवस्थौचित्यमुदाहर्तुमाह—मुक्त इति। कन्दुकविभ्रमः=कन्दुक-क्रीडाविलासः, मुक्तः=परित्यक्तः, बाल्योचिता=शैशवयोग्या, तरलता=चञ्चलता, त्यक्तैव=परिहृतैव, मौग्ध्यम्=मुग्धत्वम्, निर्धुतम्=प्रक्षालितम्, गजगतिः=गजगमनम्, आश्रिता=अधिगता, भ्रूलास्यम्=भ्रुकुटिविलासः, अभ्यस्यते=शिक्ष्यते, मृगदृशा=मृगनयनया, नर्मोर्मिषु=परिहास तरङ्गेषु, वैदग्ध्यदिव्यम्—वैदग्ध्येन=चातुर्येण, दिव्यम्=अतिसुन्दरम्, वचः=वचनम्, निर्मितम्=रचितम्, तत्=तस्मात्, विद्मः=वयं जानीमः, सुभगेन=मनोहरेण, अभिमानन=मानेन लटमा=उपभोगक्षमं तारुण्यम् तस्या भावे=अवस्थायाम्, भरः=भारः, निबद्धः=स्थापितः, अर्पित इति यावत। तारुण्यसंभोगक्षमतानयाऽधिगतेति भावः।

अत्र यदुक्तं—कन्दुकक्रीडा त्यक्ता, बालचापल्यं परिहितम्, मौग्ध्यं निरस्तम्, गजगतिरङ्गीकृता, भ्रूलतालास्याभ्यासः क्रियते, नर्मोर्मिषु वचनवैचित्र्यमासूत्रितम्, तेन जानीमहे शैशवावस्थां समुत्सृजन्त्या प्रौढतामनारूढयापि नवसम्भोगगौरवगर्भेण सुभगाभिमानेन लटभाभावे बालया भरो निबद्धः, इत्यभिहिते स्फुटधिया वयोवस्थामध्यसन्धिवर्णनायामौचित्यं स्फुरदिवावभासते।

अर्थः—इस पद्य में जो यह कहा है कि—"गेंद की खेल छोड़ दिया है, लड़कपन की चञ्चलता का परित्याग कर दिया है, भोलापन समाप्त हो गया है, हस्तिनी की चाल अङ्गीकृत कर लिया है, आँख की भौंहों को नचाने का अभ्यास कर रही है, परिहास के वचनों में विचित्रता पिरो दिया है। इससे ज्ञात होता है कि अभी शैशवावस्था का परित्याग करने वाली तथा प्रौढावस्था को पूर्णतः न प्राप्त की हुई इस बाला ने नवीन सम्भोग की महत्ता से अलङ्कृत सुन्दर अभिमान के द्वारा तारुण्य की जो भोग क्षमता हैं उसमें पैर रख दिया है।" इस कथन में वयःसन्धि के वर्णन में औचित्य (अर्थात् अवस्थौचित्य) का पूर्ण प्रकाशित आभास मिल रहा है॥

टीका—अत्र यदुक्तमिति। अत्र यत्कथितं—कन्दुक खेलनं परित्यक्तम्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालभावसुलभं चाञ्चल्यमुज्झितम् मुग्धता प्रक्षाल्येवापसारिता, गजगामिता—स्वीकृता, भ्रूलतासञ्चालनाभ्यासो विधीयते, परिहासजल्पितेषु वचनवैदग्ध्यमासूत्रितम्—तेन जानीमो वयं यत्—यौवनमासादयन्त्या तथा नवसंभोगगर्वपूर्णेन सौन्दर्याभिमानेन उपभोगक्षमतारुण्यभावे, भरः=भारः, निबद्धः=स्थापितः, अत्र कथने स्फुटधिया—स्पष्टतया, वयोऽवस्थायाः=वयोदशायाः मध्यसन्धेः वर्णनायाम्=कथने. औचित्यं स्फुरत्=प्रकाशितमिव, अवभासते=प्रतीयते ।।

न तु यथा राजशेखरस्य—

ज्यायान् धन्वी नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण,
क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुस्ताटकाताडकेन ।
कर्णाभ्यर्णस्फुरितपलितः क्षीरकण्ठेन सार्धं,
योद्धुं वाञ्छन्न कथमधुना लज्जते जामदग्न्यः ।

अर्थ :—अवस्थानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं—न कि जैसा राजशेखर का निम्न पद्य है—

अति श्रेष्ठ धनुर्धारी, क्षत्रियों के विनाश में प्रवीण तथा जिनके कान के पाश के केश पके हुए प्रतीत हो रहे हैं ऐसे परशुराम नये धनुष को धारण करने के कारण लाल हथेलीवाले, ताडका स्त्री का वध करने वाले एवं दुधमुँहें राम के साथ लड़ने की इच्छा करते हुए क्यों नहीं लज्जित हो रहे हैं ?

विशेष :—भगवान् परशुराम बेजोड़ धनुर्धर हैं तथा राम अभी धनुष लेना सीख रहे हैं। परशुराम बड़े-बड़े क्षत्रियों का विनाश कर चुके हैं और राम ने अभी केवल एक स्त्री मात्र का वध किया है। परशुराम जवानी पार कर रहे हैं और राम जवानी में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में परशुराम को राम के साथ लड़ने में लज्जित होना चाहिए, क्योंकि युद्ध यदि समान में हो तो तभी शोभा देता है।

टीका—अवस्थानौचित्यमुदाहर्तुमाह—ज्यायानिति । ज्यायान्=अति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशस्तः, धन्वी=धनुर्धारी, क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुः—क्षत्राणाम्=क्षत्रियाणां क्षोदस्य=विनाशस्य व्यतिकरः=सम्बन्धस्तत्र पटुः=कुशलः, कर्णाभ्यर्णस्फुरितपलितः—कर्णयोः=श्रोत्रयोः अभ्यर्णे=पार्श्वे, स्फुरितम्=भासमानम् पलितम्=धवलकेशो यस्यैवंभूतः, जामदग्न्यः=परशुरामः, नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण—नवं धृतं यद्धनुः=कोदण्डस्तेन अनभ्यासात्ताम्रः=ईषदारक्तो हस्तस्य=करस्य उदरो यस्य तादृशेन, ताटकाताडनेन=ताटकास्त्रीवधकर्त्ता, क्षीरकण्ठेन=दुग्धमुखेन, बालेनेति यावत्, रामेण, सार्धम्=साकम्, योद्धुम्=युद्धं कर्तुम्; वाञ्छन्=इच्छन्, अधुना=सम्प्रति, कथं न लज्जते=कथं न लज्जामनुभवति। समान वयसोरेव युद्धं शोभास्पदं न तु कठोरप्रौढबालकयोरिति ।

"अत्र भार्गवः स्थविरावस्थास्थितः स्थिरतरपराक्रमकर्कशप्रौढो धनुर्धरः शिशुना रामेण धनुर्ग्रहणारुणितकोमलकरकमलतलेन क्षत्रियक्षयसंरम्भप्रगल्भस्ताटकाताडकेन स्फुरदाकर्णपलितः सम्भाव्यमानजननीस्तनक्षीरकण्ठेनामुना युयुत्सुः कथं न लज्जत" इत्युक्ते पेशलतया राघवावस्थायां जामदग्न्यावस्थाविपरीततायां प्रतिपाद्यमानायां ताटकाताडकेनेति विरुद्धाधिवासोऽर्थः किमप्यनौचित्येन चेतसि सङ्कोचमादधाति ॥ ३६ ॥

अर्थ :—इस पद्य में बुढ़ौती की अवस्था के समीप पहुँचे हुए तथा जगद्विदित पराक्रम की कर्कशता से मण्डित प्रसिद्ध धनुर्धर परशुराम, धनुष के अभी थोड़े दिनों से धारण करने के कारण लाल हथेली वाले बालक राम के साथ, अगणित क्षत्रियों के विनाश में प्रवीण होकर भी एकमात्र ताटका स्त्री के वध करने वाले के साथ, कान के आस-पास पके केश वाले भी होकर दुधमुँहें के साथ, युद्ध की इच्छा करते हुए लज्जित क्यों नहीं होते ? इस कथन में अत्यन्त सुकोमल होने के कारण राम की अवस्था के परशुराम की अवस्था से विपरीत वतलाने के सन्दर्भ में "ताटकाताडनेन=ताटका को मारने वाले के साथ" ऐसा जो कहा गया है वह राम की अवस्था के प्रतिकूल प्रतीत होता है, क्योंकि एक दुधमुँहे बालक के द्वारा ताटका जैसी दुर्दान्त राक्षसी का वध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैसे संभव हो सकता है ? यहाँ अवस्थागत अनौचित्य का प्रवेश हो गया है, जिससे पाठकों के चित्त में एक अपूर्व सङ्कोच की अनुभूति होती है।

टीका :—अत्र भार्गव इति। अत्र=अस्मिन् पद्ये, "स्थविरावस्थास्थितः= स्थविरावस्था=यौवन-वार्धक्ययोरन्तराले वर्तमानावस्था तस्यां स्थितः=वर्तमानः, स्थिरतरेत्यादिः स्थिरतरः=जगतिविदितो यः पराक्रमस्तेन कर्कशः प्रौढश्च =प्रगल्भ इत्यर्थः, धनुर्धरः=कोदण्डधारी, धनुर्ग्रहणेत्यादिः—धनुषः ग्रहणेन= धारणेन अरुणितम्=रक्ताभम् कोमलम्=सुकुमारम् करकमलतलं यस्य तादृशेन, शिशुना=बालकेन रामेण, क्षत्रियक्षयसंरम्भप्रगल्भः—क्षत्रियाणां क्षयस्य= विनाशस्य संरम्भः=वेगो हर्षो वा तत्र प्रगल्भः=धृष्टः ताटकाताडकेन-ताटकाया ताडनम्=विनाशो येन तादृशेन स्फुरदाकर्णपलितः=श्रोत्रयोः पार्श्वे दृश्यमान-धवलकेशः, दुग्धमुखेन, अतिसुकोमलेन बालकेनेत्यर्थः, अमुना=एतेन रामेण, युयुत्सुः=योद्धुमिच्छुः सन्, कथं न लज्जते ?" इत्युक्ते=इति कथने, पेशलतया=सुकुमारतया, राघवावस्थायाम्=रामचन्द्रस्य वयसि, जामदग्न्यस्य= परशुरामस्य अवस्थया=वयसा विपरीततायाम्=विरुद्धायाम्, प्रतिपाद्यमानायाम्=अभिधीयमानायाम्, "ताटकाताडकेने"ति, विरुद्धाधिवासः—विरुद्धस्यार्थस्य अधिवासः=गन्धो यत्र तादृशः, अर्थः, किमप्यनौचित्यमातन्वन् चेतसि सङ्कोचभावमेव जनयति। अयम्भावः—अत्र कवी रामस्य सुकुमारतां प्रतिपादयन् तेन भीषणायाः कर्कशायास्ताटकाया वधमपि वर्णयति। उभयमेतद्विरुद्धत्वादनौचित्यमेव प्रकाशयति ॥ ३६ ॥

विचारौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितेन विचारेण चारुतां यान्ति सूक्तयः।
वेद्यतत्त्वावबोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—उचितेन, विचारेण, सूक्तयः, वेद्यतत्त्वावबोधेन, मनीषिणाम्, विद्याः, इव, चारुताम्, यान्ति ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—उचितेन=योग्य, विचारेण=विचार से, सूक्तयः=सत्काव्य, वेद्यतत्त्वावबोधेन=ज्ञेय तत्त्व के ज्ञान से, मनीषिणाम्=ज्ञानियों की, विद्याः=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्याओं की, इव=तरह, चारुताम्=मनोहरता को, यान्ति=प्राप्त करते हैं ॥ ३७ ॥

अर्थ :--अवस्थौचित्य के विवेचन के अनन्तर अब क्रम-प्राप्त पच्चीसवें विचारौचित्यको प्रदर्शित करने के लिये कह रहे हैं—

योग्य विचार से युक्त सत्काव्य, ज्ञेय तत्त्व के ज्ञान से युक्त ज्ञानियों की विद्याओं की तरह, मनोहरता को प्राप्त करते हैं ॥ ३७ ॥

टीका :—अवस्थौचित्य प्रदर्शनान्तरमधुना क्रमप्राप्तं पञ्चविंशतितमं विचारौचित्यं, विचारयितुमाह—उचितेनेति । उचितेन=योग्येन. विचारेण=भावेनेत्यर्थः, सूक्तयः=सत्काव्यानि, वेद्यतत्त्वावबोधेन—वेद्यम्=ज्ञेयम् यत्तत्त्वं तस्य अवबोधेन=ज्ञानेन, मनीषिणाम्=विदुषाम्, विद्याः=शास्त्राणीव, चारुताम्=मनोहरताम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति ॥ ३७ ॥

विचारौचित्येन सूक्तयश्चारुतां यान्ति, ज्ञेयस्वरूपज्ञानेन विद्या इव विदुषाम् ।

अर्थ—कारिका की ही व्याख्या करते हुए कह रहे हैं - विचारौचित्य से सत्काव्य उसी प्रकार चारुता को प्राप्त करते हैं जैसे ज्ञेय स्वरूप के ज्ञान से विद्वानों की विद्याएँ सुशोभित होती हैं ।

टीका—कारिकार्थमेव विवेचयति—विचारौचित्येनेति । विचारौचित्येन =विचारयोग्यवर्णनेन, सूक्तयः=काव्यानि, चारुता म्=मनोहरताम्, यान्ति=व्रजन्ति, ज्ञेयस्वरूपज्ञानेन, विदुषाम्=विद्यावताम्, विद्या इव=शास्त्राणीव ।

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

अश्वत्थामवधाभिधानसमये सत्यव्रतोत्साहिना,
मिथ्या धर्मसुतेन जिह्मवचसा हस्तीति यद् व्याहृतम् ।
सा सत्यामृतरश्मिवैरमसमं संसूचयन्त्याः सदा,
शङ्के पङ्कजसंश्रयेण मलिनारम्भा त्रिजृम्भा श्रियः ॥

अर्थः—विचारौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं कि—जैसे कि मेरी मुनिमतमीमांसा का निम्न श्लोक है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अश्वत्थामा की मृत्यु की बात कहने के समय सत्यव्रतधारी युधिष्ठिर ने असत्य 'नरो वा कुञ्जरो वा' ऐसा कपट भरा वचन कह कर हाथी का जो नाम ले लिया, वह युधिष्ठिर का दोष नहीं है, किन्तु वह सत्यरूपी चन्द्रमा के साथ उत्कट वैर को सूचित करने वाली, सदा कमलनिवासिनी लक्ष्मी का मलिनता से भरा हुआ उद्योग था।

विशेष—असत्य बोलने में युधिष्ठिर का दोष नहीं था। फिर किसका दोष था? इस पर कहते हैं—कमल चन्द्रमा का द्वेषी है। लक्ष्मी जी सदा कमल पर ही निवास करती हैं। अतः कमल के नाते वे भी चन्द्रमा से द्वेष करती हैं। सत्य ही चन्द्र है। अतः लक्ष्मी ने कपटपूर्ण उद्योग करके युधिष्ठिर से झूठ बोलवा दिया। भाव यह है कि लक्ष्मी के लिए युधिष्ठिर को असत्य का भाषण करना पड़ा। अन्यथा वे ऐसा कभी न करते।

टीका—विचारौचित्यमुदाहर्तुमाह—अश्वत्थामवधेत्यादिः—अश्वत्थामवधाभिधानसमये—अश्वत्थाम्नः वधस्य=मारणस्य अभिधानम्=कथनम् तस्य समये=काले, "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो" इति कथनकाल इत्यर्थः, सत्यव्रतोत्साहिना=सत्यतपसि परिनिष्ठितेन, सर्वथा सत्यवादनपरेणेति भावः, धर्मसुतेन=युधिष्ठिरेण, मिथ्या=असत्यम्, जिह्मवचसा=कुटिलवाण्या, हस्ती=कुञ्जरः, इति=इत्थम्, यद्व्याहृतम्=कथितम्, सा, सदा=सर्वदा, असमम्=अत्युत्कटम्, सत्यामृतरश्मिवैरम्—सत्यम्=ऋतमेव अमृतरश्मिः=चन्द्रस्तस्य वैरम्=द्वेषम्, संसूचयन्त्याः=व्यक्तं कुर्वन्त्याः, श्रियः=लक्ष्म्याः, पङ्कजसंश्रयेण=कमलाश्रयेण, मलिनारम्भा—मलिनः=कलुषितः आरम्भो यस्या सा तादृशी, विजृम्भा=विचेष्टितमित्यर्थः, आसीदिति क्रियाशेषः, इत्यहं शङ्के=विचारयामि, उत्प्रेक्षे इत्यर्थः। एषोऽत्राशयः=असत्यसम्भाषणे नासीद्युधिष्ठिरस्य कश्चन दोषः। कस्य तर्हि दोष इत्याकांक्षायामुच्यते अत्र लक्ष्म्या एष दोषः। तस्याः मलिनोद्योगेनैव युधिष्ठिरोऽसत्यं जगाद। कुतो लक्ष्म्या एतत्कृतमित्याकांक्षायामुच्यते-कमलं चन्द्रं द्वेष्टि। लक्ष्मी सततं कमले तिष्ठति। अतः कमलपक्षपातेन लक्ष्मी चन्द्रमसं द्वेष्टि। सत्यमेवात्र चन्द्रः। अतस्तदुच्छेदार्थमेव लक्ष्म्याः मलिना चेष्टा कृता। वस्तुतस्तु युधिष्ठिरो राज्यलक्ष्मीलोभेनैवासत्यं कथितवानिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र "द्रोणनिधनाख्याने सत्यव्रतोत्साहवता धर्मतनयेनापि मिथ्या लघुवचसा कुञ्जर इति यदुक्तं सा सततं सत्यचन्द्रद्वेषं सूचयन्त्याः श्रियः शङ्के पङ्कजसंश्रयेण मलिनव्यापारा विजृम्भे"त्यभिहिते ससंवादलक्ष्मी-स्वभावपरिभावनया तत्त्वावबोधेन मूलविश्रान्त्या फलपर्यवसायी विचारः सहृदयसंवेद्यमौचित्यं व्यनक्ति।

अर्थः—इस पद्य में "द्रोणाचार्य के निधन के कथन में सत्यवादी युधिष्ठिर ने भी मिथ्या ही हाथी का जो नाम ले लिया उसे मैं समझता हूँ कि कमल का आश्रयण करने वाली अतः सतत सत्यरूपी चन्द्र से द्वेष करने वाली लक्ष्मी का यह मलिन आशय से गर्भित व्यापार था। ऐसी मैं उत्प्रेक्षा करता हुं।" इस कथन में लक्ष्मी के सर्वजनानुमोदित स्वभाव के ज्ञात होने के कारण यथार्थ स्थिति के मालूम हो जाने पर अर्थात् झूठ बालने में युधिष्ठिर का दोष नहीं है, बल्कि यह राज्य-लक्ष्मी की ही करामात है ऐसा ज्ञात हो जाने पर मूल से चलकर फल में समाप्त होता हुआ यह विचार एक ऐसे औचित्य को व्यक्त करता है, जो सहृदयों के हृदय से अनुमोदित है।

टीका—अत्रेति। अत्र पद्येऽस्मिन्, द्रोणनिधनाख्याने-द्रोणस्य=द्रोणाचार्यस्य निधनम्=मरणम् तस्य आख्याने=कथनप्रसङ्गे, सत्यवादिना, धर्मतनयेन=धर्मसुतेन युधिष्ठिरेणापि, मिथ्या अतो गौरवरहितेन वचसा=वचनेन, कुञ्जरः=हस्ती व्यापादित इति यत्कथितम्, सा, सततम्=निरन्तरम्, सत्यचन्द्रेण सह द्वेषम्=शत्रुभावम्, सूचयन्त्याः=व्यञ्जयन्त्याः, श्रियः=लक्ष्म्याः, पङ्कजसंश्रयेण—पङ्कजस्य=कमलस्य संश्रयेण=आश्रयेण, मलिनव्यापारा=कुत्सित-व्यापारः, विजृम्भा=उद्योगविकासः, इति=इत्थमहं शंकये=उत्प्रेक्षयामि।" इत्यभिहिते=इति कथने, ससंवादलक्ष्मीस्वभावपरिभावनया—ससंवादः=सर्वजन-संवेद्यः, लक्ष्म्याः यः स्वभावस्तस्य परिभावनया=विचारणया, तत्त्वस्य=यथार्थ-ज्ञानस्य अवबोधेन, मूलविश्रान्त्या—मूलस्य=मूलविचारस्य, युधिष्ठिरदोषस्येत्यर्थः विश्रान्त्या=शान्ततया, फलपर्यवसायी=फले पर्यवसन्नः, लक्ष्म्या एव वस्तुतो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोष इतिरूपतामापन्नः, विचारः, सहृदयसंवेद्यम्=सहृदयहृदयसमर्थितम्, औचित्यं व्यनक्ति=प्रकाशयति ।

न तु यथा मम तत्रैव—

प्रग्लाने चिरकालवृत्तदयिताकेशाम्बराकर्षणे,
क्रूरं राक्षसवैशसं यदि कृतं भीमेन दुःशासने ।
तत्कालक्षमिणा कुशाश्मपरुषारण्यप्रवासे चिरं,
किं पीतं तततापमग्नमहिषस्वेदाम्बुपृक्तं पयः ॥

अर्थः—विचारानौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—न कि जैसा मेरे उसी ग्रन्थ का निम्न पद्य है—

प्रियतमा द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचने की बात के बहुत दिन बीत जाने पर (अर्थात् तेरह वर्ष व्यतीत हो जाने पर) भी यदि भीम को दुःशासन को पटककर उसकी छाती फाड़ कर रक्त पान रूप राक्षसकर्म करना ही था तो फिर उन्होंने तत्काल क्षमा का अवलम्बन करके इतने लम्बे समय तक कुश एवं कंकड़-पत्थरों से भरे हुए अरण्य में निवास करते हुए घाम से पीड़ित अतः पसीने से लथपथ भैंसों के पसीनों से मिश्रित अतः कुस्वादु जल का पान ही क्यों किया ? (अर्थात् यदि उन्हें यही करना था तो फिर इतने दिनों तक जंगल में भीषण कष्टों को ही क्यों झेलते रहे ?)

टीका :—विचारानौचित्यं प्रदर्शयितुमाह—प्रग्लान इति । चिरकाले= दीर्घसमये, त्रयोदशवर्षपरिमिति काल इत्यर्थः, वृत्ते=व्यतीते दयितायाः= प्रेयस्याः द्रौपद्या इत्यर्थः, केशाम्बरयोः=केशवस्त्रयोः आकर्षणे, प्रग्लाने= विस्मृतप्राये जाते, भीमेन, दुःशासने, क्रूरम्=निर्दयम् राक्षसवैशसम्=राक्षसोचितं रक्तपानं विधाय मारणरूपं कर्मेत्यर्थः, यदि सम्पादितम् कृतम्, तदा तत्कालक्षमिणा=अपराधकाले क्षमामेवाश्रयता, कुशाश्मपरुषारण्यप्रवासे ... कुशैः= दर्भैः अश्मभिश्च परुषम् कठोरं यदरण्यम्=वनम् तत्र प्रवासे=निवासकाले, तततापमग्नमहिषस्वेदाम्बुपृक्तम्—ततः= विस्तृतो यस्तापः =घर्मः तेन मग्नाः= जले ब्रुडिताः, निमग्ना इव यावत्, ये महिषास्तेषां स्वेदाम्बुपृक्तम्—प्रस्वेदकण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिश्रितम्, अतः पातुं कठिनमिति शेषः पयः=जलम्, किम्=किमर्थम्, चिरम्=बहुकालम्, पीतम्=आचान्तम्। यदि भीमेन एतदेव राक्षसकर्म करणीयमासीत्तदा केशवस्त्राकर्षणकाल एवैतत् कथं न सम्पादितम्? कावश्यकतासीदरण्ये कष्टं सोढुमिति भावः ॥

अत्र भीमसेनचरिते विचार्यमाणे त्रयोदशवर्षपर्युषिते कृष्णाकेशाकर्षणपराभवे भीमेन भीमं राक्षसकर्म दुःशासने यदि कृतं तत्सद्यः कृतार्द्रापराधकालक्षमिणा सुचिरं दर्भसूचीविषमाश्मपरुषवनवासे किं ग्रीष्मतापनिमग्नमहिषस्वेदस्रुतिपृक्तं पयः पीतमित्यनुपपन्नकृत्येऽभिहिते कारणविचाराभावान्निर्मूलोपालम्भमात्रमनौचित्यमनुबध्नाति ॥३७॥

अर्थ :---इस पद्य में भीमसेन के चरित्र के विचार के सन्दर्भ में कहा गया कि "द्रौपदी के केशाकर्षण एवं चीरहरण रूप अपमान के तेरह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भीमसेन ने दुःशासन के साथ राक्षस जैसा व्यवहार जो किया वह ठीक नहीं था। क्योंकि उन्हें यदि ऐसा ही करना था तो उस अपराध के क्षण में क्षमा करके तेरह वर्षों तक कुश की नोकों तथा कर्कश कङ्कडपत्थर के कारण कष्टदायक वनवास के दुःखों को झेलते हुए ग्रीष्म ऋतु के ताप से पीड़ित अतः जल में डूबे हुए भैसों के पसीने की धार से मिश्रित जल पीने का कष्ट ही क्यों अङ्गीकार किया ?" ऐसा जो कहा गया है उसमें कारण के ऊपर विचार न करके केवल निर्मूल उलाहना मात्र ही कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है, अतः यह विचारकृत अनौचित्य को ही स्पष्ट रूप से उद्भासित करता है ॥ ३७ ॥

टीका--- अत्र भीमसेनचरितं इति। अत्र भीमसेनचरिते, विचार्यमाणे= विवेच्यमाने, कृष्णाकेशाकर्षणपराभवे—कृष्णायाः=द्रौपद्याः केशस्य=केशकलापस्य आकर्षणेन यः पराभवस्तस्मिन्, त्रयोदशवर्षपर्युषिते=त्रयोदशवर्षं व्यतीते सति, भीमेन दुःशासने, यदि राक्षसकर्मकृतम्=यदि राक्षसवदाचरितम्; तत्= तर्हि, सद्यः=तत्कालम्, कृतार्द्रापराधकालक्षमिणा=विहितापराधकाले तितिक्षावता तेन भीमेन, सुचिरम्=बहुकालम्, त्रयोदशवर्षपर्यन्तमित्यर्थः, दर्भसूचीभिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषमाश्मभिश्च परुषे=कर्कशे वनवासे=अरण्यवासकाले, ग्रीष्मसन्तापतप्तारण्य-कमहिषस्वेदमिश्रितं कटुकषायं जलं, किम्=किमर्थम्, पीतम्=आचान्तम् ? इत्थं भीमस्य कृत्येऽयोग्ये कथिते, कारणविचाराभावात्—दुःशासनस्य वधे यद् भीमस्य प्रतिज्ञारूपं कारणमासीत्तत्र विचारमकृत्वैव, निर्मूलोपालम्भनमात्रम्= निरर्थकनिन्दाकथनमात्रमनौचित्यं विचारकृतानौचित्यम्, अनुबध्नाति=प्रकाशयति ॥

नामौचित्यं दर्शयितुमाह—

नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः ।
काव्यस्य पुरुषस्येव व्यक्तिः संवादपातिनी ॥ ३८ ॥

अन्वयः—कर्मानुरूपेण, नाम्ना, काव्यस्य, पुरुषस्य, इव, गुणदोषयोः, संवादपातिनी, व्यक्तिः, ज्ञायते ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—कर्मानुरूपेण=कार्य के अनुरूप, नाम्ना=नाम से, काव्यस्य= काव्य का, पुरुषस्य=पुरुष की, इव=तरह, गुणदोषयोः=गुण-दोषों के, संवादपातिनी=अनुरूप, व्यक्तिः=अभिव्यक्ति, ज्ञायते=प्रतीत होती है ॥ ३८ ॥

अर्थः—विचारौचित्य का विवेचन कर लेने के अनन्तर अब क्रम-प्राप्त छब्बीसवें नामौचित्य की विवेचना करने के लिए कह रहे हैं—नामौचित्य को दिखलाने के लिये कहा गया है—

कार्य के अनुरूप नाम से काव्य की, पुरुष की तरह, गुण-दोषों के अनुरूप अभिव्यक्ति होती है ॥ ३९ ॥

टीका—विचारौचित्यविवेचनानन्तरमधुना क्रमागतं षड्विंशतितमं नामौचित्यं विवेचयितुमारभते—नाम्नेति । कर्मानुरूपेण—कर्मणः=कार्यस्य अनुरूपेण=अनुसारेण, नाम्ना=संज्ञया, काव्यस्य=कविकृतेः, पुरुषस्य=जनस्य, इव, गुण-दोषयोः=शोभनाशोभनयोः, संवादपातिनी=संवादिनी, व्यक्तिः= अभिव्यक्तिः, ज्ञायते=प्रतीयते, अवगम्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्यस्य कर्मानुरूपेण नाम्ना पुरुषस्येव गुणदोषव्यक्तिः संवादिनी ज्ञायते ।

अर्थ– कारिका की ही व्याख्या करते हुए कह रहे हैं—जैसे मनुष्यों के कर्म के अनुरूप नाम से उनके गुण-दोषों का ज्ञान हो जाता है, उसी तरह काव्यों के गुण-दोषों की अभिव्यक्ति भी, उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार नाम से ही हो जाती है ।

टीका—कारिकार्थमेव स्फोरयति—काव्यस्येति । यथा पुरुषस्य=मनुष्यस्य, कर्मानुरूपेण=कार्यानुसारेण, नाम्ना=संज्ञया, गुण-दोषयोरभिव्यक्तिः संवादिनी जायते तथैव, काव्यस्यापि गुणदोषयोरभिव्यक्तिः कर्मानुरूपेण अभिधेयेन संवादिनी प्रतीयते ॥

यथा कालिदासस्य—

इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः
प्रथममपि मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति ।
किमुत मलयवातान्दोलितापाण्डुपत्रै-
रुपवनसहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु ॥

अर्थ :—नामौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिये कह रहे हैं कि—जैसे कालिदास का निम्न श्लोक है–

अलभ्य वस्तु (अर्थात् प्रियतमा) का अभिलाष करने के कारण दुर्निवार इस पञ्चबाण (कामदेव) ने मेरे मन को पहले से ही अत्यन्त घायल कर रक्खा है, मलयानिल से आन्दोलित पीले-पीले पत्तों वाले, उपवनस्थित आम्र वृक्षों के द्वारा निकलती हुई अगणित मञ्जरियों के प्रदर्शन से अब न जाने क्या करने का विचार है ?

टीका—नामौचित्यमुदाहर्तुमाह—इदमिति । असुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः असुलभम्=दुर्लभं यत् वस्तु=प्रियारूपं वस्तु तस्य प्रार्थनया=कामनया हेतुना दुर्निवारः=प्रतिकर्तुमशक्यः, पञ्चबाणः=कामः प्रथममपि=पूर्वमपि, मे=मम, इदम्=एतत्, मनः=चेतः, क्षिणोति=खण्डयति, मलयवातेन=मलयवायुना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आन्दोलितानि = सञ्चालितानि कम्पितानीति यावत्, आपाण्डूनि = पाण्डुरवर्णानि पत्राणि = पर्णानि येषां तादृशैः, उपवनसहकारैः—उपवनस्य = उद्यानस्य सहकारैः = आम्रवृक्षैः, तद्द्वारेत्यर्थः, दर्शितेषु = प्रदर्शितेषु असंख्यकेष्वङ्कुरेषु = मुकुलेषु, किमुत = किं विधास्यति इति न जाने इति भावः ॥

अत्र प्रारम्भ एव ममेदं मनः पञ्चबाणः सुदुर्लभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः शकलीकरोति किमुत लीलोद्यानसहकारैर्मलयानिलान्दोलितबालपल्लवैरङ्कुरेषु दर्शितेष्वित्युक्ते मदनस्य पञ्चबाणाभिधानमुचितमेव ।

अर्थ :—इस पद्य में "पहले ही मेरे इस मन को दुर्लभ वस्तु (प्रियतमा) को प्राप्त करने की कामना के कारण दुर्निवार पंचबाण (कामदेव) ने खण्ड-खण्ड कर दिया है, अब मलय वायु के चलने से हिलते हुए सुकुमार पत्तों वाले उद्यान के आम्र वृक्षों के द्वारा नई-नई मञ्जरियों को दिखला कर न जाने क्या करना चाहता है ? (अर्थात् जब इसके पास पाँच बाण ही थे तब तो इसने हमारे मन के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे। इस समय इसके पास तो हजारों बाण हो गये हैं। अब यह पता नहीं हमारी कौन-सी दुर्दशा करेगा ?) इस कथन में मदन को जो पंचबाण कहा गया है वह अत्यन्त औचित्य को प्रकट कर रहा है, क्योंकि मन को विद्ध करने वाले काम का पञ्चबाण होना ही आवश्यक है, न कि अनङ्ग, मनोभव आदि। अतः यह नामौचित्य का बड़ा सुन्दर उदाहरण बन पड़ा है।

टीका—अत्र प्रारम्भ इति। अत्र = पूर्वस्मिन् पद्ये, "ममेदं मनः, दुष्प्रायप्रियाभिलाषवशात् रोद्धुमशक्यः, पंचबाणः = पंचबाणसनाथः कामः, शकलीकरोति = खण्डयति; किन्त्वधुना तु, मलयानिलैः = मलयवातैः आन्दोलिताः = सञ्चालिताः बालपल्लवाः = नवोद्गतपत्राणि येषां तैस्तादृशैः, लीलोद्यानसहकारैः = क्रीडोपवनाम्रवृक्षैर्हेतुभिः, अङ्कुरेषु = नवागतमञ्जरीषु, दर्शितेषु = प्रकटीकृतेषु किमुत ?" इति कथने कामस्य पंचबाणपदेनाभिधानं नितरामौचित्यं बिभर्ति, यतो हि हृदयस्य शकलीकरणे पञ्चानां बाणानां धारणात्पंचबाणेति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संज्ञया प्रसिद्धस्य कामस्यैव सामर्थ्यं न तु अनङ्गस्य मनोभवस्य वेति। अतः पद्यमिदं नामौचित्यस्य समुचितमुदाहरणमिति ज्ञेयम्।

यथा वा मम बौद्धावदानलतायाम्—

तारुण्येन निपीतशैशवतया साऽनङ्गश्रृङ्गारिणी,
तन्वङ्ग्या सकलाङ्गसङ्गमसखी भङ्गिर्नवाङ्गीकृता।
निःसंरम्भपराक्रमः पृथुतरारम्भाभियोगं विना,
साम्राज्ये जगतां यया विजयते देवो विलासायुधः॥

अर्थ :—अथवा जैसे मेरी बौद्धावदानलता का निम्न पद्य है—

तरुणाई के द्वारा शैशव अवस्था के समाप्त कर दिये जाने पर कृशांगी ने काम को भी निखारने वाली तथा सभी अंगों में निवास करने के कारण मित्रता रखने वाली एक ऐसी सर्वथा अनुपम भंगी को अंगीकार कर लिया है जिससे बिना उद्योग के ही सिद्ध पराक्रम वाले विलासायुध (कामदेव) बिना किसी प्रयास के ही तीनों लोकों पर अपना साम्राज्य स्थापित कर विजयी बन बैठा है।

टीका—नामौचित्यस्यापरमुदाहरणमुपस्थापयितुमाह—तारुण्येनेति। तारुण्येन=यौवनेन, निपीतशैशवतया—निपीतम्=आचान्तम्, निःशेषितमिति यावत्, शैशवम्=बाल्यं यस्यास्तस्याः भावस्तत्ता तया हेतुना, तन्वङ्ग्या=कृशाङ्ग्या, अनङ्गश्रृङ्गारिणी—अनङ्गस्य=कामस्य श्रृङ्गारिणी=श्रृङ्गाररूपा, सकलाङ्गसङ्गमसखी=सकलावयवसंलग्ना, सा=तादृशी, अनुपमेति भावः, नवा=नूतना, भङ्गिः=भङ्गिमा, अङ्गीकृता=स्वीकृता, यया भङ्ग्या, निःसंरम्भपराक्रमः—निःसंरम्भः=उद्योगं विनैव सिद्धः पराक्रमो यस्यैवंभूतः, विलासायुधः—विलासः=विभ्रमः आयुधम्=प्रहरणं तादृशः, स देवः=कामदेव इत्यर्थः, पृथुतरारम्भाभियोगम्—पृथुतरः=महान् आरम्भस्य=विजयरूपकार्यस्य अभियोगम्=उपायमुद्योगं वा, विनैव, जगताम्=त्रैलोक्यस्य, साम्राज्ये=राज्ये, विजयते=सर्वोत्कर्षेण शोभते॥

अत्र "यौवननिपीतशैशवतया तन्वङ्ग्याऽनङ्गश्रृङ्गारवती सर्वाङ्ग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गमसखी सा काप्यभिनवा भङ्गिरङ्गीकृता यया निष्प्रयत्नपराक्रमः प्रभूततरारम्भसम्भारं विहाय त्रिभुवनसाम्राज्ये जयति देवो विलासायुधः" इत्युक्ते कामस्य विलासायुध इति नामोपपन्नमेव, तन्वङ्गीभङ्ग्यैव सिद्धत्रैलोक्याधिपत्यविजिगीषायां कामसायकादीनां नैरर्थक्यात् ।

अर्थः—इस श्लोक मे कहा गया है कि—"यौवन के आगमन से शैशव के समाप्त हो जाने पर इस तन्वङ्गी के द्वारा कामव्यंजक श्रृंगार की सूचक, सर्वाङ्ग में संलग्न, वह कोई अपूर्व भङ्गिमा स्वीकार की गयी है जिससे अनायास पराक्रम करने वाले कामदेव ने विना महान् उद्योग के ही त्रिभुवनरूपी साम्राज्य पर अधिकार जमा लिया है।"—इस कथन में काम के लिये प्रयुक्त विलासायुध नाम अत्यन्त उचित है, क्योंकि कृशाङ्गी नायिका की भङ्गी से ही त्रिलोकी के विजय की बात के सिद्ध हो जाने पर काम के सायक निरर्थक हो जाते हैं। अत; पञ्चवाण, कुसुमायुध आदि नामों की अपेक्षा विलासायुध नाम अत्यन्त औचित्य को अभिव्यक्त करता है।

टीका—अत्र यौवनेति। अत्र अस्मिन्पद्ये यौवननिपीतशैशवतया=तारुण्येन निशेषीकृतबाल्यया, तन्वङ्ग्या=कृशाङ्ग्या। अनङ्गशृङ्गारवती=कामशृङ्गाररूपा, सर्वाङ्गसङ्गमसखी = सकलाङ्गव्यापिनी सा=तादृशी। काप्यभिनवा भङ्गी = भङ्गिमा स्वीकृता यया, निष्प्रयत्नपराक्रमः=यत्नं विनैव सिद्धबलः, प्रभूततरारम्भसम्भारं=पृथुतरारम्भसाधनं विहाय विलासायुधः=विलासः एवं आयुधः यस्य सः कामदेवः त्रिभुवनसाम्राज्ये जयति इत्युक्ते कामस्य विलासायुधः इति नामोपपन्नमेव=नामसुयुक्तमेव। तन्वङ्गीभङ्ग्यैव सिद्धत्रैलोक्याधिपत्यविजिगीषायाम् समुपपन्नत्रिभुवनाधिपत्यविजयेच्छायाम् कामसायकादीनाम्=मदनपञ्चवाणादीनाम् नैरर्थक्यात्=व्यर्थत्वात्।

न तु यथा कालिदासस्य—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ :—नाम के अनौचित्य को दिखलाने के लिए कह रहे हैं न कि जैसा कालिदास का निम्न पद्य है—

हे प्रभो, क्रोध को रोकिए, क्रोध को रोकिए ऐसी देववाणी जब तक आकाश में व्याप्त हो रही थी—तब तक शङ्कर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न उस प्रलयकारी अग्नि ने कामदेव को जला कर भस्म कर डाला। अर्थात् जब तक देव लोग शंकर जी से क्रोध न करने की प्रार्थना उच्चारण कर ही रहे थे कि उसके पूर्व ही शङ्कर ने कामदेव को जलाकर राख बना डाला)।

टीका—नामानौचित्यमुदाहर्तुमाह—क्रोधमिति। हे प्रभो=हे स्वामिन्, क्रोधम्=कोपम्, संहर संहर=निवर्तय निवर्तय, संभ्रमेऽत्र द्विरुक्तिः, इति=इत्थम्, मरुताम्=देवानाम्, गिरः=वाण्यः, खे=आकाशे, यावच्चरन्ति=प्रसरन्ति, तावत्=तावत्कालमेव, भवस्य=हरस्य, नेत्रजन्मा—नेत्रात्=लोचनात् जन्म=उत्पत्तिर्यस्य स तादृशः, स=प्रलयकाले परिचित इति यावत्, वह्निः=अग्निः मदनम्=कामदेवम् भस्मावशेषम्—भस्म=भूतिरेव अवशेषः=अवशिष्टो यस्य स तादृशम्, चकार=सम्पादयामास, ददाहेत्यर्थः ।।

अत्र "पश्यतो भगवतस्त्रिनेत्रस्य स्मरशरनिपातक्षोभे वर्ण्यमाने-तन्निकारोपशमाय 'संहर संहर प्रभो क्रोधमि'ति यावद्वचः खे देवानां चरति तावद्भवनेत्रोद्भवः स वह्निर्मदनं भस्मराशिशेषमकार्षीत्" इत्युक्ते संहारावसरे रुद्रस्य भवाभिधानमनुचितमेव ।। ३८ ।।

अर्थ :—इस पद्य में "तृतीय नेत्र से देखते हुए भगवान् त्रिनेत्र के काम वाण लगने से उत्पन्न क्षोभ के वर्णन के सन्दर्भ में उस क्रोध की शान्ति के लिए, हे प्रभो क्रोधशान्त कीजिए ! शान्त कीजिए !! ऐसी देव-वाणी जबतक आकाश में गूँजती रही तब तक भव (भगवान् शङ्कर) के तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने कामदेव को भस्मावशेष कर डाला इस कथन में संहार के समय में रुद्र के लिये भव (बनाने वाले) इस नाम का प्रयोग स्पष्ट ही अनौचित्य को व्यक्त कर रहा है। संहार काल में भव शब्द का प्रयोग न करके त्रिलोचन, रुद्र आदि नामों का प्रयोग ही उचित होता ।। ३८ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि कारिका में कहा है कि—कर्मानुरूप नामकरण से काव्य शोभित होता है। काव्य का नामकरण इसमें वर्णित कार्य के अनुरूप होना चाहिए। किन्तु उदाहरण-प्रत्युदाहरणों में व्यक्ति विशेष के बहुत से नामों में से स्थलविशेष में किसी विशेष नाम का औचित्य-अनौचित्य का दिग्दर्शन कराया गया है। संभवतः ग्रन्थकार लाइन से हट कर यहाँ विचार करने में लग गये हैं ॥ ३८ ॥

विशेष :—कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि भव का अर्थ उत्पादक है। यहाँ शिव के नेत्र से अग्नि उत्पन्न होने का प्रसङ्ग है, अतः भव शब्द का प्रयोग उचित है ॥ ३८ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् पद्ये, "तृतीयनेत्रेण पश्यतो भगवतस्त्रिलोचनस्य, स्मरस्य=कामस्य शराणाम्=बाणानाम् निपातेन=प्रहारेण यः क्षोभः=कोपस्तस्मिन्,वर्ण्यमाने,तन्निकारापशमाय—तस्य=प्रहारस्येत्यर्थो निकारः=प्रतिकारो यः कोपस्तस्य उपशमाय=शान्तये, प्रभो क्रोधं संहर संहर इति देवानां वाचो यावदाकाशे चरन्ति=प्रसरन्ति, तावत् भवनेत्रोद्भवः—भवस्य=शिवस्य नेत्रात्= लोचनात् भवः=उत्पत्तिर्यस्य तादृशः, सः=लोकप्रसिद्ध इत्यर्थः, वह्निः= अग्निः, मदनम्=कामम्, भस्मावशेषम्=भूतिमात्रमित्यर्थः, अकार्षीत्= चकार।" इत्युक्ते=संहारावसरे वर्णितेऽस्मिन् कथने, रुद्रस्य=हरस्य, भवाभिधानम्=भवेति संज्ञा, अनुचितमेव=अयोग्यमेव। यतो हि भवति जगदस्मादिति व्युत्पत्त्या भवः=उत्पादकोऽतः संहारकाले भवाभिधानमनुचितमिति भावः ॥ ३८ ॥

अत्र केचन कथयन्ति नेत्रवह्नेरुत्पादकत्वाद् हरस्यात्र भवाभिधानमेवौचित्यं बिभर्ति न हराभिधानमिति ॥ ३८ ॥

आशीर्वचनौचित्यं दर्शयितुमाह—

पूर्णार्थिदातुः काव्यस्य सन्तोषितमनीषिणः।
उचिताशीर्नृपस्येव भवत्यभ्युदयावहा ॥ ३९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय :—पूर्णार्थदातुः, सन्तोषितमनीषिणः, नृपस्येव, पूर्णार्थदातुः, सन्तोषितमनीषिणः, काव्यस्य, उचिता, आशीः, अभ्युदयावहा, भवति ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ :—पूर्णार्थदातुः=पर्याप्त धन देने वाले, सन्तोषितमनीषिणः = विद्वानों को सन्तुष्ट करने वाले, नृपस्येव=राजा की तरह, पूर्णार्थदातुः= आकांक्षा के शान्तिकारक अर्थ को प्रदान करने वाले, सन्तोषितमनीषिणः= विद्वानों को सन्तुष्ट करने वाले, काव्यस्य=काव्य की, उचिता = योग्य, आशीः =आशीर्वचन, अभ्युदयावहा=कल्याण-कारक होती है ॥ ३९ ॥

अर्थ :—नामौचित्य की विवेचना के अनन्तर अब क्रमप्राप्त सत्ताइसवें आशीर्वचनौचित्य की विवेचना करने जा रहे हैं—

जैसे पर्याप्त धन देकर विद्वानों को सन्तुष्ट करने वाले राजा के प्रति प्रयुक्त आशीर्वचन मङ्गलकारक होता है, उसी प्रकार निराकांक्ष अर्थ का ज्ञान करा कर विद्वानों को पूर्ण सन्तुष्ट करने वाले काव्य का आशीर्वचन कल्याण कारक होता है ॥ ३९ ॥

टीका—नामौचित्यविवेचनानन्तरं=क्रमागतं सप्तविंशतितममाशीर्वचनौचित्यं दर्शयितुमाह—पूर्णार्थदातुरिति । पूर्णार्थदातुः=यथेच्छं पूर्णधनप्रदातुः, सन्तोषितमनीषिणः—सन्तोषिताः = सन्तुष्टीकृताः मनीषिणः=विद्वांसो येन तादृशस्य, नृपस्येव=राज्ञ इव, पूर्णार्थदातुः = निराकाङ्क्षार्थावबोधकस्य, सन्तोषितः=आनन्ददानेन सन्तुष्टीकृताः मनीषिणः=विवेचकाः सहृदयाः येन तादृशस्य, काव्यस्य=कविकृतेः, उचिता=योग्या, आशीः=आशीर्वचनपद= प्रयोगः, अभ्युदयावहा=मङ्गलविधायिनी, भवति=जायते । एकत्र राज्ञ अभ्युदयावहाऽपरत्र पाठकानामिति ज्ञेयम् । आशिषाऽभ्युदयमात्रे तात्पर्यं बोध्यमिति ॥ ३९ ॥

सम्पूर्णसमर्पकस्य सन्तोषितविदुषः काव्यस्य नृपतेरिवोचितमाशीःपदमभ्युदयावहं भवति ।

कारिका की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कह रहे हैं—

१६ औ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे सर्वस्व दान से विद्वानों को सन्तुष्ट करने वाले राजा के प्रति प्रयुक्त विद्वानों का आशीर्वाद मङ्गलकारक होता है, उसी प्रकार आकांक्षारहित पूर्ण अर्थ के ज्ञान के द्वारा विद्वानों को प्रसन्न करने वाले काव्य का भी अनुरूप आशीर्वचनबोधक पद-प्रयोग अत्यन्त कल्याणकारक होता है।

कारिकाभिप्रायमेवविशदयितुमाह—सम्पूर्णसमर्पकस्येति। सम्पूर्णसमर्पकस्य= समग्रधनदातुः, यथेच्छं धनदातुः, काव्यपक्षे=पूर्णार्थावबोधकस्य, सन्तोषितविदुषः=सन्तुष्टीकृतविदुषः, नृपतेरिव=राज्ञ इव, उचितम्=योग्यम्, आशीः पदम्=आशीर्वादात्मकं वचनम्, अभ्युदयावहम्=कल्याणकरं भवति ॥

यथाऽस्मदुपाध्यायगङ्गकस्य—

स कोऽपि प्रेमार्द्रः प्रणयपरिपाकप्रचलितो
विलासोऽक्ष्णां देयात्सुखमनुपमं वो मृगदृशाम्।
यदाकूतं दृष्ट्वा पिदधति मुखं तूणविवरे,
निरस्तव्यापारा भुवनजयिनः पञ्चविशिखाः ॥

अर्थ :—आशीर्वचनौचित्य का उदाहरण दिखलाने के लिए कह रहे हैं—जैसे हमारे उपाध्याय (गुरु) गङ्गक का निम्न पद है—

जिसके अभिप्राय को जान कर कामदेव के भुवन विजयी पाँचों बाण अपने व्यापार को छोड़कर (लज्जावश) तूणीररूप बिल में अपना मुख छिपा लेते हैं, प्रणय की परिणति से चलायमान, प्रेम के कारण सजल, मृगलोचनियों के नेत्रों का अनिर्वचनीय वह विलास आप लोगों को अपूर्व सुख प्रदान करे ॥

टीका—आशीर्वचनमुदाहर्तुमाह—स कोऽपीति। यदाकूतम्—यस्य=मृगदृशामक्ष्णां विलासस्य आकूतम्=अभिप्रायम्, भुवनजयिनः=लोकविजेतारः, कामस्य, पञ्चविशिखाः=पञ्च बाणाः, निरस्तव्यापाराः—निरस्तः=दूरीकृतो व्यापारः= कार्यं येषां तादृशः, कोऽपि=अपूर्वः प्रणयपरिपाकप्रचलितः=प्रणयस्य=प्रेम्णः परिपाकेन=परिणामेन प्रचलितः=चलायमानः, प्रेमार्द्रः—प्रेम्णा=रत्या आर्द्रः=क्लिन्नः, मृगदृशाम्=हरिणलोचनानाम्, अक्ष्णाम्=नेत्राणाम्, विलासः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

=विभ्रमः, अनुपमम् = अद्वितीयम्, सुखम् = आनन्दम्, वः = युष्मभ्यम्, देयात् = समर्पयेत् ॥

अत्र "स कोऽप्यसामान्यप्रेमार्द्रविश्रान्तिप्रगल्भकुरङ्गदृशां निरुपमो नयनविलासः, सुखं वो देयात्, यदभिप्रायमालोक्य भुवनजयिनः कामस्य पञ्चसायकाः समाप्तव्यापारास्तूणीरविवरे लज्जयेव मुखं पिदधती" इत्युक्ते सुखं वो देयादित्याशीःपदमुचितमेव प्रियानयनविभ्रमस्य सुखार्पणयोग्यत्वात् ।

अर्थ :—इस पद्य में "अनुपम प्रेम से आर्द्र एवं प्रणय के परिपाक के कारण प्रगल्भ मृगलोचनियों की आँखों का वह अद्भुत विलास आप सबको सुख प्रदान करे, जिसके अभिप्रायको जानकर भुवनविजयी कामदेव के पाँचों बाण कर्तव्य-विहीन होकर तरकस रूप विल में मानो लज्जा के मारे अपना मुख छिपा लेते हैं" इस कथन में 'आप लोगों को सुख प्रदान करे,' यह आशीर्वादात्मक पद अत्यन्त समुचित ही है, क्योंकि प्रियतमा के नेत्रों में सुख प्रदान करने की क्षमता तो होती ही है । अतः यह आशीर्वचन का सुस्पष्ट औचित्यपूर्ण उदाहरण है ॥

टीका—अत्रेति । असामान्येन = अनुपमेन प्रणयेन = प्रेम्णा = रत्या आर्द्राणाम् = स्निग्धानाम् प्रणयस्य = प्रीतेः विश्रान्त्या, प्रगल्भानाम् = प्रौढानाम्, कुरङ्गदृशाम् = मृगलोचनानाम्, स कोऽपि = अपूर्व इत्यर्थः, नयनविलासः = नेत्रविभ्रमः, वः = युष्मभ्यम् सुखम् = आनन्दम्, देयात् = अर्पयेत्, यस्य = विलासस्य अभिप्रायम् = चेष्टामित्यर्थः, आलोक्य = दृष्ट्वा, भुवनजयिनः = त्रिभुवनमोहकस्य, कामस्य = कामदेवस्य, पञ्च सायकाः = पञ्च बाणाः, समाप्तव्यापाराः = कार्यविरहिताः सन्तः, तूणीरबिले, लज्जयेव = व्रीडयेव, मुखम् = आननम्, पिदधति = आच्छादयति ।" इत्यस्मिन् कथने, "स वः सुखं देयात्" इत्याशीः पदम् = इत्याशीर्वचनपदम्, उचितमेव = योग्यमेव, यतो हि प्रियाविलोचनं सुखमर्पयत्येवेति ॥

यथा वा मम वात्स्यायनसूत्रसारे—

कामः कामं कमलवदनानेत्रपर्यन्तवासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दासीभूतत्रिभुवनजनः प्रीतये जायतां वः।
दग्धस्यापि त्रिपुररिपुणा सर्वलोकस्पृहार्हा
यस्याधिक्यं रुचिरतितरामञ्जनस्येव याता॥

अर्थः—आशीर्वचन रूप औचित्य के दूसरे उदाहरण को दिखलाने के लिए कह रहे हैं—अथवा जैसे मेरे 'वात्स्यायनसूत्रसार' का निम्न श्लोक है—

कमलनयनियों के दृगञ्चलों में निवास करनेवाला, तीनों लोकों के मनुष्यों को वश में कर लेने वाला कामदेव आपको पर्याप्त आनन्द प्रदान करे, त्रिपुरारी (शङ्कर) के जला दिये जाने पर भी सकल लोक के लिए स्पृहणीय जिसकी कान्ति, अञ्जन की तरह, अत्यधिक रुचिर बन गई है॥

टीका—आशीर्वचनौचित्यस्यापरमुदाहरणं प्रदर्शयितुमाह—कामः काममिति। कमलवदनानेत्रपर्यन्तवासी—कमलवदनानाम् = कमलमुखीनाम् नेत्रयोः=लोचनयोः पर्यन्ते=अञ्चले वसति=निवसतीतिताहशः, दासीभूतत्रिभुवनजनः—दासीभूताः—अधीनतामुपगताः त्रिभुवनस्य = त्रिलोक्याः जनाः यस्य ताहशः, कामः = मदनः, कामम्=पर्याप्तं यथा स्यात्तथा, वः, प्रीतये=प्रसन्नतायै, जायताम्=भवतु, त्रिपुररिपुणा=त्रिपुरारिणा, दग्धस्यापि=भस्मीभूतस्यापि, सर्वलोकस्पृहार्हा=सर्वजनस्पृहणीया, रुचिः=कान्तिः, अञ्जनस्य = कज्जलस्य, इव, अतितराम्=अत्यन्तम्, आधिक्यम्=पर्याप्तताम्, जाता=प्राप्ता॥

अत्र कामः प्रीतये वो जायतां यस्य दग्धस्याप्यञ्जनस्येवाधिक्यं रुचिर्यातित्युक्ते प्रीतये जायतामित्युचितं, कामस्य प्रीत्यात्मकत्वात्।

अर्थः—इस पद्य में वह काम आप की प्रसन्नता के लिए हो;' जल जाने पर भी, अञ्जन की तरह, जिसकी कान्ति बढ़ ही गई—इस कथन में, "प्रसन्नता के लिए हो" यह उचित ही है, क्योंकि काम सबके लिए प्रसन्नतादायक होता है।

टीका—अत्र काम इति। अत्र=अस्मिन पद्ये, कामः=मदनः, वः प्रीतये=प्रसन्नतायै, जायताम्=भवेत्, दग्धस्य=हरनेत्रजन्मना वह्निना भस्मीभूतस्यापि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्य=कामस्येत्यर्थः, अञ्जनस्येव=कज्जलस्येव, रुचिः=कान्तिः, आधिक्यम्, याता=गता, इति कथने, "प्रीतये जायताम्" इति कथनमुचितमेव, यतोहि, कामस्य=मदनस्य, प्रीत्यात्मकत्वात्=सर्वजनाह्लादकत्वात् ॥

न तु यथाऽमरुकस्य--

आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं,
किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां सीकरैः ।
तन्वङ्ग्याः सुतरां रतान्तसमये वक्त्रं रतिव्यत्यये,
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैः ॥

अर्थ—आशीर्वचनानौचित्य का उदाहरण प्रदर्शित करने के लिए कह रहे हैं— न कि जैसा अमरुक का निम्न पद्य है—

विपरीत रमणकाल में इतस्ततः बिखरे हुए चञ्चल केश समूह को धारण करने वाला, चञ्चल कुण्डलों से सुशोभित, शरीर के श्रमजन्य पसीने की बूंदों से कुछ-कुछ धूमिल तिलक से अलङ्कृत, रतिक्रीडा की समाप्ति के अवसर पर कृशाङ्गी का जो मुख है वह बहुत दिनों तक आप सब की रक्षा करे । हरि, हर तथा स्कन्द आदि देवताओं से क्या लेना-देना ? ॥

टीका—आशीर्वचनानौचित्यं-प्रदर्शयितुमाह—आलोलामिति । रतिव्यत्यये= विपरीतरमणकाले, आलोलाम्=किञ्चिच्चपलाम्, विलुलिताम्=विपर्यस्ताम्, अलकावलीम्=केशकलापमित्यर्थः बिभ्रत्=धारयत्, चलत्कुण्डलम्=चञ्चल-कुण्डलसनाथम्, तनुतरैः=लघुरूपैः, स्वेदाम्भसाम्=श्रमजन्यजलानाम्, सीकरैः =कणैः, किञ्चित्=स्वल्पम्, मृष्टविशेषकम्=प्रोञ्छिततिलकम्, तन्वङ्ग्याः =कृशशरीरायाः, रतान्तसमये = रमणान्तककाले, यद्वक्त्रम् = यन्मुखम्, तत्=तन्मुखमित्यर्थः, त्वाम्=भवन्तम् चिराय=चिरकालम्, पातु=रक्षतु, आनन्दयत्वित्यर्थः, हरिहरस्कन्दादिभिः=विष्णु-शिव-षडाननादिभिर्वा, दैवतैः =देवैः, किम्=किं प्रयोजनम् न किमपीति भावः ॥

अत्र "तन्व्या रतिव्यत्यये लोलालकं चलत्कुण्डलं स्वेदसलिलेन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किञ्चिन्मृष्टतिलकं यन्मुखं तत्त्वां पातु किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैः।" इत्युक्ते पातु त्वामित्यनुचितम्, आनन्दयतु त्वामित्युचितं स्यात् ।

अर्थ– इस श्लोक में कहा गया है कि—"विपरीत रमण के समय हिलते हुए बालों से अलङ्कृत, डोलते हुए कुण्डलों वाला, पसीने की बूँदों से कुछ-कुछ पुछे हुए तिलक वाला तन्वङ्गी का जो मनोहर मुख है, वह आप की रक्षा करे। हरि, हर तथा कार्तिकेय आदि देवताओं से क्या मतलब ?" इस कथन में जो यह कहा गया है कि—"त्वां पातु"—"तुम्हारी रक्षा करे" वह नितान्त अनुचित है इसके स्थान पर "त्वाम् आनन्दयतु"="तुम्हें आनन्दित करे" यह कहना उचित होता।

टीका—अत्रेति। अत्र=उक्ते पद्ये, "रतिव्यत्यये=विपरीतरतौ, लोलालकम्=चञ्चलकेशालङ्कृतम्, चलत्कुण्डलम्=लोलत्कुण्डलम्, स्वेदसलिलेन-श्रमस्वेदविन्दुना, किञ्चिन्मृष्टतिलकम्=किञ्चित्प्रोञ्छितविशेषकम् तन्व्याः=कृशाङ्ग्याः, यन्मुखम्=यदाननम्, तत्त्वाम्, पातु=रक्षतु, हरिहरस्कन्दादिभिः=प्रधानभूतैरपीत्यर्थः, दैवतैः=देवैः, किम्=किं प्रयोजनम् ?" इत्युक्ते "त्वां पातु" इति कथनम्, अनुचितम्=अनौचित्यप्रकाशकमेव, अस्य स्थाने यदि कथितं स्याद्यत्—"त्वामानन्दयतु = त्वामानन्दपूर्णं करोतु" तदा उचितम्=औचित्यपूर्णम्, स्यात्=भवेदिति ॥ ३९ ॥

अन्येषु काव्याङ्गेष्वनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम् ।
तदुदाहरणान्यानन्त्यान्न प्रदर्शितानीत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥४०॥

अर्थः—ग्रन्थ के समाप्त होने की सूचना देते हुए कह रहे हैं—

इसी प्रकार काव्य के अन्य (छन्द एवं वर्ण आदि) अङ्गों में भी औचित्य की स्वयं उत्प्रेक्षा (कल्पना) कर लेनी चाहिए। इनके उदाहरण अनन्त हैं। अतः उन्हें यहाँ नहीं दिखलाया गया है। ग्रंथ को अत्यधिक विशाल बनाना उचित नहीं है। अतः यहीं पर इसे समाप्त किया जा रहा है ॥ ४० ॥

टीका—ग्रन्थस्य समाप्तिं सूचयन्नाह—अन्येष्विति। अन्येषु=इतरेषु वृत्तवर्णादिषु, काव्याङ्गेषु=काव्यावयवेषु, अनयैव=एतयैव, दिशा=सरण्या, औचित्यं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयमुत्प्रेक्षणीयम्=कल्पनीयम्, उद्भावनीयं वा, तेषामुदाहरणानि अत्रानन्त्यात् =आधिक्यात् न प्रदर्शितानि=नोल्लिखितानि। इति = समाप्तसूचकमव्ययपदमेतत्, अतिप्रसङ्गेन = अतिविस्तारेण, अलम्=पर्याप्तमिति शम् ॥ ४० ॥

ग्रन्थकर्तृ परिचयः

आसीत् प्रकाशेन्द्र इति प्रकाशः काश्मीरदेशे त्रिदशेश्वरश्रीः।
अभूद् गृहे यस्य पवित्रसत्त्रमच्छिन्नमग्रासनमग्रजानाम् ॥१॥

अर्थः—अपना परिचय देने के लिए ग्रन्थकर्ता कवि क्षेमेन्द्र प्रारम्भ कर रहे हैं :—

कश्मीर देश में प्रकाशेन्द्र नाम से प्रसिद्ध देवराज इन्द्र की तरह सम्पत्तिशाली एक ब्राह्मण थे, जिनके घर पर अनवरत पवित्र यज्ञानुष्ठान होते रहते थे एवं ब्राह्मणों का बहुत आदर सम्मान हुआ करता था ॥ १ ॥

टीका—स्वपरिचयं प्रदातुं ग्रन्थकर्ता प्रस्तौति—आसीदिति। काश्मीरदेशे प्रकाशेन्द्र इति नाम्ना, प्रकाशः=प्रसिद्धः, त्रिदशेश्वरश्रीः—त्रिदशेश्वरस्य= इन्द्रस्य श्रीरिव=सम्पत्तिरिव श्रीर्यस्यतादृशः,, आसीत्कश्चिद्ब्राह्मणः इति, यस्य गृहे=सद्मनि, अच्छिन्नम्=अनवरतम्, पवित्रसत्त्रम्=पावनयज्ञः, तथा अग्रजानाम्=ब्राह्मणानाम्, अग्रासनम्=प्रथममुच्चैश्चासनमित्यर्थः, अभूत्=आसीदिति ॥ १ ॥

यः श्रीस्वयंभूभवने विचित्रे लेप्यप्रतिष्ठापितमातृचक्रः।
गोभूमिकृष्णाजिनवेश्मदाता तत्रैव काले तनुमुत्ससर्ज ॥ २ ॥

अर्थ—जिस प्रकाशेन्द्र ने अपूर्व शोभा से सम्पन्न ब्रह्ममन्दिर की भित्तियों पर विविध देवियों के चित्रअङ्कित कराये तथा गाय, भूमि, काले मृगचर्म और गृह का दान करते हुए वहीं अपने शरीर का परित्याग किया ॥ २ ॥

टीका—य इति। यः=प्रकाशेन्द्र इत्यर्थः, विचित्रे=अपूर्वे, श्रीस्वयम्भूभवने—श्रिया=शोभया सहितं स्वयम्भुवः=ब्रह्मणः भवनम्=गृहं तस्मिन्, लेप्यप्रतिष्ठापितमातृचक्रः—लेप्ये=भित्तौ प्रतिष्ठापितम्=उट्टङ्कितम् मातृणाम् =देवीनाम् चक्रम्=समूहो येन तादृशः, तथा गवाम्=धेनूनाम् भूमेः=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथिव्याः कृष्णजिनानाम्=कृष्णमृगचर्मणाञ्च दाता=उत्सर्ग कर्ता सन्, तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने, काले=समये, पूर्णमायुर्व्यतीत्येत्यभिप्रायः, तनुम्=शरीरम् उत्ससर्ज=तत्याज ॥ २ ॥

तस्यात्मजः सर्वमनीषिशिष्यः श्रीव्यासदासापरपुण्यनामा ।
क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ॥ ३ ॥

अर्थ :—उन्हीं प्रकाशेन्द्र के औरसपुत्र, सम्पूर्ण लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के शिष्य, "श्री व्यासदास" इस दूसरे पवित्र नाम से भी विभूषित काव्य की रचनाओं से अक्षय कीर्ति कमाने वाले क्षेमेन्द्र ने सर्वथा नवीन "औचित्यविचार-चर्चा" नामक इस ग्रन्थ की रचना की है ॥ ३ ॥

टीका—तस्यात्मज इति । तस्यात्मजः—तस्य=प्रकाशेन्द्रस्य आत्मजः=औरसः पुत्रः, सर्वमनीषिशिष्यः—सर्वेषाम्=निखिलानाम् मनीषिणाम्=लब्धप्रतिष्ठानां विदुषाम्, शिष्यः=अध्यापितः शिक्षितश्च छात्रः, श्रीव्यासदासा-परपुण्यनामा=व्यासदासेत्यन्य पवित्रनाम्ना विभूषितः अक्षय्यकाव्यकीर्तिः—अक्षय्या=विपुलेति यावत् काव्यानाम्=रचितानां ग्रन्थानाम् कीर्तिः=यशो यस्य तादृशः, क्षेमेन्द्रः=क्षेमेन्द्रनाम्ना काव्यसंसारे प्रसिद्धः कविः, इति=इमा-मिति यावत्, नवौचित्यविचारचर्चाम्=नवाम्=सर्वथा नवीनाम् औचित्य-विचारचर्चाम्=इति नाम्ना प्रसिद्धं ग्रन्थमित्यर्थः, चक्रे=कृतवान्, रचित-वानिति यावत् ॥ ३ ॥

श्रीरत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते शार्वं पुरं श्रीविजयेशराज्ञिः ।
तदात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृते कृतस्तेन गिरां प्रपञ्चः ॥ ४ ॥

अर्थ :—शोभा एवं सम्पत्ति से सम्पन्न विजयपुर के अधीश्वर, प्रिय मित्र श्री रत्नसिंह के भगवान् शङ्कर की कैलासपुरी के लिये प्रस्थान कर जाने के अनन्तर उनके पुत्र श्री उदय सिंह की प्रसन्नता के लिये ही मैंने वाणी का यह विस्तार (अर्थात् इस ग्रन्थ का निर्माण) किया है ।

टीका—श्रीरत्नेति । श्री विजयेशराज्ञि=शोभया सम्पत्त्या च सम्पन्नस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विजयपुरस्याधीश्वरे, सुहृदि=प्रियमित्रे, श्रीरत्नसिंहे=रत्नसिंहनाम्ना प्रसिद्धे राज्ञि, शार्वम्=शैवम्, पुरम्=लोकम्, प्रयाते=गते सति, तदात्मजस्य—तस्य=रत्नसिंहस्य आत्मजस्य=पुत्रस्य, उदयसिंहनाम्नः=उदयसिंह नाम्ना प्रसिद्धस्य राज्ञः, कृते=हेतवे, राज्ञः प्रसन्नतायै इत्यर्थः, तेन=तेनैव क्षेमेन्द्रेणेत्यर्थः, गिराम्=वाणीनाम्, प्रपञ्चः=विस्तारः, अनेन ग्रन्थरूपेण, कृतः=सम्पादितः ॥ ४ ॥

यस्यासिः परिवारकृत्त्रिभुवनप्रख्यातशीलश्रुतेः
सर्वस्यावनतेन येन नितरां प्राप्ता विशेषोन्नतिः ।
आशाः शीतलतां नयत्यविरतं यस्य प्रतापानल-
स्तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः ॥ ५ ॥

इति श्रीप्रकाशेन्द्रात्मजव्यासदासापराख्यश्रीक्षेमेन्द्रकृता
'औचित्यविचारचर्चा' समाप्ता ॥

अर्थ :—समग्र त्रिलोकी में अपने शील एवं वैदुष्य के लिए सुविदित जिसकी तलवार ने समग्र भूमण्डल को एक परिवार के सूत्र में बाँध रक्खा था, सर्वत्र विनय से अवनत होकर जिसने अपूर्व उन्नति की थी, जिसका प्रतापानल निरन्तर (सुख-समृद्धि के द्वारा) शीतलता का विस्तार कर रहा है, उस श्रीमान् अनन्तराज के राज्यकाल के समय यह ग्रन्थ रचा गया ॥ ५ ॥

रमाशङ्कर त्रिपाठी के द्वारा विरचित यह 'रमा'
हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई

टीका :—यस्यासिरिति। त्रिभुवनप्रख्यातशीलश्रुतेः—त्रिभुवने=त्रिलोक्याम् प्रख्याते=सुविदिते शीलश्रुती=सद्गुण वैदुष्ये यस्य स तादृशस्य, यस्य=अनन्तराज नृपतेरित्यर्थः, असिः=कृपाणः, परिवारकृत्=समग्रं भूमण्डलं

Dr: Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्य करवालधारावशे सन् पिनद्धामिवासीदिति भावः, येन = अनन्तराजेन, सर्वस्य=सर्वत्रेति भावः, सर्वदेति वा, अवनतेन=नम्रेण सता, नितराम्= सुतराम्, विशेषा=विशिष्टा, उन्नतिः =ऐश्वर्यम्, प्राप्ता=अधिगता, यस्य राज्ञः, प्रतापानलः=प्रतापाग्निः, अविरतम्=निरन्तरम्, आशाः=काष्ठाः, दिश इत्यर्थः, सुखसमृद्धिदानेन, शीतलताम्=शैत्यम्, सन्तापाभावमिति यावत्, नयति=प्रापयति, तस्य=एतादृशष्येतिभावः, अनन्तराजनृपतेः=अनन्तराज राज्ञः, काले=समये, किलेति ऐतिह्यसूचके निश्चयेऽव्ययपदम्, अयम्=एषः= ग्रन्थः, कृतः=क्षेमेन्द्रेण रचितः ॥ इति शम् ॥ ५ ॥

इति रमाशङ्करत्रिपाठिकृता 'रमा' संस्कृत व्याख्या समाप्ता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्याकर्तुः परिचयः

विन्ध्यक्षेत्रान्तरे रम्ये मीरजापुर मण्डले ।
गम्भीरपुरनामास्ति ग्रामः ख्यातो महीतले ॥ १ ॥

तत्र रामप्रसादाख्यस्त्रिपाठी ब्राह्मणोह्यभूत् ।
तस्यासीत् प्रबला भक्तिर्विष्णोश्चरणपङ्कजे ॥ २ ॥

अतो नामापरं तस्य रामदासेति विश्रुतम् ।
जातः परमहंसोऽयमन्तिमे समये महान् ॥ ३ ॥

चत्वार आत्मजास्तस्य बभूवुः कृतिनां वराः ।
ज्येष्ठो गणपतिस्तेषु सोमदत्तोऽपरस्तथा ॥ ४ ॥

तृतीयो देवदत्तश्च कृष्णदत्तश्चतुर्थकः ।
कृष्णदत्तस्य तुर्यस्य द्वौ सुतौ प्रबभूवतुः ॥ ५ ॥

दीनान्तः शीतलस्तत्र प्रथमः प्रथितोऽभवत् ।
श्रीमान् रामदयाल्वाख्यो द्वितीयोऽभूत् परःकृती ॥ ६ ॥

आद्यः शीतलदीनो यश्चतुरः सुषुवे सुतान् ।
चतुरान् कृतविद्यांश्च चतुरः सागरानिव ॥ ७ ॥

आदित्यरामस्तत्रैकः कर्मकाण्डी महायशाः ।
दिवाकरो भास्करश्च प्रभाकर इतीरिताः ॥ ८ ॥

आदित्यरामस्यैकोऽभूज्ज्येष्ठः पुत्रः सुधीवरः ।
शिवप्रतापनाम्ना यः प्रसिद्धिं परमां गतः ॥ ९ ॥

द्वितीयः शिवसम्पत्तिर्गुणज्ञो गुणवान् मतः ।
शिवप्रतापस्य पुत्रौ द्वेषमात्सर्यवर्जितः ॥ १० ॥

श्रीमान् रामसुमेरुर्हि पुण्यवान् भाग्यवांस्तथा ।
तस्य भार्याऽञ्जनानाम्नी शङ्करस्य सती यथा ॥ ११ ॥

प्रासूत चतुरः पुत्रान् प्राणौपम्येन संस्मृतान् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

येषां ज्येष्ठो रामरूपो दयाधर्मान्वितः सुधीः ॥ १२ ॥

त्रिवेणीशङ्करः ख्यातः पण्डितोऽस्ति द्वितीयकः ।
रमाशङ्करनामाऽहं व्याख्याकृत्तु तृतीयकः ॥ १३ ॥

वात्सल्यभाङ्नः सततं चतुर्थो हरिशङ्करः ।
सहायभूतः सर्वेषामेषां स्नेहानुवर्धितः ॥ १४ ॥

सोऽहं सम्प्रार्थये मूलं परमात्मानमीश्वरम् ।
हृदयग्राहिणी भूयात् कृतिःकान्ताविदां मम ॥ १५ ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण-श्लोकानुक्रमणिका

उदाहरणम्	पृष्ठांकाः
अ	
अत्र वल्कलजुषः	१९०
अऊ स विषयव्यावृत्तात्मा	१८६
अदय ! दशसि	२१८
अभिनववधूरोषास्वादः	४९
अयि विजहीहि	१६४
अयि विरहविचित्ते	२०५
अश्वत्थामवधा-	२२९
अहौ वा हारे	९३
आ	
आचारं भजते	१६१
आदाय वारि परितः	१३७
आलोलामलकावलीं	२४५
आश्चर्यं वडवानलः	२००
आहारं न करोति	१२२
इ	
इदमसुलभवस्तु	२३५
इह निवसति	१३९
उ-ऊ	
उत्पत्तिर्भण्डकुले	१८७
उद्दामोत्कलिकां	५५
ऊरुमूलनखमार्ग-	३५
ए	
एतस्माज्जलधेः	१३५
एतस्याः स्मरसंज्वरः	४२
क	
कण्ठे मेखलया	१०
कण्ठे कृत्तावशेषं	७८
कर्णाटीदशना-	१८२
कर्णोत्तालित-	२०८
कासः कामं कमल-	२४३
कुसुमशयनम्	९५
कृशः काणः	८४
कृष्णेनाम्ब ! गतेन	८६
क्रोधं प्रभो संहर	२३८
क्षीणश्चन्द्रो	१७७
क्षीबस्येवाचलस्य	९९
ख-ग	
खगोत्क्षिप्तं	४७
गन्तव्यं यदि नाम	१०७
गाण्डीवस्तु वमार्य-	१०३
ग्रीष्मं द्विषन्तु	१५८
च	
चिताचक्रं	५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरणम्	पृष्ठांकाः
चुम्बनसक्तः	६४
चैत्रे सूत्रित-	१५६
च्युतसुमनसः	१७३
ज-झ	
जयत्युपेन्द्रः	१२९
जातं वंशे	२९
ज्याजिह्वया	३१
ज्यायान् धन्वी	२२६
त	
तत्र स्थितं स्थितिमतां	१४२
तपो न तप्तम्	२१६
तारुण्येन निपीत-	२३७
तीक्ष्णान्तस्त्रीकटाक्ष-	१०५
त्रैलोक्याक्रमणैः	१५०
द-ध	
दणुइन्दरुहिरलग्गो	७१
दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने	७१
दिङ्मातङ्ग-	१३१
दिवि भुवि फणिलोके	१९४
देवो जानाति	१६८
देवो दयावान्	२२
धीरः स किर्मीर-	२३
न	
नदीवृन्दोद्दाम-	१९८
नष्टं वर्षवरैः	७९
नायं निशामुख-	१५३

उदाहरणम्	पृष्ठांकाः
नाले शौर्यमहो	२६
निद्रां न स्पृशति	१४५
निर्याते दयिते	२२०
नीवारप्रसरा-	८१
प	
परिम्लानं	२०
पुण्ये ग्रामे वने वा	१९१
पुरा यत्र स्रोतः	१८०
पौलस्त्यः प्रणयेन	१३३
प्रग्लाने चिरकाल	२३२
प्रत्यग्रोपनताभिमन्यु-	६५
ब	
बालेन्दुवक्राण्यवि-	५७
बुभुक्षितैर्व्याकरणं न	१६५
भ	
भक्तिः कातरताम्	२११
भग्नाहितश्वसित-	१२५
भोगे रोगभयं	९०
म	
मग्नानि द्विषतां	१५
महाप्रलयमारुत-	३८
माणं मुञ्चध	१११
मानं मुञ्चत	१११
मार्गे केतकसूचि-	६२
मुक्तः कन्दुक-	२२४
मृत्योरास्यम्	१७५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरणम्	पृष्ठांकाः
य	
यः प्रख्यातजवः	११५
यत्पार्वतीहठकच	३३
युद्धेषु भाग्यचपलेषु	४१
योऽभूद्गोप-	१७१
योऽयमश्वः	३०
यो यः शस्त्रम्	६९
ल	
लाङ्गूलेन	१२७
लावण्यद्रविण-	१७
व	
वरुणरणसमर्था	१४८
विरोधी वा	११०
वर्णप्रकर्षे सति	५८
विविधगहनगर्भ-	२१४
विश्रान्तविग्रहकथो	४५
वृद्धास्ते न विचार-	७६
श	
शीतेनोद्धूषितस्य	५२
शौर्याराधित-	७२
श्येनाङ्घ्रिग्रह-	२०३
स	
स कोऽपि प्रेमार्द्रं	२४२
सग्गं अपारिजाअं	११७
सत्यं मनोरमा	९८
सदा सक्तं शैत्यं	१२४
समस्तास्तर्याणां	८८
सम्बन्धीपुरुभूभुजां	२४
सर्वापायचयाश्रयस्य	८३
सर्वं स्वर्गसुखा	१६७
सीधुस्पर्शभयात्	५९
स्तनयुगमश्रुस्नातं	१२०
स्त्रीणां मध्ये	७५
स्वर्गमपारिजातम्	११७
ह	
हारो जलार्द्र-	३९
हा नृप हा	
हा शृङ्गार तरंगिणी	६७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूलस्थ-कारिकानुक्रमणिका

कारिका	पृष्ठाङ्क	कारिका	पृष्ठाङ्क
अकदथनया	२०२	कृत्वापि काव्या	३
अन्येषु काव्यांगेषु	२४६	चमत्कारं करोत्येव	१९७
अर्थौचित्यवता	४४	तस्यात्मजः सर्व-	२४८
अलङ्कारास्त्वलंकारा	६	तिलकं बिभ्रतो	१४
अवस्थौचित्य	२२३	तेषां परस्पराश्लेषात्	९५
आसीत् प्रकाशेन्द्र	२४७	देशौचित्येन काव्यार्थः	१७९
उचितस्थानविन्यास	९	नाम्ना कर्मानुरूपेण	२३४
उचितं प्राहुः	१२	पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे	१२
उचितस्थानविन्यस्तैः	१६५	पूर्णार्थदातुः काव्यस्य	२४०
उचितार्थविशेषेण	२७	प्रतिभाभरणम्	२१७
उचितेन विचारेण	२२८	प्रतिभायामवस्थायां	५३
उचितेनैव लिंगेन	१४४	प्रस्तुतार्थोचितः	३७
उचितैरेव वचनैः	१४६	यः श्रीस्वयंभूवने	२४७
उपसर्गे निपाते	१२	यस्यासिः परिवार	२४९
औचित्यरचितम्	२१	यथा मधुरतिक्ताद्याः	९५
औचित्यस्य	३	योग्योपसर्गसंसर्गैः	१६०
कालौचित्येन	१७०	विशेषणैः समुचितैः	१५५
काव्यं हृदयसंवादि	१९३	श्रीरत्नसिंहे सुहृदि	२४८
काव्यस्यालमलंकारैः	५	सगुणत्वं सुवृत्तत्वं	११३
काव्यार्थः साधु	१८९	सान्वयं शोभते	११९
कुर्वन् सर्वाशये	५३	सारसङ्ग्रह	२१२
कुलोपचितमौचित्यं	१८४	स्वभावौचित्यम्	२०७
कृतारिवञ्चने	१		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुवलयानन्दः

श्री मदप्पयदीक्षित विरचितः। श्री मद्गङ्गाधरमनीषिविरचित रसिकरञ्जनी संस्कृत व्याख्या तथा पं. रा. हालस्यनाथविरचित टिप्पणी विभूषित एवं आचार्य जयशंकर लाल त्रिपाठी विरचित भावबोधिनी हिन्दी व्याख्या सहित सम्पूर्ण

संस्कृत वाङ्मय में श्री अप्पयदीक्षित एक अत्यन्त प्रौढ एवं बहुशास्त्रज्ञ विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हैं। विविध शास्त्रीय ग्रन्थों के समान अलङ्कारशास्त्र में दीक्षित की अमरकृति 'कुवलयानन्द' एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा परमोपयोगी रचना है। दीक्षित ने 'गागर में सागर' इस उक्ति को इसमें चरितार्थ किया है। इस विशिष्ट कृति का वास्तविक रहस्य पं० श्री गङ्गाधर वाजपेयी की 'रसिकरञ्जनी' व्याख्या द्वारा ही समझा जा सकता है। किन्तु यह व्याख्या सुदीर्घकाल से उपलब्ध नहीं थी। संस्कृत व्याख्या प्रौढ़ विद्वानों के लिये उपयोगी होती है। अतः प्रो० जयशङ्कर लाल त्रिपाठी ने इस ग्रन्थ की विशद हिन्दी व्याख्या 'भावबोधिनी' लिखकर समस्त जिज्ञासुंओं के लिए इस ग्रन्थ के रहस्य उद्घाटित कर दिये हैं। उक्त दोनों व्याख्याओं सहित यह संस्करण साधारण अध्येताओं के साथ साथ जिज्ञासु शोधकर्ताओं के लिये भी परमोपयोगी है।

P.B. 250.00, H.B. 425.00

कृष्णकर्णामृतम्। लीलाशुकविल्वमङ्गलविरचित। अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद एवं व्याख्या सहित। संपा. एवं व्याख्याकार— डॉ. कल्याणलाल शर्मा (श्रीकृष्णकर्णप्रिय सुललित पदावली जिसे चैतन्यमहाप्रभु दक्षिण भारत के एक मन्दिर से अपने साथ लाये और अपने अनुयायियों में प्रचारित किया) 150.00

सदुक्तिकर्णामृतम् (काव्य)। हिन्दी व्याख्या सहित। संस्कर्ता एवं टीकाकार—प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

प्रथम भाग 250.00, द्वितीय भाग 300.00, तृतीय भाग शीघ्र

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office**, Varanasi.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi